महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

द्वितीय सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : MS – 412

पाठ्यचर्या का शीर्षक : वित्तीय प्रबंधन

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

द्वितीय सेमेस्टर – एमबीए 412 वित्तीय प्रबंधन

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
समकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय,म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक : एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

संपादक मंडल

डॉ. रवीन्द्र टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

डॉ. ए. के. जे. मंसूरी
जी. एस.कॉलेज ऑफ कॉमर्स, वर्धा

डॉ. राम ओ. पंचारिया
बी.डी. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, सेवाग्राम

श्री अनुभव नाथ त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

प्रकाशक :

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्टः हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक : एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

इकाई लेखन

डॉ. रवीन्द्र टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक,
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

श्री. महेंद्र प्रसाद
सहायक संपादक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि.,वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of1997)

ज्ञान शांति मैत्री

विषय कोड: MS 412 **क्रेडिट्स:** 4 क्रेडिट

विषय का नाम: वित्तीय प्रबंधन (Financial Management)

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

- वित्तीय प्रबंधन की मूल अवधारणाओं को समझने तथा वित्त की विभिन्न स्रोतों के बारे में जानने में विद्यार्थियों की मदद करना।
- वित्त के लिए विभिन्न उपयोगों को समझना।
- वित्तीय प्रबंधन में इस्तेमाल होने वाले विभिन्न तकनीकों से छात्रों को अवगत कराना।

मूल्यांकन के मानदंड:

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सत्रीय कार्य : 30 %

पाठ्यक्रम सामग्री:

इकाई – I: वित्तीय प्रबंधन का परिचय (Introduction to Financial Management)

- वित्तीय प्रबंधन: उद्देश्य एवं क्षेत्र (Financial Management: Objectives and Scope)
- वित्तीय प्रबंधक के कार्य (Functions of a Financial Manager)
- वित्तीय प्रबंधन की परंपरागत एवं आधुनिक अवधारणा (Traditional and Modern Concepts of Financial Management)
- पूंजीकरण के सिद्धांत (Principles of Capitalization)
- अतिपूंजीकरण एवं अल्पपूंजीकरण (Higher capitalization and Lower capitalization)

इकाई – II: पूँजी ढाँचा नियोजन, विनियोग एवं पूँजी ढाँचा निर्णय (Capital Structure Planning, Appropriation and Capital Structure Decision)

- पूँजी ढाँचा नियोजन एवं पूँजी संरचना के गुण (Capital Structure Planning and Characteristics of Capital Structure)
- विनियोग एवं पूँजी ढाँचा निर्णय (Appropriation and Capital Structure Decisions)
- पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की लागत Cost of Various Sources of Capital)
- मूल्यांकन एवं प्रत्याय दरें (Appraisal and Recession Rates)

इकाई – III: कार्यशील पूँजी का प्रबंधन (Working Capital Management)

- कार्यशील पूँजी की अवधारणा (Concept of Working Capital Management)
- नकद या रोकड़ प्रबंधन (Cash Management)
- रोकड़ बजट (Cash Budget)

इकाई – IV : लाभांश (Dividend)

- लाभांश का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Dividend)
- लाभांश के प्रकार एवं लाभांश नीति (Types of Dividend and Dividend Policy)
- सुदृढ़ लाभांश नीति की पूर्व आवश्यकताएं (Prior Requirements of a Strong Dividend Policy)

- वाल्टर, गॉर्डन तथा मोदीगिलानी एवं मिलर के लाभांश मॉडल (Dividend Models of Walter, Gordon and Modi-Gilani and Miller)

इकाई – V: फर्म का मूल्यांकन तथा संविलयन एवं अधिग्रहण (Evaluation of Firm and Mergers and Acquisitions)

- फर्म के मूल्यांकन की अवधारणा (Concept of Evaluation of Firm)
- फर्म के मूल्यांकन की विधियाँ (Methods of Evaluating Firm)
- संविलयन एवं अधिग्रहण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Mergers and Acquisitions)
- संविलयन एवं अधिग्रहण के प्रकार (Types of Mergers and Acquisitions)
- संविलयन एवं अधिग्रहण के उत्प्रेरक तत्व (Factors of Mergers and Acquisitions)
- संविलयन एवं अधिग्रहण की असफलता के प्रमुख कारण (Major Reasons for the Failure of Mergers and Acquisitions)

सम्बन्धित पुस्तकें:

- Prasanna Chandra (2011) Financial Management, Eighth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Parrino & Kidwell (2011) Fundamentals of corporate finance, First Edition, Wiley India Pvt. Ltd., New Delhi.
- Khan and Jain (2011) Financial Management (Text Problems and Cases), Fifth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई – I: वित्तीय प्रबंधन का परिचय

इकाई की संरचना

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 वित्तीय प्रबंधन: उद्देश्य एवं क्षेत्र

1.4 वित्तीय प्रबंधक के कार्य

1.5 वित्तीय प्रबंधन की परंपरागत एवं आधुनिक अवधारणा

1.6 पूंजीकरण के सिद्धांत

1.7 अतिपूंजीकरण एवं अल्पपूंजीकरण

1.8 सारांश

1.9 बोध प्रश्न

1.10 संदर्भ ग्रंथ

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरांत आप निम्नलिखित को समझ सकेंगे:

- वित्तीय प्रबंध की अवधारणा, उद्देश्य तथा क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- वित्तीय प्रबन्धक के कार्य तथा वित्तद कार्यों का अत्यंत सबल, प्रगाढ़ विश्लेषण कर सकेंगे।
- वित्तीय कार्यों की अवधारणाओं को एवं दृष्टीकोन से अवगत हो सकेंगे।
- पूंजीकरण का अर्थ, सिद्धांतों एवं महत्ता को समझेंगे।
- पूंजीकरण की आवश्यकता एवं अवधारणा को समझ पाएगें।

- अतिपूंजीकरण की पहचान, प्रभाव, कारण एवं किए जाने वाले उपचार के संबंध में जानकारी प्राप्त करोगें।
- अल्पपूंजीकरण की पहचान, प्रभाव, कारण प्रभाव एवं उपचार इत्यादी संज्ञा को आप समझोंगे।

1.2 प्रस्तावना

वित्त प्रबन्ध यह निरंतर संचालित करने की एक प्रक्रिया है। वित्त के बैगेर न किसी व्यवसार को सुरू किया जा सकता है न किसी व्यवहार को सम्पन्न किया जा सकता है। वित्त वर्तमान व्यावसायिक प्रणाली का जिवन वायु है। यह व्यवसायिक समस्त प्रक्रिया का आधार है। किसी भी व्यवसार एवं उद्योग के वित्तीय स्थिती से अवगत करने एवं आवश्यक वित्तीय मांग की पुर्तता करने तथा उसके माग की प्राथमिकता सुनिश्चित करने हेतु वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता होती है। व्यापार एवं उद्योग की मांग के अनुसार उचित वित्त की पुर्तता ही व्यापार एवं उद्योग अर्थात व्यवसाय को संपन्नता से संचालित करने का मंत्र है। वित्तीय विश्लेषण एवं निवारण करके अन्य विविध मार्गों से वित्त एवं पूंजी जमा करणे का कार्य वित्तीय प्रबंध करता है। आधुनिक स्थिती में व्यापार एवं उद्योग की उन्नती वित्त प्रबंध पर ही अवलंबित है। उचित मात्रा में वित्त का निवेश करने एवं व्यय पर नियत्रंण रखने का कार्य वित्तीय प्रबंध करता है। वित्त प्रबंध की पर्याप्त व्यवस्थो के बिना अनेक परीयोजना अवास्तविक काल्पनिक योजनाएं बनकर रह जाती है।

किसी भी उद्दोंगो एवं व्यावसायों को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु आवश्य क सभी कार्यों को सम्पन्न। करने के लिए रोकड एवं पूंजी की आवश्यकता होती है। इसलिए पर्याप्त पूंजी प्राप्त करने, उसे समय पर उपलब्ध करने, उपलब्ध पूंजी का उचित उपयोग करने एवं पूंजी पर नियत्रंण रखने हेतु वित्तीय प्रबंधकों को विभिन्न, कार्य करना पड़ता है। पूंजी के बैगेर न किसी व्यवसाय को सुरू किया जा सकता है न किसी आर्थिक व्यवहार को सम्पन्न किया जा सकता है। पूंजी व्यावसायिक प्रणाली का जीवन वायू है। पूंजीकरण का आशय किसी भी उद्दोग व्यावसाय में निवेष की गई दीर्घकालीन कुल राशी पूंजी से की जाती है। नियोजन पूर्व तरीके से निवेष की गई इस दीर्घकालीन पूंजी में धारित अंशों की विक्रय, ऋण पत्रों एवं अन्य प्रतिभूतीयों के निर्गमन से प्राप्त पूंजी की कुलयोग को सम्मिलित किया जाता है। इस पूंजीकरण में व्यावसायिक की पूंजी का भी समावेश होता है। सामान्यतः पूंजीकरण के व्यापक आशय के अन्तर्गत व्यावसायिक की पूंजी ऋण पूंजी संचय, दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन ऋणों से प्राप्त पूंजी इत्यादी को सम्मिलित किया जाता है। पूंजीकरण में व्यवसाय के आवश्यक वित्तीय मांग का समावेश होता है जिसमें व्यवसाय की मांग के अनुसार निर्धारित वित्तीय पूंजी की लागत का अनुमान 'निकालकर पूंजी की मांग की प्राध्यनता को देखकर विनियोग का क्षेत्र सुनिश्चित किया जाता है। नये उद्दोग व्यवसाय स्थापित किए जा रहा, या पूर्व में कार्यरत उद्दोंग व्यवसाय का विस्तार किया जा रहा हो, या स्थाथपित उद्दोग व्यवसाय का समायोजन पूर्नगठन किया जा रहा हो अथवा दो उद्दोंगो व्यावसायों का संयोजन

या संविलपन हो रहा हो ऐसे स्थिती में पूंजीकरण की समस्या आवश्यता निर्माण होती है। उपरोक्त किसी भी परिस्थितियों में यह अनुमान निकाला जाता है कि विभिन्न प्रतिभूतीयों के माध्यम से कितनी पूंजी प्राप्ती की जाये अथवा व्यावसाय के सुचारू संचालन हेतु कुल कितने पूंजी की आवश्यकता है। यह निश्चित करना ही पूंजीकरण है। इसलिए उद्योंग व्यावसाय के लिए पूंजीकरण यह एक बहू आपनी व्यापक संकल्पना है जिससे व्यवसाय के वित्तीय मांग की आपूर्ती की जाती है।

1.3 वित्तीय प्रबंधन: उद्देश्य एवं क्षेत्र

वित्तीय प्रबंधन की अवधारणा

किसी भी उद्योगों, एवं व्यवसायों में अन्यि प्रबंधों से अधिक वित्तीय प्रबंध को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। क्योंकी व्यवसाय के अन्य सभी प्रबंधों को का वित्तींय प्रबंध मुख्यत केन्द्रबिंदू होता है। वित्तीय प्रबंध को रोकना या समाप्ती करना संभव नही है। ऐसा करने पर संपूर्ण व्यवसाय को सुचारू संचालन में विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। साथ ही व्यवसाय बंद पड़ने की भी संभावना होती है। किसी भी उद्योगों एवं व्यवसायों को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु आवश्यक सभी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए रोकड एवं पूँजी की आवश्यकता होती है। इसलीए पर्याप्त पूँजी प्राप्त करने उसे समय पर उपलब्ध करने, उपलब्ध पूँजी का उचित उपयोग करने एवं पूँजी पर नियंत्रण रखने हेतु प्रबंधकों को विभिन्न कार्य करना पडता है। इसे "वित्तीय प्रबंध" कहते है। वित्तीय प्रबंध का आशय है कि, उद्योग या व्यंवसाय के वित्तीय मामलों का प्रबंधन है। वित्तीय प्रबंध में, उद्योग या व्यवसाय को आवश्यक जरूरत पूँजी का सुचारू प्रबंधन किया जाता है। उद्योग एवं व्यवसाय को समय–समय पर जरूरत पडनेवाले विभिन्न पूँजी को प्राप्त करने, उस पूँजी को सही तरीके से विनीयोग करने, तथा अल्पे पूँजीकरण एवं अति पूँजीकरण से निर्माण होने वाली समस्याओं का निवारण करके पूँजीकरण का अनुचित व्यय बचाव कर उत्पाद व्यय पर नियंत्रण करने हेतु जो प्रबंधकिय कार्य किये जाते है उसे वित्तीय प्रबंध संबोधित किया जाता है।

वित्तीय प्रबंध की अवधारणा स्पष्टत करने हेतु विभिन्न प्रबंधन विशेषज्ञों ने परिभाषीत किया है। कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्नाकिंत के अनुसार है।

1. वेस्ट्न एवं ब्रिगहॅम के अनुसार "वित्तीय प्रबंध यह वित्तीय निर्णय प्रणाली का क्षेत्र है। व्यक्तीगत हेतु एवं व्यवसाय के उद्देशों में समन्वय निर्माण करने हेतु इस प्रकार के वित्तीय निर्णय लिए जाते है।"
2. प्रो.जे एल मॅसी के अनुसार "वित्तीय प्रबंध यह उद्योग एवं व्यवसाय के सुचारू संचालन से संबंधित प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया, उद्योंग एवं व्यवसाय के सुचारू संचालन करने हेतु विभिन्न कार्य सम्पन्न करने के लिए आवश्यक पडनेवाला निधी प्राप्त

करने, एवं उस निधी का प्रभावील रूप से इस्तेमाल करने के लिए कार्यान्वीत रहता है।

3. जोसेफ कॅडले के अनुसार "उद्योंग एवं व्यवसाय जैसे– उपक्रमों में व्यय करके, उन उपक्रमों के उद्देशों को हासील किए जाने हेतु पूँजी का प्रभावी उपयोग एवं पूँजी के स्रोतों की ध्यानपूर्वक चयन करने, को ही वित्तीय प्रबंध कहते है।

वित्तीय प्रबंध के उद्देश

वित्तीय प्रबंध का संबंध वित्त की प्राप्ती करना एवं उसका समुचित उपयोग इन दोन तत्वों (घटकों से) से मुख्य रूप से रहता है। व्यवसायीक संघटन के पास जमा हो रहे वित्त का, संघटन की ख्याती एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा वार्षिक आय में बढ़ोतरी होगी इस हेतु उपयोग करना अत्यंत आवश्यक होता है। व्यवसायिक वित्त का उचित उपयोग करने के लिए विभिन्न प्रकार के मार्ग उपलब्ध रहते है। इन सभी वैकल्पिक मार्गों का योग्य मुल्यांकन वित्तीय प्रबंधन के अतंर्गत किया जाता है। व्यवसाय संघटन के उद्देशों की प्राप्ती हेतु किन मार्गों का अवलंब करना चाहिए यह निर्णय लेने से पूर्व उस पर सभी दृष्टी ने विस्तार से विचार किया जाता है। तथा संघटन के व्यापारिक रणनीतियों का भी ऐसे निर्णय लेने से पूर्व विचार किया जाता है। किसी भी व्यवसाय के मुख्य उद्देश यह होता है कि, उस व्यवसाय के मालिकों को अधिकतम आर्थिक कल्याण साध्य करना है। वित्तीय प्रबंध की निम्मनांकित दो प्रमुख उद्देश है।

1. अधिकत (महत्तम) लाभ करना (Maximkzation of profit) हर व्यवसाय यह एक वित्तीय संघटना रहती है। व्यवसायिक संघटना में होने वाले कोई भी आर्थिक कार्य (वित्तीय कार्य) यह महत्वम लक्ष हासिल करने के उद्देश्य से की जाती है। व्यवसायिक संघटना निरंतर विकास एवं विस्तार की योजनाओं को संचालित करता है। यह योजनाओं को कार्यशिल करने हेतु व्यवसाय संघटन को लाभ होना अत्यत आवश्यक है। व्यवसाय की कार्यकुशलता मापने का "लाभ" यह एक प्रमाण है। व्यवसाय में रहने वाले विभिन्न जोखीमों को रोकथाम करने हेतु "लाभ'' यह सरंक्षण यंत्र के तौर पर कार्य करता है। व्यवसाय के उत्पादन के किंमत में होने वाली घट, अन्य व्यवसायिक संघटन से स्पंर्धा, सरकार की प्रतिकूल नितियाँ इत्यादी भिन्न प्रकार के जोखीम के विरुद्ध "लाभ" यह प्रभावी अस्त्र दृशस्त है। इसलिए महत्तम लाभ प्राप्त करने एवं उसमें निरंतर बाढ करते रहना इसे व्यवसाय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण उद्देश माना जाता है। लाभ को अधिकतम करने की आवश्यकता को न्यायोचित बताने के लिए निम्नलिखित स्वरूप के तर्को का आधार लिए जा है।
2. जब किसी व्यवसाय का उद्देश "लाभ अर्जित करना है, तब प्रबंधन का उद्देश स्पष्ट रूप से "महत्तम लाभ प्राप्त करना" यही रहना आवश्यक है।

3. व्यवसाय की लाभ मात्रा ही उस व्यवसाय की कार्यकुशलता एवं आर्थिक समृद्धी के मुल्यमापन करने हेतु महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसलिए महत्तम लाभ हासिल करना यह उद्देश श्रेष्ट उद्देश है।
4. विभिन्न परिस्थीतियों के कारण व्यवसाय उद्दोग में प्रतिकुल वातावरण निर्माण होने की संभावना रहती है। ऐसे प्रतिकुल वातावरण निर्माण होने की संभावना रहती है। ऐसे प्रतिकुल परिस्थितीयों में व्यवसाय संघटन उद्योंग टिक कर रहने के लिए जादा लाभ हासिल करने का प्रयास करना बहूत अनिवार्य है।
5. व्यवसाय उद्योंग संघटन के विकास हेतु वित्त की आवश्यकता होती है। "लाभ" यह वित्त" प्राप्त करके देने का एक स्रोत है, जिससे व्यवसाय के विकास हेतु महत्तम लाभ प्राप्त करना संघटन को आवश्यक है।
6. व्यवसाय संघटन को विभिन्न सामाजिक जबाबदारी निभाना पडता है। व्यवसाय संघटन का विकास होने पर समाज का भी विकास होता है। इसलिए सामाजिक उद्देशों को हासील करने के लिए प्रत्येक व्यवसाय ने महत्तम लाभ प्राप्त करना अत्यत आवश्यक है।

2. महत्तम सम्पदा प्राप्त करना (Wealth Maximization)

संपत्ती को बढ़ाना या अधिकाधिक संपत्ती प्राप्त करना इसे व्यवसाय का एक अत्यंत उपयुक्त उद्देश माना जाता है। भागधारकों का हित सुरक्षित एवं संवर्धन करने संपत्ती महत्तम करने यह उद्देश अत्यंत आवश्यक है ऐसा विभिन्न वित्तीय सिद्धातों के आधार पर किया जाता है। कार्यशील वित्तीय प्रबंधन के नितियों के अनुसार संपत्ती में बढ़ोतरी करने का कार्य अत्यंत सावधानी से विवेकपुर्ण करना आवश्यक है। जिससे निवेशकर्ता, व्यवसाय में कार्यरत कर्मी एवं समाज इन सबका हित सुरक्षित रखना अपेक्षित है। भागधाराकों की तरह अल्पकालीन एवं दिर्घकालीन (लेनदार) कर्जदाते इनके भी हित व्यवसाय संघटन में उनके कर्ज की मर्यादा तक रहता है। अल्पकालिन कर्जदार व्यवसाय संघटन के तरल संपत्ती पर भर देता है एवं उनके कर्ज की वापसी प्राप्त होने पर जोर देता है। उसी तरह दिर्घकालिन कर्जदार उनके वार्षिक व्याज नियमित रूप से प्राप्त करने पर भर देता है तथा अपने कर्ज वापसी हेतु प्राथमिकता अपेक्षित रखते है। इसलिए संपत्ती में बाढ होने पर सिर्फ भागधारकों के हित ही सुरक्षित किए जाते है ऐसा न हो कर सभी प्रकार के कर्जदारों के हित सुरक्षित करने एवं रखने को महत्व दीया जाता है। व्यवसाय संघटन के संपत्ती में बाढ होने पर कुशल एवं प्रशिक्षीत कर्मी प्राप्त करना आसान होता है। उत्तम कार्य कुशल कर्मी के कारण व्यवसाय संघटन के संपत्ती में बाढ होने की संभावना अधिक होती है। इस सभी मामलों पर उत्तम नियंत्रण रखने की आवश्यकता होती है। जिसे वित्तीय प्रबंधन महत्वपुर्ण कार्य करता है।

वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र

वित्तीय प्रबंध यह व्यवसाय प्रबंधन का एक मुख्य पार्ट है। इसका क्षेत्र व्यवसाय प्रबंधन की तरह बडे पैमाने पर फैला है। व्यवसाय उद्योग के अल्पकालिन तथा दीर्घकालिन मांग की पुर्तता करने के लिए उचित प्रमाण में वित्त की व्यवस्था करने यह वित्ते प्रबंध का मुख्य उद्देश रहता है। यह प्राप्त वित्त कम–से–कम उचित व्यय करते हुए व्यावसाय के लाभ में बढोत्तरी करना यह भी वित्त प्रबंध का मुख्य उद्देश रहता है। इन उद्देशों को नजर के सामने रखते हुए वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्रों का अध्ययन हम निम्नलिखित के आधार पर कर सकते है।

1. **वित्तीय मांग का पूर्वानुमान (वित्त का नियोजन)** – व्यवसाय के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन वित्तीय मांग का पुर्वानुमान लगाना अनिवार्य समजा जाता है। जिससे वर्तमान माँग के साथ–साथ व्यवसाय के भविष्यकालीन माँग की भी वित्तीय प्रबंधक को अनुमान निकालना पडता है। इसलिए विभिन्न– प्रकार के नियोजन करना पडता है। वित्तीय माँग का अनुमान निकालते समय उसमें कोई कमी निर्माण नही होगी तथा अतिरिक्त पूंजी भी जमा नहीं होगी इसकी बड़ी दृढ़ता से एहतियात वित्तीय प्रबंधक को लेना आवश्यक है।
2. **पूंजी संरचना** – व्यवसाय के लिए अनिवार्य पूंजी का कितना हिस्सा अंश पूंजी, प्रतिभूतियाँ एवं ऋणपत्रों में विभाजित किया जाना है एवं उसका अनुमान निश्चित करने इसे पूंजी संरचना कहते है। हर व्यवसाय की प्रकृती, स्वारूप, कार्यप्रणाली, पूँजी की माँग, एवं व्यवसाय की स्थिती से पूँजी संरचना करने का कार्य बड़ी गंभीरता से सावधानी से वित्तीय प्रबंधक को करना पड़ता है।
3. **वित्त स्रोतों का चयन** – पूंजी की संरचना निश्चित होने के पच्छात उसके लिए आवश्यक विभिन्न स्रोतों का चयन किया जाता है। अंश पूंजी, ऋणपत्रों, बँकों एवं वित्तीय संस्थान से कर्जे, जननिपेक्ष इत्यादी स्रोतों का पूंजी जमा करने हेतु उपयोग किया जाता है। वित्त स्रोतों का चयन करते समय वित्त की मांग, प्रयोजन, उद्देश एवं उसे प्राप्त करने हेतु होने वाला व्यय इन सभी तत्वों का बड़ी सावधानी से विचार कर वित्तीय प्रबंधक वित्त स्रोतों का चयन करता है।
4. **विनियोग का चयन (Selection of Investment)** – पूंजी प्राप्ती की व्यवस्था के उपरांत प्राप्त निधी उचित उद्देश एवं हेतु से आवश्यकता के अनुसार विनियोग करने का महत्ववपूर्ण कार्य वित्त प्रबंधन द्वारा किया जाता है। यह निर्णय अत्यंत गंभिरता से लिया जाना आवश्यक है। समान्य प्रथम स्थायी संपत्ती के क्रम हेतु प्राप्त। पूंजी का विवियोग किया जाता है। तत्पश्चात चालू सम्पत्तियों में विनियोग किया जाता है।
5. **रोकड प्रबंध (Cash management)** – वित्तीय प्रबन्ध के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत रोकड प्रबंधन का कार्य सम्मिलित किया जाता है। किसी भी उपक्रम में विभिन्न मामलों पर विभिन्न बार रोकड से व्यवहार करना आवश्यक होता है। सामान्यतः रोकड उपलब्ध करने वाले स्रोत, जैसे की नगद विक्रय कर्ज की वसुली, बँक से अल्पावधि कर्ज

इत्यादी स्रोत है। इस स्रोतों के माध्यम से उचित प्रमाण में रोकड उपलब्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय प्रंबधन द्वारा किया जाता है। इसके लिए नियमित रूप से "रोकड प्रवाह विवरण" (Cash Flow details) निर्माण करना आवश्यक है।

6. **वित्तीय प्रबंध का संगठन (Organisation of Financial Management)** – वित्तीय प्रबंध के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत वित्तीय प्रबंधन संगठन, कोषाध्यक्ष, नियंत्रक एवं प्रबंधकों के कार्यों, अधिकारों एवं दायित्वों का निर्धारण सम्मिलित किया जाता है। सभी प्रकार के लेखा पुस्तकों के रखने व्यवस्था एवं प्रक्रिया भी वित्तीय प्रबंध के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित कि जाती है।
7. **वित्तीय नियंत्रण का अमंल (Implementing Financial Control)** – वित्तीय नियंत्रण कौशल्यपुर्ण तरीके से अमंल में लाना यह वित्तीय प्रबंध का क्षेत्र है। व्यवसायिक लक्ष्यो को प्राप्ती करने के वित्तीय नियंत्रण का अमंल करना अत्यंत आवश्यक है। वित्तीय नियंत्रण का अमंल करहे हेतु वित्त सम्बन्धी पूर्वानुमानी आंकड़ों से वास्तविक वित्तीय आंकड़ो की तुलना की जाती है।
8. **लाभ का प्रबन्धस (Profit Management)** – लाभ का उचित उपयोग करने का महत्वपूर्ण कार्य भी वित्तीय प्रबंध का कार्यक्षेत्र माना जाता है। लाभ का उचित उपयोग व्यवसाय का विकास एवं विस्तार करने के लिए तथा अंशधारकों के हितों का सरंक्षण करने के लिए आवश्यक होता है। लाभांश की निती सुनिश्चित कर उसके अनुसार प्राप्त "लाभ" (आय) के बिनियोग की योजना तयार करना वित्तीय प्रबंधक को उचित होता है।

1.4 वित्तीय प्रबंधक के कार्य

व्यावसायिक संगठन के आर्थिक स्थिती का जायजा (विचार करके) लेकर वित्तीय मांग की पूर्तता करने, एवं व्यवसाय के वित्तीय मांगों की प्राधान्यक्रम सुनिश्चित करने का कार्य विन्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है। विभिन्न मार्गों से वित्त एवं पूंजी जमा करने, उसका उचित मात्रा में निवेश करने तथा व्यय पर नियंत्रण रखने जैसे महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किए जाते है। महत्तम लाभ एवं संपत्ती प्राप्त करना इस व्यवसाय संगठन के उद्देश को हासिल करने के लिए वित्तीय प्रबंधक विभिन्न प्रकार की नितीयाँ एवं रणनितीयाँ तयार करते है। इन्ही कारणों से वित्तीय प्रबंधक का स्थान, व्यवसाय संगठन में उच्च प्रबंधन वाले स्तर पर होता है। आधुनिक स्थिती में व्यापार एवं उद्योंग की उन्नती वित्त प्रबंधक पर ही अवलंबित है। व्यावसायिक क्रियाओं की सफलता मुख्य रूप से वित्तीय प्रबंधक पर ही निर्भर करती है। वित्तीय प्रशासन का संपूर्ण दायित्व उसके कार्यक्षेत्र में आता है। वित्तीय प्रबंधक के कार्यों का अध्ययन हम निम्मलिखित के आधार पर कर सकते है।

1. **प्रशासकीय कार्य**– वित्तीय प्रबंधक का स्थापन उच्च। प्रबंधन वाले स्तर में होता है। व्यावसायिक संगठन के लक्ष हासिल करने के लिए उन्हें विभिन्न प्रकार की नितीयाँ

एवं रणनितीयाँ तयार करने का कार्य करते है। व्यावसायिक संगठन के आर्थिक स्थिती का मुनाना करने दिर्घकालिन एवं अल्पकालिन वित्तीय योजना तथा बजट निर्माण का कार्य वित्तीय प्रबंधक करते है। व्यावसायिक संगठन के वित्तीय विभाग में कार्यरत सभी कर्मी जैसे की कॉरीअर लेखापाल, ऑडिटर, निरिक्षक, नियंत्रक एवं विभिन्न प्रबंधकों के कार्यों, अधिकारों एवं दायित्वों का निर्धारण का कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है।

2. **वित्तीय मांग का पूर्वानुमान कार्य–** वित्तीय प्रबंधक को व्यावसायिक संगठन के अल्पकालिन एवं दिर्घकालिन वित्तीय मांग का पूर्वानुमान करना आवश्यक होता है। वर्तमान मांग के साथ–साथ भविष्यकालिन मांग की भी संभावना देखणी पड़ती है।
3. **पूंजी प्राप्ती एवं प्रबंधक कार्य–** व्यावसायिक संगठन के लिए उचित मात्रा में वित्त की प्राप्ती करना एवं अतिरिक्त पूंजी जमा भी न हो इसका पूरा ख्याल रखना वित्तीय प्रबंधक करता है। प्राप्त राशी का उचित विनियोग करते हूए व्यावसाय के लिए दैनिक कार्य सुचारू रूप से संचालन करने हेतु आवश्यक कार्यशिल पूंजी प्रबंधन करना उसका कार्य है।
4. **पूंजी संरचना कार्य–** व्यावसाय के लिए अनिवार्य पूंजी का कितना हिस्सा अंश पूंजी, प्रतिभूतियाँ एवं ऋणपत्रों में विभाजीत किया जाना है यह अनुमान निश्चित करने को पूंजी संरचना कहते है। यह कार्य वित्त प्रबंधन द्वारा किया जाता है।
5. **वित्तीय स्रोतों का चयन–** पूंजी की संरचना निश्चित होने के पच्छात उसके लिए आवश्यक स्रोतों का चयन करने का कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है। वित्तीय स्रोतों का चयन करते समय वित्त की मांग, प्रयोजन, उद्देश एवं उसे प्राप्त करने हेतु होने वाला व्यय इन सभी तत्वों का बड़ी सावधानी से विचार कर वित्ती प्रबंधक वित्तीय स्रोतों का चयन करने का कार्य करता है।
6. **विनियोग का चयन कार्य–** पूंजी प्राप्ती की व्यवसाय के उपरान्त प्राप्त निधी उचित उद्देश एवं हेतु से आवश्यकता के अनुसार विनियोग करने का महत्वपूर्ण कार्य वित्त प्रबंधक द्वारा किया जाता है। सामान्यतः वित्त प्रबंधक सर्व प्रथम स्थायी सम्पत्ती के क्रय हेतु प्राप्त पूंजी का विनियोग करता है तत्पश्चात चालू संपत्ती में विनियोग करता है।
7. **रोकड प्रबंध का कार्य–** किसी भी व्यवसाय में विभिन्न मामलों पर विभिन्न बार रोकड से व्यंवहार करना आवश्यक होता है। सामन्यतः नकद विक्रय, कर्ज की वसुली, बँक से अल्पवधी कर्ज इत्यादी स्रोतों से उचित प्रमाण में रोकड उपलब्ध। करने का महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है। इसके सुचारू संचालन हेतु "रोकड प्रवाह विवरण" निर्माण करने का कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है।
8. **वित्तीय नियंत्रण का अमंल करना** – वित्तीय नियत्रंण कौश्यलपूर्ण तरीके से अमंल में लाने का कार्य वित्त प्रबंधक द्वारा किया जाता है। व्यावसायिक लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए वित्तीय नियत्रंण का अमंल करना अत्यंत आवश्यक है। वित्तीय नियत्रंण का

अमंल करने हेतु सम्बन्धी त पूर्वानुमानीत आंकडों से वास्तविक आकंड़ों की तुलना कर उचित दिशा में निर्णय लेने का कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है।

9. **लाभ का प्रबंधन कार्य** – 'लाभ' का उचित उपयोग व्यवसाय के हित में करने का कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है। लाभ के निधी का विभिन्न– योजनाओं में पूर्नविनियोग करने से व्यवसाय का विस्तार होता हैं परंतु अंश धाराकों के हित पर आघात होता है। इसलिए लांभ की निती निश्चित करने का कार्य वित्तीय प्रबंधक द्वारा किया जाता है। लांभाश की घोषणा एवं भविष्यकालिन लाभ प्रदकता से व्यवसायिक संगठन के अंशों की बाजार में किमंत बढ़ती है। इसलिए वित्त प्रबंध उक्त दोनों बिन्दू पर गंभीरता से विचार कर लाभ के निधी का उचित प्रबंधन करने का कार्य करता है।
10. **दैनिक कार्य** – वित्तीय प्रबंधक को, वित्त विभाग से सबंधित सभी व्यवहार का लेखा रखना, वित्तीय विवरणों को तैयार करना, उनका पर्यवेक्षण करने, वित्तीय प्रपत्रों एवं लेखा को सुरक्षित करने, इत्यादी कार्य करने आवश्यक है।
11. **व्यावसायिक कार्य** – वित्तीय प्रबंधक को संगठन के प्रवर्तन के वक्त वित्तीय योजना तैयार करने, वित्तीय संकट के समय वित्त पूनरू समायोजन करने, सममिलन के समय संगठन का मूल्यांकन करने, लांभाश निती पर सलाह देने, पेशंन, कल्याण, तथा अंशधारियों से संपर्क इत्यादी कार्य करना पड़ता है।

1.5 वित्तीय प्रबंधन की परंपरागत एवं आधुनिक अवधारणा

किसी भी व्यावसाय में अन्य कार्यों से "वित्त कार्य" अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। अन्य कार्यों का 'वित्ती' कार्य यह प्रमुख केन्द्रक बिन्दू रहता है। वित्त कार्य रोकने या समाप्त करने की कोई संभावना नहीं होती। ऐसा करने पर संपूर्ण व्यावसाय बंद हो जाएगा। सभी व्यावसायों को वित्त की निरंतर आवश्यकता होती है। वित्त की मांग समाप्त हो गई ऐसा नही हो सकता। इसलिए "वित्त कार्य" को व्यावसाय का आत्मा कहा जाता है। व्यावसाय का विकास एवं विस्तार करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है। यह धन प्राप्ती विभिन्न मार्गों स्त्रोतों की जाती है। इन उपलब्ध स्त्रोतों के गुणदोषों का विचार कर एवं उसके लाभ तथा घाटों का मुनाना कर, अधिक लाभ वाले स्त्रोतों का चयन व्यावसायिक द्वारा किया जाता है। वित्त कार्य की सफलता वित्त के उचित स्त्रोतों के चयन पर लंबित रहति है। किसी भी व्यावसाय व्यापार उद्दोग में वित्त कार्य केवल वित्त प्राप्त करना ही न होकर प्राप्त वित्त का अर्थ विनियोग करना भी महत्वपूर्ण कार्य है। क्योंकी व्यावसायिक एवं व्यावसाय यह कानून के तौर पर भिन्न होते है। व्यावसायिक द्वारा खुद का वित्त पैसा भी अगर व्यावसाय में निवेष किया तो भी व्यावसाय के दृष्टी से यह "देयता" ही होता है और इस वित्त को कभी ना कभी वापस देना ही पड़ता हैं। इस तरह व्यावसाय में अनेवाला वित्त कभी ना कभी वापस करना जरूरी होता है। इसलिए प्राप्त वित्त का उचित विनियोग कर व्यावसाय का विकास किया गया तो यह प्राप्त वित्त वापस करना सुलभ होता है, अन्य तथा अनेक किस्म की समस्या निर्माण होकर व्यावसाय बंद करके व्यावसाय की सम्पत्ती बेचकर यह वित्त वापस

करना पड़ता है। वित्त प्राप्त करना आथवा/सुलभ हो शकता है, परंतु उसे लौटाना बहूदा कठीण मामला बन सकता है। इसलिए वित्त के अंर्तप्रवाह एवं बर्हिप्रवाह में उचित प्रकार की एकरूपता होना अनिवार्य है।

परीभाषा –

1. गुडमेन एवं डुगल के अनुसार, "व्यावसाय में आवश्यक वित्त को विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त करना, उसका विनियोजन करना, नियंत्रित करना तथा प्रशासित करना वित्त कार्य है।"
2. आर.सी ओसबोर्न के अनुसार, "कोषो की व्यवस्था के साथ–साथ प्राप्त कोषो (वित्त) का प्रभाव पूर्ण उपयोग करना वित्त कार्य है।"

वित्त कार्य की तरफ देखने का दृष्टीकोन (अवधारणा) अनेक विद्वानों में, समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन की दशा में बदल रहा है। वित्त कार्य का क्षेत्र एवं उसका विकास से वित्त कार्य की अवधारणा में निरंतर बदलाव हो रहा है। इस बदलावों को तीन प्रकार में वर्गीकृत किया गया है।

1. परंपरागत अवधारणा
2. तरलता अवधारणा
3. आधुनिक अवधारणा

परंपरागत अवधारण

एफ. डब्यूगत वेश के अनुसार, "व्यावसाय की आवश्यकतानुसार वित्त प्राप्त करके देना यह वित्त कार्य है। इस अवधारणा से यह स्पष्ट होता है कि, वित्त कार्य का संबंध यह मुखतः व्यावसाय के आवश्यकता के अनुसार पूंजी प्राप्त करने तक ही सिमित है। वित्त कार्य की परंपरागत अवधारणा के अंतर्गत वित्तय पूंजी की व्यवस्था करना एवं उससे संबंधित समस्त कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। परंपरागत अवधारणा 1920 से 1930 की दशक में विकास की अवस्था में थी। इस अवधारणा के अंतर्गत निम्नांकित कार्य को वित्त कार्य में सम्मिलित नही किया गया था। जैसे की,

1. व्यावसाय को समय–समय पर लगने वाले आवश्यक पूंजी का अनुमान करना।
2. व्यावसाय की पूंजी संरचना सुनिश्चित करना।
3. पूंजी का विनियोग करना।
4. पूंजी विनियोग से प्राप्ती लाभ का अनुमान करना।

उपरोक्त कार्यों को वित्त कार्य में सम्मिलित नहीं करने के कारण परंपरागत अवधारणा के अनुसार व्यावसाय को आवश्यक पूंजी प्राप्त करना ही वित्त कार्य है ऐसा समिकरण प्रांरभिक अवस्था में रूढ़ हो गया।

1. परंपरागत अवधारणा के अंतर्गत वित्त कार्य प्रमुख रूप से वित्त की व्यवस्था करना तथा समय–समय पर आवश्यकता नुसार अन्य कार्यों को सम्पन्न करने तक सीमित है, जिसमें पूंजी प्राप्ती के साधनों, संस्थागत स्त्रोतों तथा प्रचलित व्यवहारों को अधिक प्रमुखता प्रदान की गई।
2. वित्त कार्य की परंपरागत अवधारणा के अंतर्गत ऐसे मामलों, जिनका संबंध दैनिक व्यावसाय संचालन से न होकर कभी–कभी उत्पन्न होने वाली समस्याओं से होता था, जैसे की, प्रवर्तक, प्रतिभुतियाँ पूंजी बाजार, पुनसंगठन, एकीकरण, संविपन आदी, पर अध्ययन करने को अनुचित बल देता है।
3. वित्त कार्य की परंपरागत अवधारणा में वित्त को प्राप्त करने एवं दीर्घकालीन वित्तीय समस्याओं पर अधिक बल दिया है तथा वित्तिय निर्णायकों के अवधारणा तथा कार्यशिल पूंजी की प्रबंध की समस्या पर कोई महत्व नहीं दिया गया। जबकी यह कार्यशिल पूंजी के प्रबंध की समस्या एक अत्यधिक महत्वपूर्ण समस्या है।

आधुनिक अवधारणा

बदलते व्यावसायिक वातावरण में कमजोर सैद्धान्तिक आधार वाली, एक तरफ वित्त प्रणाली पर जोर देने वाली परम्परागत विचारधारा का महत्व समाप्त हो गया है। वर्तमान स्थिती में वित्तीय कार्य, व्यावसायिक प्रबंध का महत्वपूर्ण अंग तो है ही साथ में व्यावसाय के सुचारू संचालन एवं उसके उद्देशों को हासिल करने में वित्तीय कार्य की बहू आयामी आधारभुत भूमिका है। आधूनिक काल में वित्त कार्य की सर्पक व्याख्या करने वाले विभिन्न विद्वानों के अनुसार वित्त कार्य का संबंध निम्ननांकित कार्य से आता है।

1. व्यावसाय की वित्तीय मांग अनुमानित कर उसका वित्तीय नियोजन करना।
2. विभिन्न स्त्रोतों से पूंजी प्राप्त करना।
3. पूंजी का परिणाम कारक अनुकुल उपयोग करना।

उपरोक्त के अनुसार वित्त कार्य का अन्य कार्यों के साथ सबंध को देखते हुए यह स्पष्ट होता है की, व्यावसाय के विकास के लिए निर्माण किए गए वित्त का उचित उपयोग करने हेतु व्यावसायिक को विनियोग संबंधी निर्णय लेने, वित्त स्वरूप के मांमलों पर निर्णय लेने, एवं लांभाश के संबंध में उचित निर्णय लेने इत्यादी तिन निर्णय लेना आवश्यक होता है। वित्त कार्य के उद्देशों में निवेषकर्ता के व्यक्तिगत उद्देशों एवं हित संबंध तथा व्यावसाय के उद्देश एवं हित संबंध इसमें समन्वय प्रस्थापित करना यह मुख्य उद्देश है। आधूनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य में वित्त पूर्वानुमान, वित्तीय नियोजन एवं वित्तीय संगठन इन कार्यों के साथ वित्तीय विश्लेषण, वित्तीय नियत्रंण तथा वित्तीय नितीया एवं योजनाओं का मूल्यमापन इत्यादी कार्यों को भी सम्मिलित किया गया है। एक सुदृढ़ व्यावसाय के विकास तकनिकी सुधारों विस्तृत विपणन, विभिन्न गतिविधियों तथा स्वस्थ प्रतियोगीता में व्यावसाय को निरन्तर स्थिर रखने के लिए वित्त कार्य अब एक प्रशासनिक प्रक्रिया का रूप ले चुका है।

अतः वित्त कार्य से आशय किसी भी व्यावसायीक संस्थात के लिए आवश्यक मांग के अनुसार वित्त प्राप्ती की व्यवस्था करने से है। लेकिन यह परंपरागत विचारधारा है। वर्तमान में वित्त कार्य से आशय, व्यावसाय के लिए न सिर्फ आवश्यक मांग के अनुसार वित्त की व्यवस्था करना ही नहीं तो यह भी देखना है कि प्राप्त वित्त का उचित एवं प्रभावपूर्ण उपयोग हो रहा है की नही इसे आधूनिक विचारधारो कहते है।

1.6 पूंजीकरण के सिद्धांत

पूंजीकरण का आशय, परिभाषा

व्यावसाय उद्योग को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु आवश्यक वित्तीय राशी का सुनिच्छित निर्धारन कर उसे प्राप्तस करने हेतु उचित स्त्रोतों का निर्धारन किया जा है, इसे सामान्यतः अर्थ से पूंजीकरण कहते है।

अ) गरस्टेन बर्ग – के अनुसार पूंजीकरण में, व्यवसायिक संस्थान की खुद मालकी हक्क पूंजी/राशी एवं व्यवसायीक संस्थान ने उधार ली हुई पूंजी/राशी ऐसे दोनों प्रकार के पूंजी/राशी का समावेश होता है।

ब) गुथर्मन एवं डग्गल के अनुसार, "व्यवसायीक कंपनी के एवं ऋणपत्रों के सममुल्यश का योग ही पूंजीकरण है।

क) गिल्वमर्ड हॅरोल्डग के अनुसार निम्नलिखित किसी भी एक आशय से पूंजीकरण का अर्थ स्पष्ट किया जा

सकता है।

i) किसी विशेष कालावधी के अदत्तड प्रतिभूतीयों (Securities) अंश (Shares) एवं ऋणपत्रों (Debenture) इनके सममूल्यों का कुल योग को पूंजीकरण कहते है।

ii) "किसी विशेष कालावधी के सभी अदत्त प्रतिभूतीयों के कुल सममुल्य एवं सभी दिर्घकालिन देयतांथों का मूल्याोकन"ॉ पूंजीकरण कहते है।

iii) "व्या"वसायध्उद्योंग की कुल पूंजी एवं देयता की कुल राशी" को पूंजीकरण कहते है।

पूंजीकरण का आशय

आधूनिक अवधारणा के अनुसार पूंजीकरण में दिर्घकालिन देयता के साथ–साथ अल्पजकालिन देयतांओं का विचार करना अनिवार्य है। आधूनिक अवधारणा के अनुसार पूंजीकरण में निम्नीनांकित को सम्मिलित किया जाता है।

i. व्यायवसायध्उद्योगध्कंपनी ने जारी किए गए अंश पूंजी

ii. दिर्घकालिन ऋण (Share capital)

iii. संचिती एवं आधिक्यें (Reserve & Surplus)

iv. अल्पतकालिन ऋण (Short term Debt)

v. धनकों (Creditors)

पूंजीकरण की उद्देश

किसी भी व्योवसाय को सुसचालित करने हेतु पूंजी की आवश्यसकता होती है। व्यातवसाय के विभिन्नक क्षेत्रों की मांग को देखते हुए पूंजीकरण किया जाता है। निम्नकलिखित उद्देशों को सामने रखते हूए पूंजीकरण की प्रक्रिया सम्पभन्नन की जाती है।

व्यारवसाय को स्थाकपन करने

सामान्य ।तरू व्याथवसाय सुरू करने की प्रक्रिया से ही व्यारवसाय स्थापपन किया जाता है। व्यातवसाय स्थातपन करते समय व्यानवसाय की मांग के अनुसार पूंजीकरण की प्रक्रिया कार्यान्धीरतध्चलाई की जाती है। व्याावसाय के कार्य के स्ववरूप के अनुसार पूंजीकरण की मांग निश्चित कर व्या वसाय को स्थापन करते समय पूंजीकरण किया जाता है।

व्यावसाय का विकास–विस्तावर करने

चालू व्यांवसाय का विकास करने के लिए या व्या्वसाय का विस्ता र करने हेतु व्याावसाय में अधिक पूंजी की आवश्यवकता होती है। व्यासवसाय के विकास स्तसर एवं विस्ताकर का क्षेत्र को मददे नजर रखते हुए अधिक्यव पूंजी की मांग सुनिश्चित कर व्याहवसाय में पूंजीकरण की प्रक्रिया कार्यान्वीवत कर आवश्य क पूंजी पूंजीकरण के द्वारा प्राप्तश की जाती है।

दो व्या्वसायों का एकत्रीकरण तथा संविलयन करने

दो व्या।वसायोंका एकत्रीकरण करने के लिए पूंजी की पुनर्रचना की जाती है। उसी प्रकार दो व्यावसायों का परस्प्र एकमेक में संविलयन करने हेतु पूंजी की पुनर्रचना की जाती है। इस दोनो स्थिती में पूंजीकरण की प्रक्रिया कार्यान्वीत की जाती है।

व्यावसाय के पुनर्संघटन करने

पूराने व्यावसाय का पुनर्संघटन कर व्यावसाय के स्वरूप एवं प्रकृती में बदल करने का प्रयास करते समय पूराने पूंजी सरंचना का कोई खास उपयोग नही होता, इसलिए व्यावसाय के पूर्नसंघटन करते समय पूर्नसंघटीत व्यावसाय में पूंजी की मांग के अनुसार पूंजीकरण की प्रक्रिया का निर्वाहन किया जाता है।

पूंजीकरण के सिद्धान्त

सामान्यतः पूंजीकरण की आवष्यकता दो स्थितियों में आती है। व्यावसाय/कंपनी सुरू कर प्रस्थापित करते वक्त एवं चालू व्यावसाय/कंपनी में विकास तथा बदलाव करते वक्त व्यवसाय/कंपनी सुरू करते वक्त पूंजीकरण सुरू से किया जाता है एवं भविष्य में जरूरतों की संभावना अनुभव के आधार पर की जाती है। दोनो ही स्थिती में पूंजीकरण की निधी का निर्धारण बड़े कौश्यल्य से एवं सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। पूंजी के कुल नीधि का निर्धारण दो माध्यमों से किया जाता है। इन दो माध्यमों को ही पूंजीकरण के सिद्धान्त कहते है, जिसका वर्णन आगे किया गया है।

लागत का सिद्धान्त

व्यवसाय/कंपनी सुरू करते समय स्थायी सम्पत्तियों जैसे, यंत्र, मशीनरी, जमीन, विल्हींग इत्यादी वस्तुओं में विनियोग की आवश्यकता होती है, तथा व्यवसाय प्रवर्तन एवं सूसंचालन संगठन हेतु विभिन्न खर्च करने पडते है। दिन प्रतिदिन में व्यवसायीक व्यवहारों के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इन विभिन्न मामलों पर की जाने वाली लागत का कुलयोग करने पर व्यवसाय/कंपनी के पूंजीकरण की राशी ज्ञात होती है। लागत के सिद्धान्त के अनुसार व्यवसाय/कंपनी का पुंजीकरण उसके विभिन्न मामलों पर अनुमानित लागत के आधार पर किया जाता है।

पूंजीकरण की कुल राशी = स्थायी संम्पत्तियों में अनुमानित विनियोग राशी + कार्यशिल पूंजी लागत + व्यवसाय स्थापना की लागत + व्यवसाय में बदलाव की लगत

पूंजीकरण का यह सिद्धान्त तर्क संगत जान पडता है, क्योंकी किसी भी व्यवसाय को सुरू करते समय पूंजी की मांग सम्पत्तियों को खरेदी करने के लिए पडती है, तथा व्यवसाय के

सुचारू संचालन हेतु पडती है। इस कारण लागत के आधार व्यवसाय/कंपनी का पूंजीकरण करना युक्तीसंगत होता है।

लगत का सिद्धान्त में व्यवसाय/कंपनी के आय प्राप्ती की क्षमता का विचार नही किया जाता जिससे व्यावसाय/कंपनी के वास्तविक मुल्यं को प्रदर्शित करना पूर्णतः असंभव होता है, जो की पूंजीकरण का मूख्य उद्देश्य है।

लागत सिद्धान्त के लाभ :

1) व्यावसाय/कंपनी को सामान्यतः नये सिरे से स्थापन करते समय यह सिद्धान्त के अनुसार पूंजीकरण के राशी का वास्तविक अनुमान प्रवर्तकों को द्वारा लागत के आधार पर लिए जाता है।

2) नयी प्रस्तावित परियोजनाओं की दशा में विभिन्न प्रकार की स्थिर एवं चल सम्पत्तियों की पूंजी लागते उनके मुल्य के पूर्वानुमानों के आधार पर आकलित की जाती है, जिससे विनियोजित राशी की मात्रा ज्ञान कर पूंजीकरण राशी का निर्धारण किया जाता है।

3) पूंजीकरण की मात्रा प्रस्तावित व्यावसाय के तुलन–पत्र (Balance Sheet) की परिसम्पत्तियों की ओर (Assets Side) दिखलायी जाने वाली समस्त मदों की धनराशीयों के जोड के बराबर होती है। जिसे इस सिद्धान्त के आधार पर आसानी से ज्ञात/समजा जा सकता है।

4) लागत का सिद्धान्त उन्ह व्यवसायों के लिए उपयुक्त है, जिनमें स्थिर पूँजी की मात्रा अधिक होती है और आय नियमित एवं निरन्तर रूप से होती रहती है। जैसे– सामुहिक जनोपयोगी व्यवसाय

पूँजीकरण का आय सिद्धान्त :– किसी भी व्यावसाय का मुख्य उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। किसी भी व्यावसाय के लाभ प्राप्त करणे की क्षमता पर ही उस व्यावसाय का वास्तविक मुल्य अवलंबित रहता है। लाभ प्राप्त करने की क्षमता पर ही व्यावसाय की सफलता अथवा असफलता का निर्धारण होता है। अतः व्यावसाय से इतना लाभ अवश्य प्राप्त होना चाहिए जिसमें से परिचालन व्यय आदि घटाने के बाद इतनी राशि अवश्य रह जाए कि जो ऋणों के व्याज एवं अंशधारियों द्वारा विनियोजित पूँजी पर उचित मात्रा में लाभांश दिया जा सके। पूँजीकरण के कुल राशी का निर्धारण उस व्यवसाय के लाभा प्राप्त करने की क्षमता एवं पूँजीकरण का प्रत्याय दर पर अवलंबित रहता है। पूंजीकरण का आय का सिद्धान्त यह तकनिकी तौर तर उचित एवं तर्कशुद्ध है, क्योंकी इस सिद्धान्त में व्यवसाय की कुल पूंजीकरण की राशि यह उस व्यवसाय की लाभ प्राप्त करणे की क्षमता से सिधे जोडी जाती है, जिससे वास्तविक पूंजीकरण की राशी का निर्धारण किया जाता है। अगर कोई व्यवसाय/कंपनी इस मुख्य उद्देश्य की पुर्तता नही करता, तो लागत के आधार पर बिनियोजीत पूँजी के मुल्य का अवमुल्यन हो जायेगा। इसका अर्थ यह हुआ की

व्यवसाय/कंपनी की आय का उसके पूँजीकरण की मात्रा से निकट का सम्बन्ध है तथा किसी भी व्यवसाय/कंपनी का पूँजीकरण उसकी आय उपर्जित करने की योग्यता के क्षमता पर किया जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार पूँजीकरण सुनिश्चित करने के लिए आय का अनुमान एवं पूँजीकरण दर का स्पष्ट रूप से अनुमान निकालना आवश्यक होता है।

माना कि किसी कंपनी को 5,00,000 रूपये सालाना मुनाफा होता है एवं पूँजीकरण प्रत्याय उचित दर 17% है। इस स्थिती में पूँजीकरण की राशी निम्न सुत्र के अनुसार निकाली जाती है।

$$C = \frac{P}{R}$$

C = पूँजीकरण की कुल राशी

P = अनुमानित आय (Profit)

R = पूंजीकरण प्रत्याय का दर (Rate Of Return)

P = Rs 5,00,000/-

R = 10%

$$C = \frac{5,00,000}{10\%} = \frac{5,00,000}{10} \times 100$$

= 5,00,0000/-

= 50,00,000/-

परंतू व्यवसाय में/कंपनी के जीवन कालावधी में ऐसा अनुमान लेना अत्यंत कठीण होता है। किसी व्यवसाय/कंपनी के भविष्यकालिन आय में बहूत घटकों का समावेश रहता है।

उदाहरण :– उत्पाद की मांग; वस्तु का सामान्य मुल्य; श्रमिकों की उत्पादकता; व्यवस्थापन की कार्यकुशलता इत्यादी सभी घटक व्यवसाय/कंपनी के नियंत्रण के बाहर होते है। इन घटकों में स्थिती के अनुसार नियमित बदलाव भी होते है। तथा पूँजीकरण का प्रत्याय दर यह निवेशकों की अपेक्षा पर एवं कंपनी के निर्धारित जोखिम की मात्रा पर अवलम्बीत रहता है। जिससे पूँजीकरण के दर का भी निर्धारण करना कठीण होता है। यह कार्य किसी भी नये व्यवसाय/कंपनी के लिए अशक्य है।

इस तरह लागत के सिद्धान्त के अनुसार पूँजीकरण की राशी निर्धारित करना किसी नई कंपनी/व्यवसाय के लिए लाभदायक है तथा चालू व्यवसाय/कंपनी का पूँजीकरण निर्धारण करने के लिए आय का सिद्धान्त उपयोगी होता है।

पूँजीकरण का महत्व एवं अनिवार्यता

किसी भी व्यावसाय/कंपनी को पूंजीकरण की आवश्यकता निम्न स्थिती में होती है।

1) कंपनी की स्थापना करते समयः– सामान्यतः नई कंपनी/व्यवसाय स्थापन करते समय कंपनी में पूँजीकरण की प्रक्रिया कार्यान्वित की जाती है। कंपनी/व्यवसाय के कार्य स्वरूप एवं प्रकृति के अनुसार पूंजी की आवश्यकता सुनिश्चित करके कंपनी के स्थापना करते समय पूंजीकरण किया जाता है।

2) व्यवसाय/कंपनी का विस्तार करते समयः– चालू व्यवसाय/कंपनी को बढ़ाने एवं विस्तार करते समय व्यवसाय/कंपनी में अधिक मात्रा पूंजी की आवश्यकता होती है। इसलिए चालू कंपनी में विस्तार की रूपरेखा, नियोजन के अनुसार कंपनी के विस्तार के समय पूंजीकरण की प्रक्रिया कंपनी में की जाती है।

3) कंपनी के एकत्रीकरण एवं संविलयन की स्थितीः– दो कंपनीयों का एकत्रीकरण करते वक्त पूंजी की पूर्नरचना की जाती है। पूंजी की पूर्नरचना के अनुसार एकत्रीत कंपनी का एवं संविलपन किए गई कंपनी का एकत्रीत पूंजीकरण, पूर्नरचना के अनुसार करना आवश्यक होता है।

4) कंपनी का पूर्नसंघटना करते समयः– पूराने कंपनी का पूर्नसंघटन करके, व्यवसाय के स्वरू‍ एवं प्रकृति में आंशिक बदल करने का प्रयास किया जाता है। ऐसे स्थिती में कंपनी के पूराने पूंजी सरंचना का विशेष उपयोग नही होता। इसलिए कंपनी का पूर्नसंघटन करते समय पूंजीकरण की प्रक्रिया पूर्नसंघटीत कंपनी को आवश्यक पूंजी के अनुसार की जाती है।

पूंजीकरण का महत्व

पूंजीकरण की आवश्यकता में देखे गए/पढ़े गए बिन्दूओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि, किसी कंपनी के स्थापना करते समय जिस तरह पूंजीकरण की आवश्यकता होती है, उसी तरह कंपनी/व्यवसाय के जिवनकाल में विभिन्न प्रसगों में, स्थितीयों में पूंजीकरण किया जाता है। इन्ही कारणों से कंपनी के लिए पूंजीकरण यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। पूंजीकरण यह वित्तीय नियोजन का महत्वपूर्ण अंग है। पूंजीकरण का आशय एवं अर्थ यह है कि, किसी भी व्यवसाय/कंपनी में निवेष किए गए कुंल पूंजी की राशी है। इस में कंपनी के अंशों की बिक्री करके तथा कर्ज रोखें एवं अन्य प्रतिभूतीयों का निर्गमन कर प्राप्त किए गए पूंजी का समावेश होता है। पूंजीकरण में व्यवसाय/कंपनी को आवश्यक पडने वाले वित्तीय मांग का समावेश होता है। इसमें व्यवसाय/कंपनी के आवश्यक मांग के

अनुसार वित्तीय राशी की गणना की जाती है तथा वित्तीय मांग का क्षेत्र भी स्पष्ट किया जाता है। विभिन्न प्रतिभूतीयों से संकलित किए जाने वाली वित्तीय राशी का अनुपात पूंजीकरण सुनिश्चित किया जाता है। इसलिए व्यवसाय/कंपनी के लिए पूंजीकरण एक समग्र संकल्पना है, जिसके माध्यम से व्यवसाय/कंपनी के वित्तीय मांग की आपूर्ती की जाती है।

उचित पूंजीकरण

हर कंपनी का यह प्रयास होता है कि, योग्य एवं उचि पूंजीकरण किया जाए। उचित पूंजीकरण का आशय यह है कि, कंपनी के मांग से जास्ता अथवा कम पूंजी जमा न होते हुए जितनी पूंजी राशी की आवश्यकता है उतनी ही कुलपूंजी राशी जमा करने से है। परंतु ऐसे स्थिती बहूत ही कम बार कंपनी में पैदा होती है। जब कंपनी में आवश्यकता से जादा पूंजी राशी जमा होती है उसे अति पूंजीकरण कहते है। उसी तरह जब कंपनी में आवश्यकता से कम पूंजी राशी जमा होती है, उसे अल्पपूंजी करण कहते है।

उचित पूंजीकरण की अवस्था स्थिर संपत्ती के संदर्भ में निम्नांकित के अनुसार दर्शायी जाती है।

चिठ्ठा/**Balance Sheet** (तुलनपत्र; वित्तीय स्थिति विवरण)

Liabilities/देयता	Amount/ राशी	Assets/संपत्ती	Amount/ राशी
Share Capital	6,00,000	Fixed Assets	8,00,000
Debenture	2,00,000	Current Assets	3,00,000
Current Liabilities	3,00,000	-	-
Total/कुल	11,00,000	Total/कुल	11,00,000

उपरोक्त वित्तीय स्थिति विवरण के अनुसार जब कंपनी के अंश एवं ऋणपत्रों () के सममुल्यों का योग यह उस कंपनी के स्थिर संपत्ती के वास्तविक मुल्य इतना रहता है तब उस कंपनी का पूंजीकरण उचित माना जाता है।

1.7 अतिपूंजीकरण एवं अल्पपूंजीकरण

अतिपूंजीकरण

जब कंपनी/व्यवसाय में उसके आवश्यकता के जादा पूंजी राशी जमा की जाती है तब उसे अतिपूंजीकरण कहते है।

किसी कंपनी का आय उस कंपनी के निवेष किए गए कुल पुंजी राशी से मेल/सुसंगत/नही करता तब उस स्थिती को अति पूंजीकरण की स्थिती कहा जाता है।

अनेक विद्वानों ने अति पूंजीकरण की परिभाषा निम्ननांकित के अनुसार की है।

1) गरस्टेन बर्ग (Mr. Gersten Berg) के अनुसारः– ''कंपनी द्वारा निर्गमित किए गए अंश (Share) एवं ऋणपत्रों पर उचित लाभ देने लायक अगर कंपनी की आय पर्याप्त नही रहने की स्थिति में अथवा देयता प्रतिभूतीयों का पूस्त की मूल्य यह संपत्ती के वर्तमान मुल्यों से जादा है, ऐसे स्थिति में कंपनी में अतिपूंजीकरण हूआ है ऐसा माना जाता है।''

2) होगलंड (Mr.Haogland) के अनुसारः– '' जब किसी भी कंपनी के अंश (Share) एवं ऋणपत्रों (Debenture) के सममूल्यों का योग यह उस कंपनी के स्थिर संपत्ती के वास्तविक मुल्यों से जादा होता है तब उस कंपनी में अति पूंजीकरण हुआ है ऐसा समजा जाता है।

3) बोनविले, डिवे एवं केली के अनुसारः– '' जब कोई व्यवसाय अपने अदत्त प्रतिभूती पर उचित दर (Interest) प्राप्त करने के असफल होता है तब उस स्थिति में अतिपूंजीकरण हुआ है ऐसा कहा जाता है।

अतिपूंजीकरण की अवस्था स्थिर संपत्ती के संदर्भ में उसके वास्तविक मुल्य पर निर्भर रहती है। अगर कंपनी के स्थिर संपत्ती का वास्तविक मुल्य किसी समय बिंदू पर स्थिर संपत्ती के मुल्य से कम रहता है उस अवस्था में कंपनी में अतिपूंजीकरण हूआ है ऐसा माना जाता है।

अतिपूंजीकरण की अवस्था स्थिर संपत्ती के संदर्भ में निम्नानुसार दर्शाई जाती है।

चिठ्ठा / **Balance Sheet** (वित्तीय स्थिति विवरण)

Liabilities/देयता	Amount/ राशी	Assets/संपत्ती	Amount/ राशी
Share Capital	6,00,000	Fixed Assets	7,00,000
Debenture	2,00,000	Current Assets	4,00,000
Current Liabilities	3,00,000		
Total/कुल	11,00,000	Total/कुल	11,00,000

उपरोक्त वित्तीय स्थिति विवरण के अनुसार कंपनी की स्थिर पूंजी राशी 8,00,000/– है। परंतु इस पूंजी में से स्थिर संपत्ती खरेदी/क्रय करने हेतु केवल रू 7,00,000/– का निवेश किया गया है। शेष रू 1,00,000/– स्थिर पूंजी अस्थिर/चल संपत्ती का क्रय करने हेतु खर्च किया गया है। जिससे कंपनी में रू 1,00,000/– का अति पूंजीकरण हूआ है।

कंपनी द्वारा विनियोजीत कुल पूंजी राशी () पर उचित लाभ/व्याज देने लायक कंपनी की आय पर्याप्त नही रहने की स्थिति में अति पूंजीकरण हूआ है ऐसा माना जाता है।

उदाहरणः– किसी कंपनी की विनियोजित पूंजी राशी रू 1,00,00,000/– है यह कंपनी रू 10,00,000/– आय प्राप्त करती है एवं सामान्यतः अपेक्षित प्रत्याय दर 10% है ऐसे स्थिती में आय का पूंजीकरण कृत्यमुल्या निम्ननुसार रहेगा

आय का पूंजीकरण कृत्य मुल्य = $10,00,000 \times \frac{100}{10}$

$= 1,00,00,000$

= कंपनी की विनियोजित राशी

इस अवस्था को उचित पूंजीकरण की स्थिति माना जाता है। पर इस कंपनी ने अगर रू 8,00,000/– प्राप्त किया तब प्रत्याय दर

$= \frac{8,00,000}{1,00,00,000} \times 100 = 8\%$ होगा।

जो कि अपेक्षित प्रत्याय दर से कम रहेगा।

अर्थात कंपनी द्वारा विनियोजित कुल पूंजी राशी की तुलना में उचित लाभ/व्याज देने लायक एवं अपेक्षित प्रत्याय दर से कंपनी की आय नही है। ऐसे स्थिति में अतिपूंजीकरण हूआ है ऐसा कहा जाता है।

अतिपूंजीकरण के कारण

निम्नलिखित विभिन्न कारणों से अतिपूंजीकरण की स्थिति निर्माण होती है।

1. **पूंजीकरण के अधिक्य मात्रा में निर्गमन (Over Issue of capital)** – नये कंपनिके प्रवर्तक वित्तीय मांग का अनुमान जादा मात्रा में करते, जिससे कंपनी की मांग से भी जादा मात्रा में पूंजीकरण का निर्गमन किया जाता है। मांग से जादा प्राप्त किए गए पूंजीकरण का लाभदायक उपयोग नही करने पर कंपनी में अती पूंजीकरण की स्थिती निर्माण होती है।
2. **संपत्ती की ज्यादा किमंत पर क्रय करना – (Purchase of Assets on Higher prices)** – कंपनी के प्रवर्तकों कम किंमत की संपत्ती को ज्यादा किंमत पर क्रय करने की स्थिति में कंपनी को अति पूंजीकरण स्थिति से गूजरना पडता है। ज्यादा किमंत पर संपत्ती खरेदी करने से कंपनी का मुनाफा (लाभ) प्राप्त करने की क्षमता कम होती है। जिससे लांभाष का दर कम होते हुए अंश बाजार में अंशों का मुख्य कम होता है। अंश बाजार में कंपनी के अंशों के मुख्य की अवमुख्यन होता है यह अतिपूंजीकरण का निर्देशांक माना जाता है।
3. **ज्यादा मात्रा में प्रवर्तन व्यय (High Pramotion Expenses)** – कंपनी स्थापित करते समय प्रवर्तकों द्वारा ज्यादा मात्रा में व्यय करने पर स्थिर पूंजी की उपयोगीता पर प्रभाव पड़ता है। स्थिर पूंजी का उपयोग अस्थिर या चल संपत्ती पर व्यय करने पर अति पूंजीकरण की स्थिती निर्माण होती है।
4. **उत्पाद की मांग में घट (Decrease in the Demand of product)** – कंपनीच्या उत्पाद की मांग अगर नियमित तौर पर घटने से कंपनी के आय में कमी होती है जिससे लाभ का दर कम होता है। लाभ का दर कम होने से पूंजीकरण के प्रत्याय का दर भी कम होता है। प्रत्याय का दर कम होने के कारण, कंपनि में अति पूंजीकरण की स्थिति निर्माण होती है।
5. **लांभाश निती** – लांभाश का दर यह कंपनी के आर्थिक स्थिती दर्शाने हेतु प्रमाण माना जाता है। कुछ कंपनिया जान बुझ कर ज्यादा दर से लांभाश का वितरण करते है। जिस के फल स्वरूप आपत्कालिन स्थिती में राशी या संचिती (Reserve Fund) निर्माण नही हो शकता। ऐसे स्थिती में कंपनी की आय प्राप्ती की क्षमता कम होती है। ऐसे कंपनी को भविष्य में अति पूंजीकरण की स्थिती से निपटना पड़ता है।

6. **पूंजीकरण दर का कम मात्रा में अनुमान–** कंपनी के पूंजीकरण का दर अगर कम मात्रा में (Forecast) अनुमानित किया गया तो उस कंपनि में अति पूंजीकरण की स्थिति निर्माण होती है।

अति पूंजीकरण के प्रभाव

अति पूंजीकरण से निम्ननांकित क्षेत्रों में प्रभाव दिखाई देता है।

1. कंपनी पर प्रभाव
2. अंश धारकों पर प्रभाव
3. समाज पर प्रभाव

1. **कंपनी पर प्रभाव** – अति पूंजीकरण से कंपनी पर निम्नलिखित प्रभाव दिखाई दिए जाते है।

   अ) कंपनी का नाम खराब होता है। (Loss in Goodwill) – अति पूंजीकरण में उत्पादन की क्षमता कम होती है। जिससे अंश बाजार में अंशों का मुख्य, पुस्तकी मुख्यों से कम होता है। अंश बाजार में अंश के मुख्य में ढलाण आने ने निवेश कर्ता कंपनी में निवेश करण्याने के लिए राजी नही होते। जिससे कंपनी का नाम खराब होकर, कंपनी में निवेबदार आकृष्ट नही होते।

   ब) कंपनी पर भरोसे में घट (Loss in credit worthness) – कंपनी में अतिपूंजीकरण की स्थिती होने पर आय प्राप्ती के दर में कमी होती है। जिससे कंपनी को ऋण (Loan) प्राप्त करने के लिए आवश्यक व्याज दर देना कठिण होता है। जिससे बाजार में कंपनी पर से भरोसा कम होता है एवं कंपनी की ईमेज कम होती है।

   क) पूंजी प्राप्ती में कठिणाईयाँ (Diffriculties in obtaining capital) – अति पूंजीकरण की स्थिती में कंपनिको अपने विकास एवं विस्तार की योजना कार्यान्वित करणे हेतु पूंजी प्राप्त करने में कठिणाईयाँ आती है। क्योंकी ऐसे कंपनी का आय प्राप्ती का दर कम होने के कारण निवेष की गई पूंजी मिलेंगी की संभावना निवेषदार को दिखती नही।

अल्प पूंजीकरण

अल्प पूंजीकरण की स्थिति एक ऐसा स्थिति है जो उच्च पूंजीकरण के बहुत विपरीत है। जब कंपनी की आय पर वापसी की दर पूंजीकरण की दर से अधिक होती है, तो कम पूंजीकरण की कंपनी की स्थिति बनती है। ऐसी कंपनियों कों कंपनी की अचल संपत्ति की तुलना में अधिक लाभ होता है। श्री. जे. स्टकनवर्गिया ने अल्प पूंजीकरण का व्याख्या की है।

'जब किसी कंपनी की आय दर एक समान प्रकार की कंपनी की तुलना में इसकी कुल पूंजी लागत की दर से अधिक है, या इस कंपनी को कम पूंजी राशि की मांग होती है तब ऐसे स्थिती को अल्प पूंजीकरण की स्थिति कहते है। अर्थात् जो कंपनी अन्य कंपनियां के तुलना

में कम पूंजी में अपने उत्पाद का कार्य संपन्न किया जा सकता है ऐसे कंपनी में अल्प पूंजीकरण की अवस्था है ऐसा समजा जाता है। अल्प पूंजीकरण का मतलब है अपर्याप्त पूंजी न होकर कम पूंजी लागत की अवस्था है। ऐसे अवस्थेता में कंपनी का वास्तविक मूल्य यह उसकी पुस्तकी मूल्य से अधिक होता है। ऐसे कंपनी का लाभ भी उसके संपत्ति के मूल्य से अपेक्षित लाभ से अधिक होता है। ऐसी कंपनी अपने अंश धारकों की अपेक्षाओं की तुलना में उच्च कीमतों पर लाभांश को वितरित कर सकती है, और इस तरह की कंपनी के भागों और बाजार मूल्य उसके अंकीत मूल्य से कहीं अधिक होते है।

अल्प पूंजीकरण की पहचान

1. अल्प पूंजीकरण की पहचान यह पुस्तकी मूल्य (Book Value) तथा वास्तविक (Real Value) की तुलना करके की जा सकती है। यदि पुस्तकी मूल्य व्यवसाय के वास्तविक मूल्य से कम ही तो यह स्थिती अल्प पूंजीकरण की पहचान होगी।
2. इस दशा में कम्पनी कि परीसंपती का वास्तविक मूल्य बैलेंस शीट में दिखाई गई पुस्तकी मूल्य से अधिक होगा।
3. ऐसी दशा में पुंजीकरण की मात्रा को देखते हुये कम्पनी कि आय अधिक होगी।
4. ऐसी कम्पनी प्रचलित दर से उंची दर पार लाभांश देने कि स्थिती में होगी।
5. ऐसे कम्पनीयो के अंश का वास्तविक मूल्य उनके बाजार मूल्य से अधिक होगा।

अल्प कम पूंजीकरण के कारण

किसी भी कंपनी के अल्प पूंजीकरण की अवस्था के लिए निम्ननांकित कारण हो सकता है

1. **पूंजी की आवश्यकता का अनुमान कम लगाना – (Under Estimation of capital Recruitment)** एक कंपनी की स्थापना के बाद से व्यापार के लिए संभव है तो जल्दी ही वित्तीय योजना तैयार करना चाहिए। कंपनी की पूंजी की जरूरत का आकलन कम हो जाता है तो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुई पूंजी और आवश्यक पूंजी में अंतर होता है। कंपनी के लिए यह आवश्यक है कि कंपनी को प्रत्यक्ष रूप से कम प्राप्त हुई पूंजी कि स्थिती में मुकाबला करना चाहिए। कंपनी ब्याज दर से कम दर पर सस्ते ऋण प्राप्त करने की व्यवस्था करता है। इस तरह से कंपनी में कम पूंजीकरण की अवस्था में वृद्धि होती है।
2. **भविष्य कालीन आय का कम अनुमान – (Under Estimation of Future)** कंपनी के वित्तीय योजना तैयार करने के दौरान अगर कंपनी के भविष्य के आय का अनुमान कम मात्रा में लगाया है, मगर कंपनी को व्यवसाय शुरू करने के बाद कंपनी को जो आय प्राप्त हुई है वह वास्तव में अधिक है। उस समय कंपनी की आय बढ़ने की वजह से कंपनी के अल्प पूंजीकरण की स्थिति बनती है।
3. **मंदी के दौरान व्यवसाय की शुरुआत (Promotion during Depression)** – मंदी के दौरान देश में किमंत स्तर में कमी होती है इसलिए कंपनी के संस्थापक को

आवश्यक उत्पादक उपकरणों की खरीद के लिए अल्प स्थिर पूंजी खर्च करना पड़ता है। परन्तु इस हालात में भी आय में बढ़ोतरी होने के कारण व्यवसाय में कम पूंजीकरण की समस्या उत्पन्न हुई।

4. **कम दर पर लाभांश का वितरण (Distribution of dividend on less rate)** – भविष्य के समय में कंपनी की वित्तीय स्थिती सुदृढ होनी चाहिए इसलिये बहुत अधिक लाभ तो पार भी कई बार कंपनी के शेयरधारकों को लाभांश के हिसाब से कम भुगतान किया जाता है। इस तरह के कंपनी के वास्तविक पूंजी में उनकी किताबें मूल्य से अधिक हो कर कंपनी में अल्प पूंजीकरण का निर्माण होता है।
5. **कंपनी पर नियंत्रण रखने की इच्छा (Desire of control on company)** – कुछ प्रमोटर्स कंपनी के संचालन पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। अगय नये अंश पूंजी के अधिग्रहण के लिए बेचा जाता है, तो शेयरधारकों की संख्या बढ़ जाती है। यदि शेयरधारक कंपनी के मामलों में हस्तक्षेप करते हैं, तो प्रमोटर की शक्ति को धक्का लगता है। कंपनी का नियंत्रण बचने के लिए पूंजी की कोई आवश्यकता होणे पर भी प्रमोटर कंपनी के नए शेयर जारी नहीं करती है। ऐसी स्थिति में, प्रमोटर अलग–अलग तरीकों से कम दर के ऋण निर्माण के माध्यम से स्थिर संपती खरीदने की कोशिश करते हैं। इसलिए, कंपनी में अल्प पूंजीकरण की समस्या आती है।
6. गोपनीय संचय – उच्च दर पर संपत्ति के अवमूल्यन कर या नई संपत्ति खरीद के लिये उचित मूल्य की तुलना में अधिक राशी का संचय निर्माण कर, गुप्त संग्रह आवश्यक रूप से अधिक बार बनाया जाता है। कभी–कभी ऐसी प्रणाली को संपत्ति के मूल्यांकन को कम करने और भुगतान की मात्रा बढ़ाने के द्वारा स्थापित किया जाता है। इस कारण कंपनी की वास्तविक स्थिति का अनुमान नहीं लगता इसलिए अल्प पूंजीकरण की समस्या आती है।

अल्प पूंजीकरण के प्रभाव – अल्प पूंजीकरण के निम्ननांकित प्रभाव पडते है

1. **कंपनी में आंतरिक पूंजी का अभाव दिखता है** – जो कंपनी कम पूंजीकरण करती है वह हमेशा आंतरिक पूंजी उपकरणों की कमी का एहसास करती है। पूंजी उपकरणों की कमी के कारण व्यवसाय ठीक से संचालित नहीं किया जा सकता। व्यापार विकास की योजना बनाना संभव नहीं है यही कारण है कि व्यापार का विकास अस्थिर है।
2. **बाह्य उपकरणों पर निर्भरता बढ़ जाती है** – कंपनी के लघु पूंजीकरण के मामले में, कंपनी को अपनी पूंजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बाह्य संसाधनों पर भरोसा करना होगा। कंपनी को कारोबार का प्रबंधन करने और स्थिर संपत्ति खरीदने के लिए लगातार ऋण निर्माण करना पड़ता है। यह किसी भी कंपनी के भविश्य के विकास के लिए अच्छा नहीं है।

3. **लाभांश कि दर बढ़ जाती है** – अल्प पूंजीकरण कि स्थिती में अधिक आय होणे पार कम्पनी यो के अंशधारियो को उंची दर से लाभांश दिया जाता है यदि लाभांश का दर बढ़ता है तो अंश्ज्ञ का वास्तविक मूल्य भी बढ़ जाता है।
4. **श्रमिक असंतोष बढ़ता है** – कंपनी के लघु पूंजीकरण के मामले में, कम्पनीके लाभांश का दर अधिक होणे के कारण कम्पनी कि आर्थिक स्थिती अच्छी है ऐसा श्रामिको को लगता है। कंपनी के मुनाफे में हिस्सा रखने के लिए, वे कंपनी के निदेशक से मजदूरी दर बढ़ाने के लिए कहते हैं। यदि इन मांगों को बोर्ड द्वारा पूरा नहीं किया जाता है, तो श्रमिकों के बीच असंतोष में वृद्धि होगी।
5. **ग्राहक असंतोष बढ़ता है** – कंपनी की बढ़ती लाभप्रदता के कारण, ग्राहकों को भी कंपनी की उत्पादकता पर संदेह होता है। उनका मानना है कि कंपनी ने बहुत पैसा कमाया है और कंपनी ने उन्हें लूट लिया है। इससे ग्राहक में असंतोष बढ़ जाता है।
6. **बहरी ऋण लेना पड़ता है** – जाब कम्पनी के पास पर्याप्त पुंजी नाही होती तब उसे बाहरी ऋण अधिक व्याज दर पार लेना पड़ता है और इस प्रकार आय का एक बड़ा हिस्सा व्याज के रूप में खर्च करणा पड़ता है।

अल्प पुंजीकरण के प्रभाव (Remedias on under Capitalization)

अल्प पूंजीकरण की स्थिति से कंपनी को बाहर करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं –

1. **नये पूंजी – अंशो का निर्गमन करना (Fresh Issue of Capital)** – अल्प पूंजीकरण की स्थिति के वजह से कम्पनी में कम पुंजी है तो कम्पनी ने नये अंश का निर्गमन कर पूजी प्राप्त करना लाभदाई होता है।
2. **बोनस शेयर जारी करना (Issue of bonus Shares)** – कंपनी लाभांश का भुगतान किए बिना अपनी कुल आय का वितरण करके बोनस शेयर जारी कर सकती है, ताकि लाभप्रदता दर अधिक न हो और अनय साइड इफेक्ट प्रभावित नहीं होंगे। बोनस के वितरण की वजह से प्रति शेयर आय का प्रतिशत कम हो जाएगा।
3. **अंश के मूल्य में कमी करना (Deduction in Share Price)** – ऊंची लागत के अंश को कम कीमत के अंशो में विभाजित करना यह सबसे अच्छा तरीका अल्प पूंजीकरण की स्थिति से कंपनी को बाहर करने के लिये है। इसलिए, प्रति शेयर लाभांश में औसत कटौती से बचा जा सकता है और इसके प्रभाव से बचा जा सकता है।
4. **गुप्त संचय निर्माण ना करना (Stop in Creating secret Reserve)** – गुप्त संचय का निर्माण कंपनी की अल्प पूंजीकरण स्थिति बनाता है। इसलिए, निदेशक के लिए गुप्त संचय के निर्माण को रोकना बेहद आवश्यक माना जाता है। इस प्रकार, किसी भी कंपनी के लिए अति पूंजीकरण और अल्प पूंजीकरण दोनों की खराब हैं। अगर कंपनी में ऐसा कोई स्थिति नहीं है, तो उचित पूंजीकरण हुवा है ऐसा माना जाता है। इस

प्रकार, कम्पनी के वित्तीय नियोजन करते वक्त उचित पूंजीकरण करने के लिए ऐसे प्रयासों के आयोजन प्रबंधक के द्वारा किया जाना चाहिए।

1.8 सारांश

वित्त आधुनिक अर्थव्यवस्था का जीवन रक्त है। यह समस्त क्रियाओं का आधार है। इसके बिना न तो किसी उपक्रम को प्रारंभ ही किया जा सकता है और न ही उसे सफलता पूर्वक संचालित ही किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार पर्याप्त वित्त की व्यवस्था व्यावसायिक सफलता का मूल मन्त्र है। इसलिए वित्त के महत्व से सम्पूर्ण विश्व परिचित है। वित्त प्रबंधन का ज्ञान प्रबंधकों, अंशधारियों, विनियोक्ताओं, वित्तीय संस्थाओं, वाणिज्य के विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण मार्गदर्शक का कार्य करता हैं। प्रायः व्यावसायिक संगठन में वित्तीय प्रबंधन का स्थान उच्च प्रबंधन वाले स्तर में होता है जो संगठन से संबंधित सभी प्रकार की रणनैतिक योजनाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है तथा यह सीधे संगठन के मालिक या सी.ई.ओ. के प्रति उत्तरदायी होता है। भारत के व्यावसायिक संगठनों में प्रायः वित्त कार्यों से जुड़े सर्वोच्च पदों को वित्त संचालक या उपाध्यक्ष वित्त के नाम से संबोधित किया जाता है। वर्तमान व्यावसायिक जगत इमं वित्तीय प्रबंधक की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। व्यावसायिक क्रियाओं की सफलता मुख्य रूप से वित्तीय प्रबंधक पर ही निर्भर करती है।

`किसी व्यवसाय में प्रयुक्त होने वाले कोशों का विनियोजन करना, उन्हें प्राप्त करना, नियंत्रित करना तथा उन्हें प्रकाशित करना वित्त कार्य है। पूँजीकरण निगम की अदत्त स्टॉक एवं बंध पत्रों के सममूल्य का योग हैं। जब कंपनी में स्थायी संपत्तियों का वास्तविक मूल्य अंश तथा ऋण पत्रों द्वारा प्राप्त पूँजी के सम मूल्य से कम होता है तो ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि संस्था अति-पूंजीकृत है। किसी भी निगम के प्रवर्तन हेतु जब आय के अनुसार पूँजीकरण का निर्णय लिया जाता है तब इसके अंतर्गत निगम की संपत्तियों का मूल्य उसकी उपार्जन क्षमता द्वारा ही निर्णायक स्थिति में पहुँचती है। आगे आने वाले कुछ समय पश्चता जब उस निगम की संपत्तियों का वास्तविक मूल्य उसके पुस्तक मूल्य से अधिक हो जाता है तब अल्प पूँजीकरण की परिस्थिति पैदा हो जाती है।

1.9 बोध प्रश्न

1. एक व्यावसायिक उपक्रम में वित्तीय प्रबंधन के उद्देश्य क्या हैं?
2. वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र का अध्ययन हम कितने शीर्षकों से कर सकते हैं?
3. वित्तीय प्रबंधक को कौन-कौन से प्रशासनिक कार्य करने होते हैं?
4. वित्तीय प्रबंधक के नैत्यिक कार्य क्या हैं?
5. वित्त कार्य: अवधारणा एवं उपागम को समझाइए।

6. वित्त कार्य की परंपरागत अवधारणा को समझाइए।
7. वित्त कार्य की आधुनिक अवधारणा एवं उपागम क्या है?
8. पूँजीकरण को परिभाषित कीजिए। पूँजीकरण का लागत सिद्धांत क्या है?
9. अतिपूँजीकरण की समस्या से निपटने हेतु क्या उपाय हैं?
10. अतिपूँजीकरण से समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है?
11. अतिपूँजीकरण से कंपनी की लाभदायकता पर क्या प्रभाव पड़ता है?
12. अल्पपूँजीकरण की स्थिति कब उत्पन्न होती है? अल्पपूँजीकरण के उपचार समझाइए।
13. अल्पपूँजीकरण क्या है? अल्पपूँजीकरण के प्रभाव को समझाइए।

1.10 संदर्भ ग्रंथ

- गोयल, डी. के. एवं गोयल, एस. (2017) वित्तीय प्रबंधन, पांचवां संस्करण, अविचल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली
- Prasanna Chandra (2011) Financial Management, Eighth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Parrino & Kidwell (2011) Fundamentals of corporate finance, First Edition, Wiley India Pvt. Ltd., New Delhi.
- Khan and Jain (2011) Financial Management (Text Problems and Cases), Fifth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई – II: पूँजी ढाँचा नियोजन, विनियोग एवं पूँजी ढाँचा निर्णय

इकाई की संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 पूँजी ढाँचा नियोजन एवं पूँजी संरचना के गुण

2.4 विनियोग एवं पूँजी ढाँचा निर्णय

2.5 पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की लागत

2.6 मूल्यांकन एवं प्रत्याय दरें

2.7 सारांश

2.8 बोध प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रंथ

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आपको अवगत हो जायेगा कि –

- पूंजी ढांचा के नियोजन तथा उपागम से संबंधित विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पूंज संरचना के गुण एवं उसे निर्धारित करने वाले तत्वों को समजेंगे।
- नियोजन कि अवधारणा, उसके प्रमुख चरण, महत्व, एवं आवश्यकता को जानेगे।
- विनियोग एवं पूँजी ढाँचा संबंधी समस्त अवधारणाओं को विस्तार से समझ सकेंगे,
- विनियोग निर्णय एवं उसके सिद्धांत क्या है? इसको समझना पड़ेगा।
- पूँजी की लागत संबंधी विभिन्न उपकरणों का विवेचन कर सकेंगे,

- पूँजी लागत का भारित औसत के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- अनुकूलतम पूँजी संरचना के संबंध में चर्चा कर सकेंगे,
- मूल्यांकन एवं प्रत्याय दर ज्ञात करने संबंधी तकनीकों आत्मसात कर सकेंगे,
- दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन वित्त के विभिन्न स्रोतों का वर्गीकरण कर सकेंगे, तथा
- अल्पकालीन वित्तीय विनियोगों पर प्रकाश उाल सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

हर कंपनी की स्थापना से समापन तक एक वित्तीय आवश्यकता होती है। कंपनी की स्थापना के बाद, कंपनी के विभिन्न भविष्य की योजनाओं के लिए आवश्यक वित्तीय धन का विस्तृत विचार वित्तीय योजना के तहत किया जाता है और इसके संबंध में उचित निर्णय लिया जाता है। इसके तहत पूंजी ढांचा भी निर्धारित किया जाता। पूंजीकरण के तहत कंपनी को अनुमानित राशी की मात्रा निश्चित कर पूंजी ढांचा कीस स्वरूप में होगा एवं उसमें कीस कीस प्रतिभुतिओ का समावेश किया जायेगा इस तरह के निर्णय पूंजी ढांचा संरचना के माध्यम से लिया जाता है। इस वजह से वित्तीय प्रबंधन में 'पूंजी संरचना' यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। अतः पूंजीकरण/पूंजी ढांचा/ संरचना का आशय है कि पूंजी की मात्रा को निर्धारित करणे एवं इसके स्वरूप को एक संरचना के माध्यम से प्रस्तुत करने से है।

विनियोग में सदैव निर्णय लेते रहने की आवश्यकता होती है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। विनियोग के संबंध में सभी व्यक्तिगत निर्णय अनिश्चित भविष्य को ध्यान में रखते हुए लिये जाते हैं। पूँजी संरचना निर्णय में विनियोक्ताओं को नवीन सूचनाओं के आधार पर अपने अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन विनियोग का पूर्नमूल्यांकन करना आवश्यक होता है। इसी प्रकार विनियोग का पूर्नमूल्यांकन करना आवश्यक होता है। इसी प्रकार विनियोग निर्णय में पूँजी बजटन एवं कार्यशील पूँजी के आधार पर पूँजी की लागत, जोखिम एवं अनिश्चितता का विश्लेषण करना होता है।

पूँजी कोषों की प्राप्ति के सभी स्त्रोंतो की अपनी कुछ विशेषतायें होती है। प्रत्येक स्त्रोत में कुछ गुणों के साथ कुछ दोष भी होते है। अत: कंपनियों के प्रबंधक किसी एक स्त्रोत पर अधिक निर्भर न रहकर पूँजी कोषों के विभिन्न स्त्रोतों में एक ऐसा अनुकूल संतुलन स्थापित करने का निरंतर प्रयास करते रहते है, जिससे कि कंपनी का स्वामियों का सर्वाधिक हित साधन हो सकें। संतुलन स्थापित करने की इस प्रक्रिया में आय जोखिम एवं नियंत्रण के साथ-साथ पूँजी की लागत पर विचार भी आवश्यक हो जाता है।

पँजी एक बहु आयामी प्रक्रिया है। इसके अंतर्गत नये एवं अधिक लाभदायक विनियोग के प्रस्तावों की खोज तथा उनके तकनीकी एवं विपणन पहलुओं से जुड़े विचारणीय बिंदुओं की जाँच पड़ताल की जाती है जिससे कि प्रत्येक से होने वाले लाभ की संभावलाओं का विश्लेषण किया जा सके तथा किसी प्रस्ताव की स्वकृति के परिणामों के पूर्वानुमान लगाये जा सके। मूल्यांकन एवं प्रत्याय दरें किसी परियोजना की लाभदायकता के औचित्य को सिद्ध करती है।

2.3 पूँजी ढाँचा नियोजन एवं पूँजी संरचना के गुण

पूंजी ढांचा – नियोजन तथा उपागम

उपरोक्त परिचय में दी गई जानकारी से अवगत होता है कि कंपनी की स्थापना के बाद, कंपनी के विभिन्न भविष्य की योजनाओं के लिए विभिन्न दीर्घकालीन स्रोतो द्वारा जमा की गई कुल पूँजी को स्रोतो के अनुसार प्रस्तुत करने ही पूंजीकरण/पूंजी ढ़ांचा/संरचना है। पूंजी संरचना कंपनी की भविष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक निर्धारित दीर्घकालिक पूंजी संरचना है। श्री वेस्टन और ब्रिन इन लेखकों ने ''पूंजी सरंचना परियोजना का मूलभूत वित्तपोषण है'' इस प्रकार पूंजी संरचना की व्याख्या की है। इसमें दीर्घकालिक ऋण, वरीयता शेयर और उपक्रम द्वारा किए गए सामान्य इक्विटी पूंजी शामिल हैं। लेकिन पूंजी संरचना में अल्पकालिक ऋण शामिल नहीं है। सामान्य अंश पूंजीकरण में सामान्य अंश, पूंजी अधिक्य और संचित एवं अतिरिक्त उत्पाद शामिल हैं। इस तरह से पूंजीरचना/ढ़ांचा में उपक्रम अंश राशी और ऋण पूंजीगत राशि का निर्धारण किया जाता है। जैसे की कुल दीर्घकालीन पूँजी की कितनी राशी ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा कितनी पूर्वाधिकारी अंशो तथा कितनी राशी समता अंशो के निर्गमन द्वारा कितनी राशी आंतरिक स्रोतों से एवं कितनी राशी दीर्घकाली ऋण द्वारा प्राप्त की गई है। किसी भी संगठन के लिए पूंजीकरण और पूंजी संरचना यह दो घटक व्यवसाय की कार्यक्षमता बढ़ाने के महत्वपूर्ण कारक हैं। यदि ये दोनों निर्णय बुद्धिमानी से उचित लिए जाते हैं तो संगठन सफल हो सकते हैं। पूंजी संरचना को सही प्रकार से बनाने के लिए निम्नलिखित विशेषताओं का निर्माण किया जाना चाहिए।

1. **पूंजी संरचना सरल और सुगम होना चाहिए** : किसी भी कंपनी/व्यवसाय की पूंजी संरचना/ढ़ांचा सरल और आसान होना चाहिए। इसलिए, वह आसानी से किसी भी हितधारक को एवं साथ ही निवेशक को समझता है और अपने निवेश के लिए सही विकल्प चुन सकता हैं।
2. **पूंजी संरचना लचीला होना चाहिए** : जैसा जैसे व्यवसाय की प्रगति होती है, संगठन की धन की आवश्यकता बढ़ जाती है। पूंजी रचना/ढांचा में इस बढ़ती जरूरत को प्रदान करने की क्षमता होना अनिवाय है। लंबी अवधि में बढ़ी हुई पूंजी की मांग को आसानी से पूरा किया जा सके ऐसी पूंजी संरचना को संगठन द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए।

3. **पूंजी संरचना में तरलता होनी चाहिए (Liquidity)** – परियोजना की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए पूंजी का उपयोग किया जाता है। इसलिए, यदि अचानक एक आवश्यकता उत्पन्न होती है, तो पूंजी में तरलता आवश्यक होना चाहिए। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि वित्तीय नियोजन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि आपकी पूंजी का सही हिस्सा पूंजी की तरल परिसंपत्तियों में निवेश किया जाए। इसलिए, आपातकालीन स्थिति में पूंजी की अचानाक उपलब्धता के कारण, संगठन संकट की स्थिति से तुरंत बाहर निकल सकता है।
4. **उचित पूंजीकरण होना चाहिए** : पूंजी संरचना और पूंजीकरण का निकट संबंध है। पूंजी रचने के द्वारा उपलब्ध कराया गया पूंजी संगठन की पूंजीकरण की अवस्था निश्चत करती है इसलिए संगठन में उचित पूंजीकरण की स्थिति बनायी जा सकती है।
5. **पूंजी प्राप्ति की लागत कम होनी चाहिए** : संगठन विभिन्न स्रोतों के माध्यम से पूंजी प्राप्त कर सकता है। हालांकि, यह पूंजी प्राप्त करने और इसकी लागत कम रखने पर ध्यान रखना महत्वपूर्ण है। अन्यथा, यदि पूंजी प्राप्त लागत अधिक है, तो पूंजी से लाभ कम हो जाएगा और अति पूंजीकरण की स्थिति संगठन में बनाई जाएगी। इसलिए पूंजी संरचना करते समय, सावधान रहना आवश्यक है कि पूंजी प्राप्त करने की लागत कम है।
6. **अन्य कारकों का परिणाम होना चाहिए** : व्यवसाय के अंतर्गत एवं बाह्य घटक पूंजी की संरचना को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं। चूंकि स्वीकार किए गए व्यवसाय में बहुत जोखिम है इसलिए, इसकी पूँजी संरचना मुख्य रूप से प्रभावित होती है। इसके अलावा, संगठन के जोखिम में विभिन्न कारणों जैसे कि कराधान, सरकारी फैसले, संगठन की लागत में बदलाव, कीमतों में बदलाव, और ब्याज की दर में परिवर्तन के कारण वृद्धि हुई है। इससे संगठन की पूंजी संरचना का नतीजा प्रभावित होता है। पूंजी संरचना की संरचना का निर्धारण करते समय इन सभी कारकों का ध्यान रखना और पूंजी की संरचना पर प्रभाव कम करना आवश्यक है।

शेयरधारक संघ संगठन में महत्वपूर्ण होना चाहिए : संगठन के शेयरधारक जो संगठन के सामान्य शेयर खरीद रहे हैं। वह संगठन के सच्चे मालिक हैं। यह शेयरधारक संघ संगठन पर नियंत्रण रखता है। उनके संगठन के कामकाज पर निगरानी रखने के अधिकार होता हैं। लेकिन बहुतबार पूर्वाधिकार और बांडधारकों को भी मताधिकार दिया जाता है। इसलिए सामान्य शेयरधारक का संगठन में महत्व को कम हो जाता हैं। आदर्श पूँजी रचना में ऐसे पूँजी संरचना को उचित नहीं माना जाता। सामान्य शेयरधारकों का संगठन में महत्व कायम रखना चाहिए ऐसी पूंजी संरचना/ढ़ांचा उत्तम और आदर्श माना जाता है।

पूंजी ढ़ांचा निर्धारित करणे वाले तत्व

व्यवसाय की वित्तीय स्थिरता उस व्यवसाय के पूँजी ढ़ांचे पर निर्भर करती है। लेकिन व्यवसाय की पूंजी संरचना कई कारकों पर निर्भर करती है। इसलिए, पूंजी संरचना का

निर्धारण करते समय, पूंजी संरचना को प्रभावित करने वाले सभी कारकों के बारे में सोचना और पूंजी संरचना पर अपेक्षित परिणामों का अध्ययन करने के बाद पूंजी संरचना निर्धारित करना आवश्यक है। निम्नाकित कारण कंपनी की पूंजी संरचना को प्रभावित करता है।

1. व्यवसाय की प्रकृति (Nature of the Business)

पूंजी संरचना का स्वरूप व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। आम तौर पर प्रत्येक उद्योग या उद्योग के व्यापार का प्रकार अलग है। यही कारण है कि प्रत्येक कंपनी की पूंजी संरचना खुद के लिए भी अलग है। पूंजी संरचना को निर्धारित करने के लिए व्यापार की प्रकृति के निम्न बातों पर विचार करना चाहिए।

1. व्यापार में जोखिम क्या हैं? जोखिम की प्रकृति और प्रकृति कितनी है?
2. स्मकालीन व्यापार लेनदेन का अनुपात क्या है?
3. क्या कंपनी की आय तय हो गई है या नहीं
4. उत्पाद का बाजार कैसे व्यापक बना है?
5. बाजार हिस्सेदारी की तीव्रता क्या है?
6. कंपनी द्वारा उत्पादित उत्पादों के संबंध में कोनसी सेवा प्रदान करने की क्या आवश्यकता है?

   सभी उपरोक्त सवालों के जवाब जानने के बाद पूंजी की संरचना करना यह एक अच्छा विचार है।

2. संपत्ति की प्रकृति (Nature of Assets)

किसी भी संगठन के सफल संचालन के लिए, संगठन को विभिन्न प्रकार की संपत्ति प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार संपत्ति की प्रकृति होती है। कुछ संगठनों को दीर्घकालिक अचल संपत्ति की आवश्यकता होती है, क कुछ संगठनों को कच्चे माल का भंडार रखना पड़ता है, कुछ व्यवसाय को उपयोग सामग्री को स्टोर करने के लिए किया जाता है। इसलिए संगठन द्वारा आवश्यक प्रारूप के अनुसार दीर्घकालिक और अल्पकालिक रूप पूंजी संरचनना को बनाया जाता है।

3. आय की संभावना (Probability of Income)

व्यवसाय के शुरू होने के बाद संगठन की आय कितनी होंगी यह विचार भी पूंजी निर्माण के स्वरूप को सुनिच्छित किया जाता है। यदि संगठन को निकट भविष्य के दौरान अच्छी आय प्राप्त होती है, तो अंश का पूंजी अधिक उपयुक्त है। लेकिन अगर ऐसी संभावना कम है तो अंश निर्गमन/ऋण के बिना कोई विकल्प नहीं होगा।

4. विभिन्न स्रोतों के बीच समन्वय (Co-Ordination between various sources)

प्रत्येक संगठन की वित्तीय आवश्यकता मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं 1. दीर्घकालिक 2. मध्यम अवधि और 3. लघु कालीन. संगठन की इन तीन जरूरतों को ध्यान में

रखते हुए, पूंजी निर्माण में पूंजी का रूप सुनिच्छित किया जाता है। पूंजी निर्माण के लिए विभिन्न स्रोत उपलब्ध हैं। इन स्रोतों में उपयुक्त संसाधनों का आयोजन करके, संगठन की वित्तपोषण की आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं। ऐसी पूंजी संरचना की स्वीकृति संगठन के लिए लाभ दायक होती है। जिससे आवश्यक पूंजी निर्माण कर पूंजी निर्माण की लागत कम हो जाती है।

5. **भांडवल उभारणीचा खर्च (Expenses of Capital formation)** – पूंजी प्राप्त करने के लिए खर्च करना पड़ता है। यह लागत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों है। पूंजी संरचना के रूप का निर्धारण करने से पहले, किराये के स्रोत की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लागत दोनों का अनुमान लगाना आवश्यक है। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि पूंजी निर्माण में पूंजी जुटाने की लागत कम है और यह असीमित नहीं बढ़ेगी।
6. **कंपनी की स्थापना के लिए स्थिति (Surrounding of commencement of a company)** – जिस कंपनी की पूँजी संरचना की जानी है वह कम्पनी स्थापित करते समय पूंजीवादी कंपनी, बाज़ार और देश की अर्थव्यवस्था की स्थिति का अध्ययन करना जरूरी है। अगर कंपनी की स्थापना के समय बाज़ार में तेजी है, तो उद्योग को पूंजी बढ़ाने के लिए कोई खास प्रयास करने की जरूरत नहीं पड़ती है। चूंकि बाजार में वृद्धि के लिए यह एक बहुत अनुकूल वातावरण है। आम तौर पर, पूँजी की स्थापना के लिए तेजी की स्थिति अनुकूल होती है। दूसरी ओर, अगर बाजार में मंदी है तो अंश पूंजी राशी प्राप्ती में कठिनाइयों निर्माण होती है। ऐसी स्थिति में ऋण प्रतिभूतियों के माध्यम से दीर्घकालिक पूंजी प्राप्त की जा सकती है।
7. **आसान प्रकृति (Easy Nature)** – निवेशकों को समझने के लिए कंपनी की पूंजी संरचना की सरंचना बहुत सरल होनी चाहिए। इससे, निवेशकों के लिए यह तय करना आसान होता है कि क्या किसी प्रतिभूतियों में पैसा निवेश करना है या नहीं। यदि पूंजी संरचना की संरचना जटिल है, तो निवेशक अपनी इच्छित योजनाओं को नहीं समझते हैं, इसलिए इसे कंपनी की प्रतिभूतियों में निवेश करने से पहले बहुत सोचते है। निवेशकों के मन में निवेश के बारे में संदेह और भ्रम पैदा होता है और पूंजी बाजार में कंपनी के बारे में अनिश्चितता की भावना निमार्ण होती है।
8. **लचीला प्रकति (Elastic Nature)** – किसी कंपनी की पूंजी संरचना की प्रकृति लचीली होना चाहिए। किसी भी समय, कंपनी को अपनी पूंजी बढ़ाने और जादा पूंजी को कम करने में सक्षम होना चाहिए। आम तौर पर, कंपनी की स्थापना के समय व्यापार की प्रकृति सीमित होती है। इसलिए, कंपनी की वित्तीय आवश्यकताओं कम हैं। जैसा कि कारोबार बढ़ता है, कंपनी की वित्तीय आवश्यकताओं में वृद्धि हो रही हैं अगर कंपनी की पूंजी संरचना लचीली प्रकृति का है, तो कंपनी आसानी से बढ़ी हुई व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओ को पूरा करने में सक्षम होती है। इसके विपरीत, यदि कंपनी ने बहुत पूंजी जमा की है, तो उसके द्वारा निपटाए कर्ज को कम करना संभव है। इसलिए, कंपनी अति

पूंजीकरण और अल्प पूंजीकरण की स्थिति से बच सकती है। इसलिए ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कंपनी का पूंजी ढांचा लचीला बना होणा चाहिये।

9. **पूंजी का उचित उपयोग (Proper Utilization of Capital)** – यह ध्यान रखना जरूरी है कि कंपनी की पूंजी संरचना की संरचना का निर्धारण करते समय पूंजी का सही इस्तेमाल किया जाएगा। पूंजी के पूंजीगत अल्प हिस्सा भी निष्क्रिय नहीं रहेगा इसकी सतर्कता पूंजी संरचना निर्माण में ली जानी चाहिये। इसके लिए, कार्यशील पूंजी और स्थिर पूंजी का सही संतुलन होना जरूरी है। स्थिर पूंजी का इस्तेमाल अचल संपत्ति खरीदने के लिए किया जाना चाहिए। अन्यथा, कंपनी में वित्तीय आपदाएं हो सकती है।
10. **उम्मीदों और निवेशकों की रुझान (Expectations and Trends of Investors)** – विभिन्न प्रकार की पूंजी निवेश में निवेशकों की उम्मीद और प्रवृत्ति अलग है। कई बार एक ही बाजार के लिए निवेशकों की अपेक्षा, आवश्यकताएं, उनकी आर्थिक स्थिति, उनके निवेश के उद्देशो में भिन्नता होती है। कुछ निवेशक संपन्न हैं और जोखिम को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। ऐसे निवेशकों के लिए नई कंपनियों के अंशों में निवेश करते है। इसके विपरीत जो निवेशक कि सीमित आय है और जोखिम को स्वीकार करना नहीं चाहते वे अपने पैसे के लिए कर्ज में निवेश करना चाहते है। इसलिए निवेश करनेवाले की प्रकृत्ति क्या है, इसके बारे में सखोल अध्ययन करना बहुत जरूरी है।
11. **व्यापार पर नियंत्रण के लिए महत्वाकांक्षा (Ambition to control on business)** – **कंपनी** के कारोबार पर हमेशा अपने नियंत्रण में रखने की इच्छा संस्थापकों को होती है, तो पूंजी संरचना पर उसका भी भारी प्रभाव पड़ता है। क्योंकि संस्थापकों को लाभदायक हो ऐसा पूंजी निर्माण का प्रारूप उस समय निर्धारित होता है। ऐसी प्रतिभूतियां संस्थापक खुद के लिए खरीदते हैं जिससे कंपनी पर मताधिकार बना रहे।
12. **प्रबंधक का दृष्टिकोण (Approach of Manager)** – कंपनी की पूंजी संरचना उस प्रबंधक के दृष्टिकोण को भी प्रभावित करती है जो उस कंपनी में उच्च स्तर प्रबंधन में काम कर रहा है। श्री. गुबमन और मिस्टर जुगल लेखक के अनुसार, लेखकों के अनुसार, प्रबंधक की उम्र, अनुभव, महत्वाकांक्षा, आत्मविश्वास और प्रबंधकों के संकीर्ण दृष्टि की कंपनी के पूंजी संरचना पर निश्चित प्रभाव पड़ता है।
13. **पूंजी मिलन (Capital Gearning)** – पूंजी मिलन मतलब कंपनी द्वारा जारी की गई विविध प्रतिभा के अनुपालन है। प्रत्येक कंपनी की कुल पूंजी राशी में अंश पूंजी और उधार किया गया पूंजी ऐसे दो प्रकार होते है। कंपनी की कुल पूंजी में अंश पूंजी के हिस्से से उधार ली गई पूंजी का कम हो तो वह कंपनी का भडवांवल मिलान अनुपात घट जाएगा।

पूंजी संरचना के गुण

क संतुलित एवं सुधृढ़ पूंजी संरचना यह है जिसमें निम्नांकित गुण विद्यमान रहते है

1. **पूंजी संरचना सरल और सुगम** – किसी भी कंपनी/व्यवसाय की पूंजी संरचना/ढांचा सरल और आसान होता है। इसलिए, वह आसानी से किसी भी हितधारक को एवं साथ ही निवेशक को समझता है और अपने निवेश के लिए सही विकल्प चुनता है।
2. **लचीला पूंजी संरचना** – जैसा जैसे व्यवसाय की प्रगति होती है, संगठन की धन की आवश्यकता बढ़ जाती है। पूंजी रचना/ढांचा में इस बढ़ती जरूरत को प्रदान करने की क्षमता होती है। लंबी अवधि में बढ़ी हुई पूंजी की मांग को आसानी से पूरा किया जा सकता है ऐसी पूंजी संरचना को संगठन द्वारा स्वीकार किया जाता है।

3. पूंजी संरचना में तरलता (Liquidity)

परियोजना की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने के लिए पूंजी का उपयोग किया जाता है। इसलिए, यदि अचानक एक आवश्यकता उत्पन्न होती है, तो पूंजी में तरलता आवश्यक होती है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि वित्तीय नियोजन सुनिच्छित करने के लिए आवश्यक है कि आपकी पूंजी का सही हिस्सा पूंजी की तरल परिसंपत्तियों में निवेश किया जाता है। इसलिए, आपातकालीन स्थिति में पूंजी की अचानक उपलब्धता के कारण, संगठन संकट की स्थिति से तुरंत बाहर निकल सकता है।

4.उचित पूंजीकरण – पूंजी संरचना और पूंजीकरण का नि कट संबंध है। पूंजी रचना के द्वारा उपलब्ध कराया गया पूंजी, संगठन की पूंजीकरण की अवस्था निश्चत करती है इसलिए संगठन में उचित पूंजीकरण की स्थिति बनायी जा सकती है।

14. कम पूंजी प्राप्ति की लागत – संगठन विभिन्न स्रोतों के माध्यम से पूंजी प्राप्त करता है। हालांकि, यह पूंजी प्राप्त करने और इसकी लागत कम रखने पर ध्यान रखना महत्वपूर्ण है। पूंजी संरचना में आवश्यक है कि पूंजी प्राप्त करने की लागत कम हो। अन्यथा, यदि पूंजी प्राप्त लागत अधिक है, तो पूंजी से लाभ कम हो जाएगा और अति पूंजीकरण की स्थिति संगठन में बन जाएगी।

नियोजन

वित्तीय नियोजन

हर व्यवसाय में पसे के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान है यह मुख्यतः व्यापार के लिए आता है यही कारण है कि व्यापार में वित्तीय गतिविधियों का असाधारण महत्व है। व्यवसाय में धन को नियंत्रित करने और उस पर नियंत्रण से अधिक लाभदायक काम पाने के लिए वित्तीय प्रबंधन किया जाता है। प्रबंधन कार्य में योजना बहुत महत्वपूर्ण है। आर्थिक रूप से योजना एक वित्तीय योजना है वित्तीय योजना में व्यापार के लिए कम दर से पैसा प्राप्त करना या धन प्राप्त करना और धन के रूप में धन का उपयोग करना शामिल है। वित्तीय नियोजन केवल हर व्यवसाय में धन के महत्व और महत्व पर विचार करके किया जाता है। वित्तीय योजना प्रमुख उद्योगों में एक 'वित्तीय नियोजन' है, और मामले में एक महत्वपूर्ण कार्रवाई की जाती है। प्रत्येक व्यापार संगठन में वित्तीय प्रबंधकों को आर्थिक रूप से वित्तीय नियोजन पर आधारित है, ताकि वर्तमान में व्यापार के कारोबार का प्रबंधन किया जा सके और भविष्य में संस्थानों के विकास को बनाए रखने की क्षमता हासिल हो सके। प्रत्येक व्यवसाय की सफलता व्यापार पर आधारित कितनी वित्तीय क्षमता पर आधारित है पूंजी को व्यापार का मुख्य माना जाता है क्योंकि पूंजी उत्पादन के लिए बहुत आवश्यक है। यहां तक कि अगर वित्तीय पक्ष व्यवसाय में सक्षम नहीं है, तो व्यवसाय ने पेशे के कौशल को हासिल नहीं किया है, भले ही उसे कई कौशल प्राप्त हुए हों। अगर व्यापार की वित्तीय स्थिति कमजोर है, कुशल श्रमिक उनके उच्च मनोबल, उत्पादन की आधुनिक तकनीक, कारखाने में अन्य सुविधाएं और उत्पादकता की उपलब्धता और उपलब्धता की उपलब्धता किसी भी उपयोग नहीं है। इस संदर्भ में, राजधानी भारत के प्राकृतिक संसाधन बहुत समृद्ध पैमाने पर है। मानव श्रम कुशल और आसानी से सुलभ है। यह उद्योग के लिए भी एक बहुत अच्छा माहौल है। हालांकि, भारत में पूंजीवाद की कमी के कारण, बड़े उद्योग उसी तरह से विकसित नहीं हो पाए हैं, क्योंकि अभी भी आवश्यकता है। यही कारण है कि व्यवसाय में पूंजी या वित्त महत्वपूर्ण है। इस तरह से प्रत्येक व्यक्तिगत स्टॉक के महत्व को समझने के लिए, व्यापार की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, विभिन्न महिलाओं को पूंजी खरीदने और स्टॉक का अच्छा उपयोग करने के लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता होती है। इन विशेष प्रयासों को वित्तीय नियोजन कहा जाता है।

वित्तीय योजना का मतलब है

वित्तीय नियोजन, जिसे सही समय पर सही समय पर व्यापार उद्योग की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, इसे 'वित्तीय नियोजन' कहा जाता है। विभिन्न प्रबंधन विशेषज्ञों द्वारा वित्तीय नियोजन के कई महत्वपूर्ण परिभाषाएं है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं हैं।

1. **श्रीगस्टेनबर्ग** – 'वित्तीय प्रबंधकों को शुरुआती खर्चों, व्यापार का प्रबंधन, विभिन्न खर्चों के लिए संपत्ति को स्थिर करने के लिए नव स्थापित व्यवसाय की आवश्यकता है, जो वर्तमान में आवश्यक भूमिका निभाने और प्रबंधित करने के लिए आवश्यक है। वित्तीय व्यवस्थापक द्वारा नए स्थापित व्यवसाय के लिए प्रारंभिक व्यय के लिए, धन का सामना करने के लिए, व्यवसाय का प्रबंधन करने के लिए, विभिन्न लागतों में, स्थिर और कार्यशील पूंजी की प्राप्ती के लिए, वर्तमान समय की जरूरतों का अनुमान लगाने और उन्हें व्यवस्था करने के लिए, तथा यह पूंजी प्राप्त करने के लिए, सभी संभव मार्गों का विश्लेषण करने के वित्तीय मार्ग को वित्तीय योजना भ्झी कहा जाता है।''

   उपरोक्त चर्चा में, वित्तीय नियोजन में शामिल सभी गतिविधियां शामिल हैं।
2. श्री बोनविले के मुताबिक, 'कंपनियों या उद्योग संघों की वित्तीय योजना के दो प्रमुख पहलुओं या उद्देश्यों हैं। एक कंपनी की पूंजी निर्माण योजना को दिखाने और दूसरी कंपनी द्वारा अनुमोदित वित्तीय नीतियों को स्पष्ट करने के लिए है। उपरोक्त मामलों में, वित्तीय नियाजन के केवल दो कामों को समझाया गया है। एक अर्थपूर्ण पूंजी संरचना समझाओ और व्यापार से निपटने के लिए आवश्यक वित्तीय नीति का निर्धारण करें।
3. श्री आर्थर डाविंग के अनुसार ''वित्तीय नियोजन के नियोजन में, निम्नलिखित के प्रमुख शामिल हैं। (ए) व्यवसाय की जरूरतों को पूरा करने के लिए पूंजी की आवश्यकता का अनुमान लगाने, अर्थात् व्यापार का पूंजीकरण।

(बी) व्यापार की आवश्यक पूंजी निर्धारित करने के लिए, और विभिन्न प्रतिभूतियों के पार–अनुभागीय अनुपात को निर्धारित करने के लिए।

(सी) पूंजी की उचित व्यवस्था करने के लिए, उपर्युक्त परिभाषा में वित्तीय नियोजन के तीन कार्य शामिल हैं। व्यवसाय को पूंजी की जरूरत है, पूंजी प्राप्त करने का तरीका, और योग्य पूंजी का उचित उपयोग या पूंजी का उपयोग।

4. श्री वाकर और वॉन परिभाशा ''वित्तीय नियोजन वित्तीय गतिविधियों से संबंधित है, जिसमें संगठन के वित्तीय उद्देश्यों को निर्धारित करने, वित्तीय नीति का नियोजन और पुरस्कार और वित्तीय कार्य प्रथाओं के विकास शामिल हैं।''

ये सभी उपरोक्त परिभाषाओं से वित्तीय नियोजन की सबसे उपयुक्त परिभाषाएं निम्नानुसार कि जा सकती है –

''वित्तीय गतिविधियों से संबंधित विभिन्न कार्यों की योजनाबद्ध योजना 'वित्तीय नियोजन' है। इन कार्यों में, पूंजी की आवश्यकता का निर्धारण, वित्तीय भूमिकाओं की योजना बनाना, और उनके लिए योजना बनाना। वित्तीय सहायता शामिल है, वित्तीय रणनीतियों

की योजना बना रहा है, भविष्य में संस्थानों के विकास की दिशा निर्धारित करना, वित्तीय कार्य निर्धारित करना आदि समविष्ट हैं।

वित्तीय नियोजन के प्रमुख – चरण

उपरोक्त परिभाषााओं में वित्तीय नियोजन में अगले चरण शामिल हैं –

1. **वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण करना** – वित्तीय योजना का पहला तत्व वित्तीय लक्ष्य निर्धारित करना है। परियोजना के मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने के ए, वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इस वित्तीय उद्देश्य को पूरा करने के प्रयासों के बाद ही संगठन का उद्देश्य पूरा हो गया है। प्रत्येक व्यापार संगठन की वित्तीय विशिष्टताओं के A) दीर्घकालिक B) अल्पकालिक दो प्रकार है। संगठन को उपलब्ध उत्पादक तत्वों का पूरी तरह से उपयोग करने के लिए, इसे सही समय पर पर्याप्त और किफायती व्यय के साथ कंपनी को पूंजी उपलब्ध करने के लिए दीर्घकालिक वित्तीय उद्देश्य माना जाता है। तथा संगठन के उचित संचालन के लिए आवश्यक लेनदेन के लिए वित्त प्राप्त करना अल्पकालिक उद्देश्य माना जाता है। इन उद्देश्यों की प्रकृति के अनुसार, प्रबंधक को पूंजी संरचना का प्रारूप निर्धारित करना होगा। प्रत्येक उद्योग संगठन के वित्तीय उद्देश्यो को निर्धारित करने की वित्तीय प्रबंधक की जिम्मेदारी है।
2. **वित्तीय रणीनीतियों की योजना बनाना** – वित्तीय उद्देश्यों को निर्धारित करने के बाद, उन्हें प्राप्त करने के लिए विभिन्न नीतियों की गणना करना आवश्यक है। पूंजी की मात्रा निर्धारित करने और यह कब और किस स्थिती में और कहाँ बढ़ाया जाएगी यह नीति निर्धारित करने पूंजी के विभिन्न स्रोतों का निर्धारण, प्रत्येक स्रोत का कब और कितना उपयोग करने का निर्धारण करना, स्वामित्व की पूंजी और ऋण पूंजीकरण कितना होना चाहिए और स्थिति के अनुसार इस कैसे समायोजित किया जा सकता है।
3. **वित्तीय कार्य प्रक्रिया निर्धारित करना** – वित्तीय कार्य की रूपरेखा से कोन सा काम, कोई व्यक्ति, कैसे, कब और कहाँ किया जाए, यह निर्धारित करने को वित्तीय नियोजन में एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। वित्तीय प्रक्रियाएं वित्तीय कार्य के विशेष क्रम को निर्धारत करने के लिए होती हैं। ऐसी वित्तीय प्रक्रियाएं तय नहीं की गई तो व्यवसाय वित्तीय नीतियों को लागू करने में सक्षम नहीं हो सकता है। यही कारण है कि श्रमिकों का श्रम, काम का समय और धन व्यर्थ नहीं किया जायेगा। इस प्रकार व्यापारिक श्रमिकों के वित्तीय कामकाज को सुनिश्चित करना बहुत जरूरी होता है।

आदर्श वित्तीय नियोजन के प्रमुख लक्षण

किसी भी व्यावसायिक उद्यम की स्थापना केवल दीर्घकालिन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। व्यवसाय स्थापित करने की प्रक्रिया में, व्यापार को लागातार पूंजी की आवश्यकता होती है क्योंकि यह स्वयं को विकसित करती है और नवीन अवधारणाओं को अपनाती है। वित्तीय नियोजन केवल सही समय पर आवश्यक व्यवसाय उपलब्ध कराने के लिए किया जाता है। आदर्श वित्तीय नियोजन के निम्नलिखित लक्षण इस बारे में दिलचस्प हैं कि व्यवसाय में वित्तीय योजना कैसे होनी चाहिए।

1. **नीति द्वारा योजना (Planiing towards strategy)** – एक व्यावसायिक उद्यम का दीर्घकालिक उद्देश्य इस बात को ध्यान में रखते हुए एक वित्तीय नियोजन योजना तैयार करना आवश्यक है। व्यापार का उद्देश्य भी मिलनसार और सीमित होना चाहिए। दृष्टि की कमी के कारण, यह बहुत उदार, अतिरिक्त या महत्वाकांक्षा नहीं होना चाहिए, अन्यथा वित्तीय योजना सफल नहीं होगी। इसलिए, व्यापार के उद्देश्यों को सीमित करना चाहिए और प्रबंधक को इन उद्देश्यों के बारे में पता होना चाहिए। इसी तरह, यह स्पष्ट रूप से समझ में आता है कि इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उचित मार्ग के लिए रोडमैप के बारे में प्रबंधक को पता होना चाहिए।
2. **सुलभता (Simplicity)** – वित्तीय नियोजन बहुत सरल और सुलभ रहना यह निवेशकों और व्यवसाय के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। वित्तीय योजना का कर्यान्वयन प्रबंधक द्वारा किया जाता है। यदि वित्तीय नियोजन सरल और आसान है, तो प्रबंधकों को योजना को समझने में सक्षम हैं और वे योजना को ठीक से लागू कर सकते हैं। यदि यह योजना इस योजना से आसानी से सुलभ है, तो निवेशक अपनी जमा राशि के निवेश के लाभों पर विचार करके कार्यक्रम में निवेश कर सकते हैं।
3. **भविष्यकालीन मांग (Future needs)** – न केवल वित्तीय नियोजन मौजूदा वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यापार में किया जाता है, लेकिन अगर संगठन का भविष्य आगे बढ़ता है, तो वित्तीय नियोजन बेझिझक है इस बात पर विचार करते हुए कि कितना पूंजी की आवश्यकता होगी इस बारे में यह सोचना वित्तीय नियोजन के लिए आवश्यकता है। परियोजना के उद्देश्यों, विस्तार की संभावना, बाजार की बाजार की मांग वर्तमान बाजार की स्थितियों, सरकार की नीति आदि के बारे में सोचना वित्तीय योजना में सोचना महत्वपूर्ण है।
   वित्तीय योजना में सोचना महत्वपूर्ण है।
4. **लचीलापन (Flexibility)** – बाजार में व्यापारिक उत्पादों की मांग पर व्यापार विस्तार या बाधाओं की सीमा अनिश्चित है। अगर व्यापारिक उत्पादों और प्रतिस्पर्धा की कमी के लिए बाजार की अच्छी मांग है, तो व्यापार में अधिक लाभ बनाने की क्षमता है। ऐसे समय में उत्पादन संगठन को बढ़ाने और विस्तार करना आवश्यक है। इसके लिए पूंजी की आवश्यकता होती है। यह पूंजी की इस सुविधा पहले ही करना

आवश्यक है। अगर इस तरह से वित्तीय नियोजन का विस्तार करने की आवश्यकता है तो संभवतः पूंजी पर्याप्तता जितना संभव हो उतना प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसी तरह, अगर बाजार में गिरावट होती है, तो उत्पाद की मात्रा कम होनी चाहिए। ऐसे स्थिति में उपलब्ध पूंजी में से कम से कम पूंजी का उपयोग किया जाता है। यह अतिरिक्त पूंजी अन्य व्यवसायों के लिए उसे लाभान्वित उपयोग कैसे करें इसके बारे में भी वित्तीय नियोजन के बारे में विचार करना आवश्यक है। अर्थात् जब आवश्यक है तब वह पूंजी में वृद्धि करना और अतिरिक्त पूंजी के मामले में उसका उचित विनिमय किया जाना इतना लचीलापन वित्तीय नियोजन में होना आवश्यक है।

5. **पूंजी का पूर्ण उपयोग (Full Utilisation of Capital)** – विभिन्न स्रोतों के माध्यम से इकट्ठा किया गया पूंजी पूरी तरह से उपयोगी हो सकता है। व्यवसाय में जमा हुई पूंजी का अल्प भाग भी निष्क्रीअ नहीं होगा इस तरह के हालात को उभरना नही चाहिए ऐसी सावधानी नियोजन के लिए बेहद बरतें।
6. **तरलता (Liquidity)** – व्यवसाय के अनिच्छितता का खेल है। व्यवसाय में किसी भी परिस्थिति के कारण ऐसा हो सकता है। प्रतिकूल परिस्थिति के साथ सामना करने की क्षमता में व्यवसाय करने के लिए ऐसा व्यवसाय की संपत्ति का कुछ हिस्सा तरल सम्पत्ति निवेश करना आवश्यक है। व्यावहारिक जोखीमी के स्वरूप से व्यवसाय में तरल संपदा कितना होना चाहिए साथ में व्यवसाय के उलाढाली के प्रमाण, व्यावसायिक बाज़ार स्थिति, मुद्रा बाजार की स्थिति, विभिन्न फायदेमंद प्रत्यय योज़ना और सरकारी नीतियां भी वित्तीय नियोजन में तरल संपदा के आयाम निश्चित हो सकते हैं।
7. **काटकसर (Economy)** – व्यापार के लिए पूँजी प्राप्त करने हेतु प्रबंधक को विभिन्न प्रकार के खर्च की आवश्यकता होती है। यह खर्च दो प्रकार के हैं 1. पूंजी प्राप्त करने के लिए विज्ञापन देना, दलाली देने और अभिगम के लिए अधिसूचना जारी करना 2. पूंजी प्राप्त करने के बाद शेयरधारकों को लाभांश और बकाया धारकों को ब्याज देना। उपरोक्त दोनों प्रकार के व्यय करते समय प्रबंधक को बेहद सावधानी नियोजन में बरतनी चाहिए। अन्यथा इन खर्चे के कारण पूंजी प्राप्त करने के लिए लाभ नहीं मिलेगा व्यवसाय को नुकसान हो सकता है।
8. **आपातकालीन व्यवस्था (Provision for contingencies)** – व्यावसायिक रूप से अनिश्चितता के कारण व्यवसाय में किसी भी समय आकस्मिक संकट की स्थिति उद्भव हो सकती है। ऐसी आकस्मिक और आपातकालीन स्थिति पर मात करने हेतु आदर्श वित्तीय नियोजन में भी इस मामले पर विचार करना आवश्यक है।

वित्तीय नियोजन के दौरान विचार करने हेतु आवश्यक घटक

व्यवसाय का उचित ढंग से संचालन करना के लिए वित्तीय नियोजन बेहद सावधानी से तयार करना आवश्यक है। वित्तीय योजना का प्रभा लंबे समय तक फैलता है। आज आयोजित किया गया निर्णय भविष्य में लाभकारी या हानिकारक हो सकता हैं। क्योंकि इस निर्णय के परिणाम भविष्य में दिखेंगे। इसलिए वित्तीय नियोजन के दौरान भविष्य के घटनाक्रमों के बारे में विचार करना आवश्यक है। इसके लिए आगे के विचारों को समझना होगा।

1. **व्यवसायाकी प्रकृति (Nature of the industry or business)** – प्रत्येक उद्योग या व्यापार भिन्न भिन्न है। इसलिए एक उद्योग का नियोजन दूसरे उद्योग को लागू करने के लिए क्या होगा? कई व्यावसायिकों की आवश्यकताएं भी भिन्न भिन्न हैं। व्यावसायिक संपत्ति का आकार, व्यावसायिक उत्पादन अवधि और संपत्ति या याय का स्रोत यह व्यवसाय के अनुसार अलग भिन्न भिन्न हैं। इस तरह से वित्तीय नियोजन के आरेख तैयार करने के दौरान सभी वित्तीय मामलों के बारे में सोचने के लिए उचित वित्तीय नियोजन आवश्यक है।
2. **व्यावसायिकता/उद्योग की साख या नावलौकिक (Goodwill of the Industry)** – उद्योग के बाज़ारपेत में साख या नावलौकिक भी वित्तीय योजना बनाने के दौरान विचार करना आवश्यक है। उद्योग के साख या नावलौकिक मुद्रा बाजार में उनके हिस्से का मूल्य, पिछले समय में किए गए कार्य, व्यवस्थापन की गुणवत्ता आदि शामिल हैं, इत्यादी घटक पर वित्तीय योजना तैयार करते समय विचार करना आवश्यक है।
3. **भविष्यकालीन योजना (Future Planning)** – व्यवसाय की भविष्य योजनाओं का विचार भी वित्तीय नियोजन के दौरान किया जाना चाहिए। निकट भविष्य में व्यापार के विस्तार के लिए योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए, आवश्यक धन वर्तमान में जमा करने की जरूरत है। आकर्षक वित्तीय योजना तैयार करने के लिए इसके लिए आवश्यक रूप से पूंजी स्रोतों की योजना तैयार करना आवश्यक है। इसके लिए भविष्य की योजना के लिए निधि उपलब्ध कराया जा सके।
4. **स्रोत उपलब्धता (Availability of sources)** – पूंजी को प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्रोत उपलब्ध हैं। लेकिन इन सभी स्रोतों का व्यवसाय के लिए उपयोगी होता ही हैं ऐसा नहीं। पूंजी के प्रत्येक स्रोत की योग्यता का विश्लेषण करके उसपर निर्णय करना महत्वपूर्ण है। विभिन्न वित्तीय गतिविधियों में उपयुक्त वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता और विभिन्न मौकों के बारे में विचार करना महत्वपूर्ण है, जिसके लिए पूंजी के स्रोत एकत्र किए जा सकते हैं।
5. **सामान्य आर्थिक स्थिति (General Economic condition)** – देश के और अंतरराष्ट्रीय स्तर के वित्तीय और आर्थिक संस्थान का भी वित्तीय नियोजन पर प्रभाव होते हैं।

देश में स्थिति कैसी है तेजी की मंदी है तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय माहौल कैसा है इसका अध्ययन एक वित्तीय नियोजन योजना तैयार करते समय किया जाना चाहिए।

6. **सरकारी नियंत्रण (Government control)** – वित्तीय योजना बनाते समय, यह सोचना महत्वपूर्ण है कि सरकार व्यवसाय समुदाय की विभिन्न वित्तीय गतिविधियों पर नियंत्रण कैसे नियंत्रित करती है। भागों और बॉन्ड जारी करने, लाभांश का वितरण, ब्याज दरें, विदेशी सहयोग आदि पर सरकार का नियंत्रण है। इसलिए, वित्तीय नियोजन की योजना बनाते समय इस नियंत्रण पर विचार करना भी आवश्यक है।

2.4 विनियोग एवं पूँजी ढाँचा निर्णय

विनियोग निर्णयों से आशय उन निर्णयों से है, जो एक वित्त प्रबंधक को व्यवसाय के लिए आवश्यक संपत्तियों के चुनाव हेतु लेने होते है। किसी व्यापार को स्थापित करने तथा उसके विस्तार के पूर्व उन सभी विकल्पों पर गहन विचार किया जाता है, जो पैसा लगाने के लिए उपलब्ध होते है। इस क्रिया का उद्देश्य सर्वाधिक लाभप्रद विकल्प का चयन करना होता है। स्थायी संपत्तियों के संबंधन में प्रबंधकीय निर्णय जितना महत्वपूर्ण होता है उतना ही कठिन और जटिल भी होता है, क्योंकि ये निर्णय लागत और आगम के संगमों पर निर्भर होते है। पूँजी विनियोजन के ऊपर ही संस्था की सफलता व असफलता निर्भर करती है। अत: पूँजी विनियोग संबंधी निर्णय बड़ी ही सतर्कता व सावधानी से लेना चाहिए।

विनियोग निर्णय के दो भाग होते हैं - पहले भाग को पूँजी बजटन कहा जाता है तथा दूसरे भाग को कार्यशील पूँजी कहा जाता है। व्यावसायिक संपत्तियों को दो भागों में बाँटा जाता है – प्रथम स्थायी संपत्तियाँ जैसे – भूमि-भवन, मशीनरी, फर्नीचर आदि जिन्हें व्यापार चलाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है तथा – द्वितीय चल संपत्तियाँ जैसे – स्टॉक, देनदार तथा रोकड़ बही आदि। स्थायी संपत्ति प्रबंधन को पूँजी बजटन के नाम से तथ चल संपत्ति प्रबंधन को कार्यशील पूँजी प्रबंधन के नाम से जाना जाता है। विनियोग निर्णयों में संपत्ति निर्णय लेने के पूर्व पूँजी की लागत का अनुमान लगाया जाता है। ताकि लाभप्रद अवसरों की पहचान करते समय पूँजी की लागत को समायोजित किया जा सके।

विनियोग निर्णय के संदर्भ में जोखिम तथा अनिश्चितता विश्लेषण का विशेष महत्व होता है क्योंकि वर्तमान विनियोग को भावी लाभों के लिए चुना जाता है। भविष्य की अनिश्चितता के कारण भावी लाभ अनिश्चित होते है, जो व्यावसायिक जोखिम उत्पन्न कर सकते हैं। विनियोग निर्णय अनिश्चितता वातावरण में विनियोग के सर्वोत्तम अवसर चुनने संबंधी निर्णय है। विनियोग निर्णयन के अंतर्गत उन संपत्तियों का चुनाव किया जाता है जिसमें संस्था की पूँजी विनियोजित की जाती है, यह भी निर्णय लिया जाता है कि नि संपत्तियों में पूँजी का विनियोग किया जाए जिससे पूँजी सुरक्षित भी रहे और उससे लाभ भी अजित हो सके। इस प

प्रकार के निर्णयों के लिये विद्वानों ने निम्नलिखित सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। आइए उन्हें क्रमावार विश्लेषण करने का प्रयास करें-

सिद्धांत

पूँजी विनियोग संबंधी निर्णय निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर लिए जाते है।

(क) **पूँजी की लागत** – संपत्तियों में पूँजी लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उन्हीं संपत्तियों में पूँजी का विनियोजन किया जाए जिनकी लागत कम हो। विनियोग संबंधी सही निर्णय तभी लिया जा सकता है जबकि पूँजी की लागत का ठीक अनुमान लगाया जा सके।

(ख) **व्यवसाय का आकार** – व्यवसाय के आकार का भी प्रभाव पूँजी विनियोग पर पड़ता है। यदि व्यवसाय का आकार बड़ा होगा तो पूँजी विनियोग अधिक होगा, इसके विपरीत यदि व्यवसाय का आकार छोटा होगा तो पूँजी विनियोग कम मात्रा में होगा।

(ग) **विनियोग प्रस्ताव की लाभदायकता का मूल्यांकन** – लाभदायकता का मूल्यांकन करने के पश्चात् विनियोग प्रस्तावों को उनकी लाभदायकता के क्रम में रखा जाता है।

(घ) **अवसर लागतों का अनुमान** – संपत्तियों में विनियोग से संबंधित निर्णय लेते समय अवसर लागतों का अनुमान भी लगाया जाना चाहिए क्योंकि पूँजीगत निर्णयों में इन लागतों का अत्यंन्त महत्व होता है। किसी प्रस्ताव पर निर्णय के परिणामस्वरूप वैकल्पिक आय की हानि उस प्रस्ताव की अवसर लागत कहलाती है।

(ङ) **व्यवसाय का स्वरूप** – यदि व्यवसाय व्यापारिक प्रकृति का होगा तो उसमें पूँजी विनियोजन कम होगा। इसके विपरीत, यदि व्यवसाय निर्माणी प्रकृति का है तो उसमें पूँजी विनियोग अधिक होगा।

(च) **तकनीकी उन्नति** – यदि तकनीकी प्रगति अधिक मात्रा में हो चुकी होगी तो पूँजी विनियोजन अधिक होगा। इसके विपरीत यदि तकनीकी प्रगति कम हुई होगी तो पूँजी विनियोजन कम होगा।

(छ) **विनियोग पर प्रत्यास दर का निर्धारण** – किसी विनियोग प्रस्ताव को स्वीकार करने से पूर्व उससे प्राप्त वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर को निश्चित करके ही विनियोग निर्णय लिया जाता है। विनियोग पर प्रत्याय दर, पूँजी की लागत, ब्याज की दर, विनियोग में जोखिम, अनिश्चितता, प्रशासनिक लागत, अवसर लागत, प्रबंध की विनियोग नीति आदि पर विचार करके निर्धारित की जाती है।

(ज) **चल एवं स्थायी संपत्तियों का अनुपात** – यदि पहले से ही यह नियम बनाया गया है कि स्थायी का अनुपात अधिक होगा, चल संपत्तियों का अनुपात कम होगा तो स्थायी संपत्तियों में पूँजी विनियोजन अधिक होगा। इसके विपरीत, यदि पहले से ही निर्धारित कर लिया गया है कि चल संपत्तियों का अनुपात अधिक होगा तो, चल संपत्तियाँ अधिक होंगी, स्थायी संपत्तियाँ कम होंगी। परिणामस्वरूप पूँजी विनियोग कम होगा।

विनियोग को प्रभावित करने वाले कारक

विनियोग की लाभप्रदता स्थायी संपत्तियों में विनियोग का एक महत्वपूर्ण कारका होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कारक भी स्थायी संपत्तियों में विनियोग को प्रभावित कर सकते हैं। ये अन्य कारक निम्नलिखित हैं-

क. किसी भी कंपनी द्वारा विनियोग अपनी क्षमता के अंदर ही किया जाना चाहिए क्योंकि क्षमता से अधिक विनियोग सदैव हानिकारक हो सकता है। अत: प्रत्येक कुशल प्रबंधक संस्था की आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही स्थायी संपत्तियों में विनियोग करता है। यदि किसी उपक्रम के पास पर्याप्त धन है तो ऐसी स्थायी संपत्तियों में इसे विनियोजित किया जाए जिनके प्रत्याय की दर अधिकतम हो और लागत कम हो। यदि कोष बेकार पड़े हैं तो उनका विनियोग स्थायी संपत्तियों में करना लाभप्रद सिद्ध हो सकता है परन्तु ऐसा करने से पूर्व यह ध्यान रखना होगा कि इनका प्रयोग अन्यत्र करने से लाभ की मात्रा कितनी प्राप्त हो सकती है। यदि अन्यत्र विनियोग करने से अधिक लाभ की संभावना हो तो इनका विनियोग स्थायी संपत्तियों में करने के स्थान पर अन्यत्र करना चाहिए।

छ. स्थायी संपत्तियों में विनियोग को प्रभावित करने वाला दूसरा तत्व है व्यवसाय की प्रकृति। व्यापारिक एवं वित्तीय कंपनियों के लिए स्थायी संपत्तियों में विनियोग के विकल्प कम ही होते है। निर्माणी स्थायी में विनियोग अधिक करती है। इसी प्रकार जनोपयोगी उद्योगों में भी स्थायी संपत्तियों में विनियोग लाभप्रद हो सकता है।

ग. उत्पाद तकनीक भी स्थायी संपत्तियों में विनियोग को प्रभावित कर सकती है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाले उद्योगो में अधिक मूल्य वाले प्लांट आदि लगाए जाते है, जो स्थायी संपत्तियों में विनियोग के अनुपात को बढ़ा देते हैं। इसी प्रकार नीवनतम उत्पाद तकनीक वाले उद्योगों में भी अधिकतम विनियोग स्थायी संपत्तियों में स्वाभाविक होता है।

घ. यदि स्थायी संपत्तियाँ किराए पर आसानी से प्राप्त हो जाती है तो कोई भी उद्योग उन्हें किराए पर लेना ही पसंद करता है। अत: ऐसी स्थायी संपत्तियों में विनियोग नहीं किया जाता जो आसानी से

किराए पर उपलब्ध हो जाते हैं परंतु इसके विपरीत परिस्थितियों में स्थायी संपत्तियों में विनियोग की संभावना बढ़ जाती है।

च. कभी-कभी बड़े उद्योगो के आस-पास सहायक उद्योगों की स्थापना हो जाती है जो कि उसके काम आने वाले अनेक उत्पादों एवं उपकरणें का उप-अनुबंध के माध्यम से उसे उपलब्ध करा देते हैं। ऐसी स्थिति में उन संपत्तियों में विनियोग नहीं किया जाता जिनका प्रयोग उपअनुबंध के माध्यम से कर लिया जाता है।

छ. यदि कोई उद्योग अपनी आय में वृद्धि करना चाहता है तो वह सदैव ऐसे उपकरणों की स्थापना करता है जिसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की लागत कम से कम और वह बड़े तथा आधुनिक सयंत्रों में पूँजी मात्रा में विनियोजित कर सके।

ज. यदि किसी उद्योग की उत्पादन लागतों में वृद्धि हो जाती है तो ऐसी स्थिति में उसे अपनी लागतें कम करने के लिए कुछ नवीन तकनीकों का सहारा लेना पड़ता है। जिसके लिए उसे निवेश की मात्रा बढ़ानी पड़ती है।

ट. कभी-कभी कुछ ऐसे कारक होते हैं, जो संस्था की प्रतिष्ठा के लिए अनिवार्य हो जाते हैं जैसे संस्था के कार्यालय की भव्यता को बढ़ाने के लिए बड़ी भूमि पर भवन का निर्माण आदि तथा उसकी साज-सज्जा पवर भारी निवेश ऐसी स्थिति में कोई भी उद्योग अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए स्थायी संपत्तियों में भारी निवेश करता है।

न. कभी-कभी कुछ ऐसी वस्तुएं होती है जिसमें विनियोग उद्योग के लिए अपरिहार्य हो जाता है।

विनियोग हेतु निर्णयन का महत्व

स्थायी संपत्तियों में विनियोग संबंधी निर्णयन का महत्व इसलिए ही नहीं होता है कि पूँजीगत परियोजनाओं में अधिक धन दीर्घकाल के लिए विनियोग होता है, इन निर्णयों का व्यवसाय के भावी अर्जनों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। निम्नलिखित कारणों से विनियोग निर्णयों का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है-

(क) स्थायी संपत्तियों का विस्तार भावी विक्रय के आकार को ध्यान में रखकर किया जाता है। अत: स्थायी संपत्तियों में विनियोग संबंधी निर्णय भावी विक्रय की मात्रा को पूरा करने के लिए उत्पादन में होने वाली वृद्धि को ध्यान में रखते हुए किया जाता है जिससे कंपनी की लाभार्जन क्षमता में वद्धि होती है।

(ख) विनियोग निर्णयन, कंपनी के दीर्घकानीन नियोजन एवं नीति निर्धारण में सहायता प्रदान करते है।

(ग) विनियोग निर्णयन के आधार पर एक कंपनी बाजार में स्थायी संपत्तियों की माँग एवं पूर्ति की समीक्षा करते हुए अपने लिए अपेक्षित संपत्तियों के क्रम का उचित समय निर्धारित कर सकती है।

(घ) विनियोग निर्णयन के माध्यम से प्रबंध स्थायी संपत्तियों में किए जाने वाले व्ययों की व्यवस्था पहले से ही करत लेती है। परिणामस्वरूप इस काय्र में वित्तीय संकट सामने नहीं आता है।

(च) विनियोग निर्णयन संपत्तियों की पुनर्स्थापना की सुदृढ़ नीति निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता है।

(छ) लागतों को घटाने की विभिन्न तकनीकों का अध्ययन करने के पश्चात् ही विनियोग निर्णयन किया जाता है। अत: विनियोग निर्णयन लागतों में कमी लाने में सहायक होते हैं। विनियोग निर्णयन क्षेप्य बीमा और अन्य स्थायी व्ययों पर पूँजीगत लागत के पड़ने वाले प्रभाव की जाँच करने के पश्चात किए जाते है, जिसके कारण कंपनी की लागतों में कमी लाना संभव होता है।

निर्णयन में ध्यान देने योग्य बातें

विनियोग निर्णयन में सामान्य तौर पर निम्नलिखित उपायों को अपनाया जाए तो सफलता निश्चित है। विनियोग निर्णय प्रभावी, सफल एवं लाभदायक होगा। आइए उन्हें समझनें का प्रयास करें-

(1) विनियोग प्रस्तावों को स्वीकार करने पूर्व यह आवश्यक होता है कि विभिन्न विनियोग प्रस्तावों की लाभदायकता का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। प्रस्तावों को उनकी लाभदायकता के क्रम में रखकर ही उन पर विचार होना चाहिए।

(2) संपत्तियों में विनियोग का निर्णय लेते समय अवसर लागतों का अनुमान लगाया जाना चाहिए क्योंकि पूँजीगत निर्णयों में इन लागतों का अत्यंत महत्व होता है।

(3) किसी विनियोग प्रस्ताव को स्वीकार करने से पूर्व उससे प्रापत न्यूनतम प्रत्याय दर को निश्चित करके ही विनियोग निर्णय लेना चाहिए। विनियोग पर प्रत्याय द निर्धारण पूँजी की लागत, ब्याज की दर, विनियोग में जोखिम, प्रशासनिक लागत, प्रबंध की विनिमय नीति आदि पर विचार करके निर्धारित किए जाते है।

(4) स्थायी संपत्तियों में विनियोग का निर्णय लेने से पूर्व आयकर नियमों का भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि आयकर की राशि स्थायी संपत्तियों में लाभदायकता को प्रभावित कर सकती है।

(5) स्थायी संपत्तियों में विनियोग संबंधी निर्णय के लिए यह आवश्यक है कि उद्योग के पास उपलब्ध कोषों का सही ज्ञान होना चाहिए और उपलब्ध व्यय के अनुरूप ही स्थायी संपत्तियों में विनियोग किया जाना चाहिए। प्राय: पूँजी प्राप्त करने के लिए प्रतिभूतियों की लागत एक समान नहीं होती, अत: ऐसी प्रतिभूतियों का निर्गमन किया जाना चाहिए, जिसकी लागत कम हो।

(6) पूँजी संरचना का निश्चय करते समय इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि पूँजी प्राप्त करने के लिए जिन साधनों का उपयोग किया जा रहा है वे अधिक जोखिमपूर्ण तो नहीं हैं क्योंकि अधिक जोखिम वाले साधन सदैव कंपनी को जोखिम में डाल सकते हैं अर्थात ऐसे विनियोगों का निर्गमन नहीं किया जाना चाहिए जिस पर ब्याज दर अधिक हो या कर अधिक देना पड़े। अत: पूँजी संरचना में न्यूनतम जोखिम वाली प्रतिभूतियों को ही सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(7) लाभ हर कंपनी का प्रमुख उद्देश्य होता है और वहीं पूँजी संरचना अनुकूलतम कही जा सकती है, जिसमें लाभ की मात्रा अधिकतम हो।

(8) किसी भी पूँजी संरचना में पूँजी के दंतिकरण अनुपात (Gearing Ratio) का विशेष महत्व होता है, यह अनुपात तीन प्रकार के होते है।

(क) उच्च पूँजी दंतिकरण अनुपात – यदि कुल पूँजी संरचना में ब्याज एवं स्थिर लाभांश के दायित्व वाली प्रतिभूतियों का भाग, समता अंशपूँजी के भाग से अधिक है तो उच्च पूँजी दंतिकरण अनुपात कहलाता है।

(ख) निम्न पूँजी दंतिकरण अनुपात – यदि कुल पूँजी संरचना में स्थिर ब्याज तथा स्थिर लाभांश वाली प्रतिभूतियों की मात्रा कम है, तो यह निम्न दंतिकरण अनुपात कहलायेगा।

(ग) पर्याप्त पूँजीकरण अनुपात – यदि कुल पूँजी में स्थिर ब्याज एवं स्थिर लाभांश के दायित्व वाली प्रतिभूतियों का भाग समता अंश पूँजी के भाग के बराबर हो तो यह पर्याप्त पूँजी दंतिकरण अनुपात कहलाता है।

मुद्रा का समय मूल्य

विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन की आधुनिक विधियाँ नकद प्रवाह पर आधारित है। इन सभी विधियों में नकद अंतरप्रवाह की तुलना नकद बाह्यप्रवाह से की जाती है। विनियोग प्रस्तावों को क्रियांवित करने के लिए संपत्तियों में नकद विनियोग पहले किया जाता है। संपत्तियों से लाभ भविष्य में प्रापत होते है। इस प्रकार विनियोग एक मुक्त प्रारंभ में होते हैं तथा लाभ भविष्य में धीरे-धीरे लंबे समय तक प्राप्त होते हैं। इन भुगतानों प्राप्तियों में समय का अंतर होने के कारण दोनों तुलना योग्य नहीं होते हैं। इन्हें तुलना योग्य बनाने के लिए आवश्यक है कि प्रवाहों में समय तत्व का भी समावेश किया जाए।

विचार रूप में, ''मुद्रा का समय मूल्य'' का आशय है कि वर्तमान में प्राप्त होने वाली मुद्रा का मूल्य कुछ समय पश्चात् प्राप्त होने वाली समान मुद्रा राशि से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये की कीमत आज प्राप्त होने वाले एक रूपये की कीमत से कम होगी। तार्किक रूप से भी यह सिद्ध होता है कि सम अधिमान के कारण एक व्यक्ति भविष्य के स्थान पर वर्तमान प्राप्ति को अधिक महत्व देता है।

पूँजील राशनिंग

पूँजी राशनिंग एक ऐसी स्थिति हैं, सिमें पूँजी संसाधनों की कमी के कारण वित्तीय प्रबंधक उन सभी विनियोग प्रस्तावों को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं होता है जो एक न्यूनतम प्रत्याय दर से अधिक प्रत्याय दे रहे होते हैं। दूसरे शब्दों में, सीमित पूँजी संसाधनों वालो विनियोगकर्ता पूँजी राशनिंग की स्थिति का सामना करते हैं। वित्तीय प्रबंध के संदर्भ में पूँजी राशनिंग का संबंध पूँजी बजटन से है। वैकल्पिक विनियोग प्रस्तावों पर विचार करते समय स्थिति आ सकती है जब पूँजी की सीमित उपलब्धता के कारण उच्च प्रतिफल वाले सभी प्रस्तावों को स्वीकार करना संभव न हो। अत: स्पष्ट हैं कि जब वित्त संसाधनों की उपलब्धता आवश्यकता से कम होती है तब पूँजी राशनिंग की स्थिति उत्पन्न होती है।

पूँजी राशनिंग की स्थिति में सबसे बड़ी समस्या उपलब्ध कोषों के अधिकतम लाभप्रद प्रयोग की होती है। अत: सभी स्वीकार विनियोग प्रस्तावों को प्रत्याय के क्रम में अनुसूचित किया जाता है। फिर उपलब्ध पूँजी की मात्रा को ध्यान में रखकर उन प्रस्तावों के सभी संभव समूह बनाए जाते हैं। जिन समूह की प्रत्याय सर्वाधिक होती है, उसे क्रियान्वयन हेतु चुना जाता है। आइए इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करे-

माना उपलब्ध पूँजी रू. 10,00,000 है न्यूनतम वांछित प्रत्यास दर 10 प्रतिशत विचाराधीन विनियोग प्रस्तावों से प्रत्याशित प्रत्याय तथा आवश्यक पूँजी जोकि निम्नलिखित तालिका द्वारा प्रदति किया गया है –

तालिका

पूँजी राशनिंग की स्थिति

विनियोग राशि	**(रू. में)**	**प्रत्याय**	**(प्रतिशत में)**
प्रस्ताव अ विनियोग राशि	12,00,000	प्रत्याय	16%
प्रस्ताव ब विनियोग राशि	8,00,000	प्रत्याय	15%
प्रस्ताव स विनियोग राशि	5, 00,000	प्रत्यास	14%
प्रस्ताव द विनियोग राशि	3,00,000	प्रत्यास	13%
प्रस्ताव य विनियोग राशि	2,00,00	प्रत्यास	12%
प्रस्ताव र विनियोग राशि	10,00,000	प्रत्यास	10 %
प्रस्ताव र विनियोग राशि	8,00,000	प्रत्यास	8 %

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि विनियोग प्रस्ताव 'अ' विनियोग सामर्थ्य से अधिक होने के कारण तथा विनियोग प्रस्ताव 'ल' न्यूनतम वाँछित दर से कम प्रत्याय देने के कारण स्वीकार योग्य नहीं है। प्रस्ताव 'र' में प्रत्याय न्यूनतम वाँछित दर के समान है, अधिक लाभप्रद अवसरों की उपस्थिति में यह प्रस्ताव भी स्वीकार योग्य है।

पूँजी बजटन

पूँजी बजटन से आशय उपलब्ध पूँजी के विनियोग के लिए क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक रूपरेखा तैयार करने से लगाया जाता है। पूँजीगत बजटनके अंतर्गत दीर्घकालीन लाभ प्रदान करने वाले व्ययोंको नियोजित एवं नियंत्रित किया जाता है तथा उपलब्ध साधनों के प्रयोग के लिए सर्वोत्तम योजना बनाई जाती है, अत: पूँजीगत बजटन प्रस्तावित पूँजीगत व्ययों को करने के अर्थ-प्रबंधन संबंधी दीर्घकालीन नियोजन है। इस प्रकार

पूँजीगत बजटन आवश्यक रूप से एक सूची है, जिसे प्रबंधन, नयी पूँजीगत संपत्तियों को प्रत्येक परियोजना की अनुमति लागत के साथ प्राप्त करने के लिए एक उपयुक्त परियोजना मानता है। आइए इसके प्रमुख उद्देश्यों का विश्लेषण कर, इस आवधारणा को संरचनबद्ध करें-

1. पूँजी बजटन के बनाने में पूँजीगत व्ययों के बीच उचित समन्वय स्थापित करने की कोशिश की जाती है।

2. पूँजीगत बजटन का मुख्य उद्देश्य व्ययों पर नियंत्रण रखना है। पूँजीगत बजटन में अनेक विभागों के लिए अलग-अलग पूँजी व्ययों का अनुमान लगाया जाता है।

3. इसमें यह कोशिश रहती है कि पूँजीगत व्ययों के बजट में समन्वय बना रहे, जिससे विभिन्न विभागों के पूँजी व्ययों में संतुलन लाया जा सके।

4. पूँजी बजटन से स्थायी संपत्तियों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

5. पूँजीगत बजटन के द्वारा विभिन्न परियोजनाओं के बीच प्राथमिक संबंध स्थापित करने का मूल आधार परियोजना की लाभोपार्जन शक्ति के क्रम से है। इस प्रकार सर्वोत्तम परियोजना का चयन किया जा सकता है।

6. पूँजीगत बजटन बनाने से पहले वित्तीय पूर्वानुमान लगाए जा सकते हैं। इसमें संपत्तियों के खरीदने के बारे में उचित निर्णय लिया जा सकता है। इससें वित्तीय प्रबंधक शुरू से ही अर्थ-प्रबंधन पर नियंत्रण रख सकते है।

7. पूँजीगत बजटन से कभी भी भूतकालीन निर्णयों का अनुमान तथा विश्लेषण किया जा सकता है।

किसी भी व्यावसायिक या औद्योगिक उपक्रम की सफलता में पूँजीगत बजटन की एक निर्णायक भूमिका होती है। व्यवसायिक विनियोग के संबंध में पूँजी निर्णयों का एक विशिष्ट महत्व होता है। इस महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से सिद्ध किया जा सकता है-

1. पूँजीगत बजटन की सहायता से दीर्घकालीन संपत्तियों में उचित विनियोजन किया जा सकता है।
2. पूँजीगत बजटन ह्रास एवं संपत्तियों के पुनर्स्थापन के लिए सुदृढ़ नीति तैयार करने में सहायक सिद्ध होता है।
3. पूँजीगत बजटन पूँजीगत व्ययों को अधिक लाभप्रद बनाने में सहायकता प्रदान करता है।
4. पूँजीगत बजटन के द्वारा रोकड़ बजट बनाने के लिए आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त होती है।

5. पूँजीगत बजटन की सहायता से प्लांट एवं मशीनों के आधुनिकीकरण की सर्वोत्तम योजना सरलतापूर्वक तैयार की जा सकती है।
6. पूँजीगत बजटन पूँजीगत विनियोगों के लिए अनेक विकल्प उपलब्ध कराता है।
7. पूँजीगत बजटन के द्वारा लागत को कम करने के लिए आधुनिकतम तकनीकों पर विचार किया जा सकता है।
8. पूँजीगत बजटन निरंतर कम लागत पर अधिकतम उत्पादन करने पर जोर देता है, अत: इसके अंतर्गत मानव के स्थान पर मशीन को श्रेष्ठ माना जाता है।

पूँजी बजटन की प्रक्रिया

पूँजी बजटन में बहुत सी प्रक्रियाओं का समावेश होता है। यह समस्त प्रक्रियाएं व्यवसाय की प्रकृति, उसके आकार, प्रोजेक्ट की प्रकृति, आदि के आधार पर निर्धारित की जाती है।

(1) **योजना का निर्माण** – पूँजी बजटन की इस प्रक्रिया में सबसे पहले योजना का निर्माण किया जाता हैं किसी भी प्रोजेक्ट के लिए के लिए पूँजीगत व्ययों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है प्रथम आगम को खर्च करने का प्रस्ताव एवं द्वितीय लागत को कम करने का प्रस्ताव। प्रथम स्थिति में नये उत्पादों के निर्माण की योजना बनायी जाती है, द्वितीय स्थिति में स्थानापन्न का प्रस्ताव रखा जाता है। इसमें उत्पादन मात्रा को बिना परिवर्तित किए लागत को कम करने का प्रस्ताव किया जाता है। दोनों में उसे उन्हीं प्रस्तावों को स्वीकृति मिलती है जो अधिक लाभप्रद होते है।

(2) **प्रोजेक्ट मूल्यांकन** – पँजी बजटन की इस प्रक्रिया में रोकड़ प्रवाह के विपरीत लागत एवं लाभ की मात्रा का आंकलन किया जाता है। यह कार्य इस मामले के विशेषज्ञों द्वारा कराया जाना चाहिए। साथ ही प्रोजेक्ट की उपयुक्तता की भी जाँच इस प्रक्रिया के अंतर्गत की जाती है।

(3) **प्रोजेक्ट का चुनाव** – यह प्रक्रिया कई प्रोजेक्टों में किसी उपयुक्त प्रोजेक्ट के चुनाव की प्रक्रिया होती है। यद्यपि प्रोजेक्ट का अंतिम चुनाव उच्च प्रबंध द्वारा किया जाता है। परन्तु प्रोजेक्ट के चुनाव के विभिन्न चरण निचले प्रबंध की देख-रेख में ही संपन्न किए जाते हैं। कभी-कभी उच्च प्रबंध द्वारा प्रोजेक्ट के चुनाव की जिम्मेदारी अधीनस्थों को दे दी जाती है और उन्हें ही प्रोजेक्ट की सफलता या असफलता के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है परंतु किसी भी प्रोजेक्ट के चुनाव के लिए स्टैंडर्ड फार्मूला निकालना संभव नहीं है।

(4) **प्रोजेक्ट को अंतिम रूप देना** – जब पूँजीगत व्ययों के प्रस्ताव अंतिम रूप से निर्धारित कर दिए जाते हैं और उनका चयन हो जाता है तब उनके लिए कोषों की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार के प्रस्ताव को पूँजी बजट कहा जाता है। यह उच्च प्रबंध का उत्तरदायित्व होता है कि वह यह देखे कि कोषों का प्रयोग सही कार्यो के लिए किया जा रहा है या नहीं। इसके लिए वह एक प्रतिनिधि समिति बना सकते हैं जो कोषों के प्रयोग पर नजर रखती हैं। इस प्रकार कोषों के प्रयोग पर नियंत्रण रखना अतिआवश्यक कार्य है और इसकी मासिक रिपोर्ट प्रबंध तंत्र को प्राप्त होती रहनी चाहिए। इस रिपोर्ट में कोषों के निर्धारण, खर्च तथा न अप्रयोग धन का पूरा विवरण होना चाहिए।

(5) **पुनर्निरीक्षण** – अंत में जो प्रोजेक्ट पास होता हैं, उसके कार्यो की समीक्षा की जानी चाहिए और उसकी फलता का आंकलन किया जाना चाहिए। स्टैंडर्ड कार्य से वास्तविक कार्य की तुलना कर उसकी सफलता का आंकलन किया जा सकता है।

पूँजी संरचना

पूँजी संरचना पूँजी योजना का एक अंग होती है। कुछ विद्वान पूँजीकरण तथा पूँजी संरचना को एक ही मानते हैं, किंतु ऐसा मानना उचित नहीं है। आई.एम.पाण्डेय का मत है कि ''पूँजीकरण का तात्पर्य पूँजी की मात्रा निर्धारित करने से तथा पूँजी संरचना का तात्पर्य पूँजी के स्वरूप, आकार तथा प्रकार निर्धारित करने से हैं।'' स्पष्ट है कि उक्त दोनों शब्द भिन्न अर्थ रखते हैं परंतु दोनों ही पूँजी योजना से संबंधित हैं। एक कंपनी अपनी पूँजी विभिन्न स्रोतों जैसे कि, समता पँजी, पूर्वाधिकार पूँजी, ऋणपत्रों का निर्गमन तथा ऋणों आदि द्वारा एकत्रित करती है। पूँजी संरचना उक्त विभिन्न प्रकार की पूँजी का पूँजीकरण में अनुपात निश्चित करने सं संबंधित है। इस प्रकार पूँजी ढाँचे का अभिप्राय उस अनुपात से होता है जिस अनुपात में एक कंपनी अपनी आवश्यकता की कुल पूँजी विभिन्न स्रोतों से प्राप्त करती है।

दूसरे शब्दों में, पूँजी संरचना संगठन द्वारा विभिन्न प्रतिभूतियों एवं ऋणों के द्वारा पूँजीकरण राशि के निश्चयन से है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों एवं ऋणों के मध्य अनुपात का निर्धारण किया जाता है। वस्तुत: संगठन में पूँजीकरण की राशि सुनिश्चित करने के उपरांत पूँजी ढाँचे के अंतर्गत यह तय किया जाता है कि निर्धारित पूँजीकरण की राशि को किन माध्यमों से और किस अनुपात में प्राप्त किया जाता है जिससे संगठन की पूँजी लागत न्यूनतम तथा लाभोपार्जन अधिकतम हो। इसके साथ ही संगठन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न माध्यमों द्वारा उपलब्ध पूँजी से हो सके। पूँजी संरचना के अंतर्गत जिन प्रतिभूतियों का प्रयोग किया जाता है – उनकी अपनी विशिष्टताएँ होती है। पूँजी का संकलन प्राय: दो रूप में किया जाता है –

क. स्थायी लागत वाली पूँजी, तथा

ख. परिवर्तनशील लागत वाली पूँजी

पूँजी ढाँचे तथा पूँजी लागत पर प्रो. मोदीगिलियानी तथा प्रो. मिलर का दृष्टिकोण शुद्ध परिचालन आय संकल्पना के समान है। मोदीगिलियानी तथा मिलर का विचार है कि पूँजी फर्म के मूल्यांकन को प्रभावित नहीं करती है। दूसरे शब्दों में, ऋण पूँजी तथा समतापूँजी के अनुपात में परिर्वतन से फर्म का मूल्यांकन प्रभावित नहीं होता है। शुद्ध परिचालन आय दृष्टिकोण तथा मोदीगिलियानी दृष्टिकोण सतही तौर पर एक समान हैं, किंतु तार्किक दृष्टि से मोदीगिलियानी तथा मिलर की विचारधारा डूरंड की शुद्धता परिचालन आय विचारधार से श्रेष्ठ है क्योंकि यह अपरिवर्तन का व्यावहारिक कारण स्पष्ट करती है। यह दृष्टिकोण तीन आधारों पर आधारित होता है जो कि निम्न हैं –

1. औसत पूँजी लागत तथा फर्म का मूल्यांकन पूँजी ढाँचे से स्वतंत्र है उत्तोलन के प्रत्येक स्तर पर दोनों यथावत् रहते है।
2. समता पूँजी की लागत उत्तोलन स्तर में प्रत्येक वृद्धि के साथ बढ़ता है किंतु यह वृद्धि इस प्रकार होती है कि औसत पूँजी लागत यथा स्थिर रहे।
3. वाँछित न्यूनतम प्रत्याय दर पूँजी ढाँचे की बनावट से प्रभावित नहीं होती है।

इस दृष्टिकोण की कुछ मान्यताएँ भी हैं, जो इसे दूसरे दृष्टिकोणों से अलग करती हैं। उक्त मान्यताएँ निम्नलिखित है –

1. पूर्ण पूँजी बाजार की संकल्पना।
2. विनियोक्ताओं के तर्कपूर्ण आचरण की संकल्पना।
3. समान वातावरण में कार्य करने वाले सभी फर्मो की व्यावसायिक जोखिम समान होने की संकल्पना।
4. लाभांश भुगतान अनुपात शत प्रतिशत होने की संकल्पना
5. करारोपण की संकल्पना।

मोदिगिलियानी तथा मिलर की संकल्पनाका व्यावहारिक आधार आरबीट्रेज प्रक्रिया है जिसके अधीन प्रत्येक विनियोक्ता अस्थायी रूप से साम्य-विहीन बाजार में अधिमूल्यांकित कंपनी के अंशों को

बेचकर अवमूल्यांकित कंपनी के अंशों को क्रय करता है ताकि वह इस अवसर का लाभ ले सके। आरबीट्रेज की प्रक्रिया माँग तथा पूर्ति की शक्तियों में संतुलन स्थापित करके बाजार में साम्य की स्थिति वापस लाती है।

2.5 पूँजी के विभिन्न स्रोतों की लागत

पूँजी संरचना में पूँजी की लागत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, अत: विभिन्न प्रतिभूतियों से धन एकत्रित करते समय पूँजी की लागत को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। अज अतिरिक्त पूँजी का निर्गमन करना हो उस समय यह समस्या विशेष रूप से उपस्थिति होती है कि अतिरिक्त पूँजी किस साधन से प्राप्त की जाए? एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या यह उत्पन्न होती है कि यदि एक से अधिक साधनों से पूँजी प्राप्त करनी हो तो विभिन्न साधनों का मिश्रण क्या हो? उपर्युक्त दोनों ही समस्याओं के समाधान के लिए पूँजी की लागत को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाता है, क्योंकि पूँजी की लागत व्यवसाय की लाभ अर्जन शक्तिपर सीधा प्रभाव डालती है। अत: पूँजी की लागत का आशय उस मूल्य से है जो पूँजी के प्रयोगकर्ताओं द्वारा पूँजी प्रदाता को उसके उपयोग के बदले चुकायी जाती है। विभिन्न स्रोतों से पूँजी की विभिन्न लागतें होती हैं। पूँजी की लागत में अंतर विभिन्न पूँजी स्रोतो से जुड़े जोखिम में अंतर के कारण होता है। कम जोखिम वहन करने वाली पूँजी की लागत कम तथा ज्यादा जोखिम वहन करने वाली पूँजी की लागत ज्यादा होती है।

आई.एम.पाण्डेय के शब्दों में ''पूँजी की लागत प्रत्याय की उस दर को कहा जाता है जो किसी निवेश पर फर्म इसलिए प्राप्त करना चाहती है ताकि वह बाजर में फर्म के मूल्य में वृद्धि कर सकें दूसरे शब्दों में पूँजी की लागत वह न्यूनतम दर है जिसे प्रत्येक फर्म को अपने प्रत्येक निवेश पर अर्जित करना होता है जिससे फर्म के बाजार मूल्य को गिरने से रोका जा सके।'' अत: वित्तीय प्रबंधक को चाहिए कि व्यवसाय की आय पर पूँजी की लागत का अनावश्यक भार न पड़े। संस्था अनुकूलतम पूँजी-संरचना उस बिंदु पर प्राप्त करती है, जहाँ संस्था की पूँजी प्राप्त करने की समग्र लागत न्यूनतम हो।

किसी उपक्रम को किसी साधन से मिलने वाली शुद्ध धनराशि तथा उसके ऊपर पड़ने वाले दायित्व के आपसी अनुपात को पूँजी की लागत कहते हैं। आइए इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें – माना 5,000 रू. का ऋण 10 प्रतिशत ब्याज दर पर एक वर्ष के लिए लिया जाता है, तो पूँजी लागत निम्न होगी –

देय ब्याज

पूँजी की लागत = ―――――――――― x 100%

प्राप्त शुद्ध राशि

500

= ―――――― x 100 = 10%

5,000

यदि 5,000 रू. का ऋण प्राप्त करने में 100 रू. खर्च हो जाते है तो शुद्ध राशि (5,000-100) = 4,900 रूपये होगी, इस प्रकार पूँजी की लागत इस शुद्ध राशि तथा ब्याज दर के द्वारा निम्न प्रकार निकाली जाएगी-

प्रकार

पूँजी की लागत दो प्रकार की होती है –

(1) **विशिष्ट पूँजी लागत** का अभिप्राय विभिन्न प्रकार की पूँजी की अलग-अलग पूँजी की अलग-अलग पूँजी लागत से होता है। एक वित्त पूँजीकरण की प्रक्रिया में एक आदर्श पूँजी ढाँचे की पहचान करता है, पूँजी का एक आदर्श मिश्रण होता है। अत: विभिन्न प्रकार की पूँजी से संबंधित धन वापसी तथा ब्याज/लाभांश भुगतानकी शर्ते तथा जोखिम भी अलग-अलग होता है। अत: पूँजी की लागत जोखिम की मात्रा से प्रभावित होती हैं, पूँजी के प्रत्येक स्रोत की अपनी विशिष्ट लागत होती है। विशिष्ट पूँजी लागतें मुख्यत: तीन होती हैं -

(1) ऋण पूँजी की लागत

(2) अधिमान पूँजी लागत

(3) समता पूँजीकी लागत

(2) **औसत पूँजी लागत** – सामान्यत: पूँजी की लागत का तात्पर्य औसत पूँजी लागत से होता है।

(1) सामान्य औसत पूँजी लागत तथा

(2) भारित औसत पूँजी लागत।

पूँजी लागत का महत्व

'पूँजी की लागत' अवधारणा वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है। पूँजी की लागत अवधारणा का महत्व निम्न तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है:

- पूँजी बजटन निर्णय में, पूँजी का उपयोग एक विनियोग प्रस्ताव के अनुकरण हेतु एक मापक के रूप में किया जाता है। कंपनी को उस परियोजना का चुनाव करना चाहिए जो विनियोग पर संतोषप्रद प्रत्याय दे। पूँजी की लागत परियोजना का निर्णय लेने में सहायक होती है।
- पूँजी संरचना के निर्धारण में सहायक होती है। पूँजी की लागत कार्पोरेट वित्तीय ढ़ाँचेकी संरचना को प्रभावित करती है। वित्तीय ढाँचा पूँजी की लागत से प्रभावित होता है।
- उच्च प्रबंधकों की वित्तीय कुशलता के मूल्यांकन में सहायक होती है। पूँजी की लागत वित्तीयन की विधि को प्रभावितकरती है। एक वित्तीय कार्यकारी ब्याज एवं लाभांश की दर का विश्लेषण करता है। जब अतिरिक्त वित्त के संबंध में निर्णय लिए जाते है तो वित्तीय कार्यकारी अन्य बातों के साथ-साथ पूँजी की न्यूनतम लागत को भी ध्यान में रखते है।

पूँजी की लागत की धारण का उपयोग अन्य अनेक वित्तीय निर्णयों में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए लाभांश नीति, कार्यशील पूँजी के संबंध में नीति आदि के निर्धारण में पूँजी की लागत महत्वपूर्ण होती है।

पूँजी के विभिन्न साधनों की लागत

कोई भी उद्यम या कंपनी विभिन्न स्त्रोतों से पूँजी प्राप्त करती है। प्रत्येक स्त्रोत की पूँजीकी लागत अलग-अलग होती है। पूँजी प्राप्त करने के निम्न साधन हो सकते है –

(1) पूर्वाधिकारी अंश – पूर्वाधिकारी अंशों के द्वारा प्राप्त पूँजी स्थायी आय वाली प्रतिभूतियाँ हैं। इन पर दिए जाने वाले लाभांश की दर इनके निर्गमन से पूर्व ही निश्चित हो जाती है। इनकी लागत हम इन अंशों से संबंधित लाभांश को इनके निर्गमन से प्राप्तिहोने वाल शुद्ध धनराशि से संबंध करके ज्ञात कर सकते हैं। सूत्र निम्न प्रकार है -

$$Kp = \frac{PD}{\quad} \times 100$$

PN

Kp = पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत

PD = प्रति पूर्वाधिकार अंश लाभांश

NP = व्यय घटाकर प्राप्ति।

ऋणपत्रों की तरह पूर्वाधिकर अंशों पर दिए जाने वाले लाभांश की दर इनके निर्गमन की अवधि पर ही निश्चित कर दी जाती है और कंपनी इसे चुकाने के लिए बाध्य होती है। यदि कंपनी का लाभ पर्याप्त नहीं है या हानि है तो केवल गैर-संचयी पूर्वाधिकार अंशों की दशा में ही कंपनी लाभांश भुगतान के दायित्व से मुक्त हो जाती है। अन्य पूर्वाधिकार अंशों के संबंध में नहीं।

पूर्वाधिकार अंशों की पूँजी की लागत निकालते समय सामान्य सूत्र का ही प्रयोग किया जा सकता है, परंतु यह निर्धारित करना आवश्यक होता है कि पूँजी की शुद्ध राशि कितनी प्राप्त हुई है और देय लाभांश की रकम कितनी है। चूँकि ऋण-पत्रों की तरह पूर्वाधिकार अंशों को भी सम-मूल्य पर, पट्टे स्थितियों में भिन्न-भिन्न होगी। लेकिन इनकी एक निश्चित शोधन तिथि न होने के कारण ऋणपत्रों की तरह पट्टे या प्रीमियम का औसत समायोजन और साथ ही साथ लाभांश में समायोजन आवश्यक होता है। प्राप्त शुद्ध राशि की गतिविधि निम्न है –

(अ) जब पूर्वाधिकार अंशोंका निर्गमन सम-मूल्य पर हुआ हो –

C = Par Value – expenses of Issue

(ब) जब पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन बट्टे पर हुआ हो –

C = Par Value – Discount – Expenses of Issue

(स) जब पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन प्रीमियम पर हुआ हो –

C = Par Value + Premium – Expenses of Issue

आइए उपरोक्त को एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें –

ज्ञात प्रकाश एंड एक कंपनी ने 10,000 % अशोध्य पूर्वाधिकार अंश प्रत्येक 100 रूपये की दर से निर्गमित किए हैं। इन अंशों के निर्गमन की लाग्त 40,000 रूपये है। पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत ज्ञात कीजिए ?

उपर्युक्त सूचनाओं के अनुसार पूर्वाधिकार अंशों पर 90,000 रूपये प्रतिवर्ष लाभांश दिया जाएगा। पूर्वाधिकार अंशों से शुद्ध प्राप्त धनराशि 9,60,000 रू. (NP) है। ऐसी स्थिति में पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत निम्न प्रकार ज्ञात की जाएगी –

$$Cp\ (\text{कर पश्चात}) = \frac{PD}{NP} \times 100 \quad \frac{90,000}{9,60,000} \times 100 = 9.37\%$$

यहाँ

PD = पूर्वाधिकार लाभांश का योग

NP = शुद्ध प्राप्त धनराशि

$$Cp\ (\text{कर पूर्व}) = Cp\ (\text{कर पश्चात्}) \times \left(\frac{1}{1-t}\right)$$

$$9.37 \left(\frac{1}{1-5}\right) = 18.7\%$$

नोट – t = की दर 50% (अर्थात् एक रूपये पर 50 पैसे) मान ली गयी है।

(2) **ऋणपत्रों या बांडों की लागत** – ऋण पूँजी की लागत से आशय कंपनी के द्वारा ऋणपत्रों पर पूर्व निश्चित दर से ब्याज के देने से है। जो राशि के प्रयोगकर्ता को उस राशि के प्रयोग के लिए वहन करनी होती है। इस ब्याज की राशि को ऋण शुद्ध प्राप्ति से संबंधित करना है। शुद्ध धनराशि से आशय ऐसी धनराशि से है जिसमें से ऋण प्राप्त करने के व्ययों को घटा दिया जाता है। सूत्र इस प्रकार है -

Kd = ऋण पूँजी की लागत

I = प्रति ऋणपत्र प्रतिवर्ष ब्याज

NP = प्रति ऋणपत्र निर्गम मूल्य व्यय घटा कर।

ऋणों की लागत की गणना की दृष्टि से ऋणों को दो भागों में बाँटा जाता है –

(अ) अशोधनीय ऋणों की लागत – अशोधनीय ऋणों से तात्पर्य ऐसे ऋणों अथवा ऋणपत्रधारियों को नियत तिथि को दिया जाता है किंतु मूलराशि का पुनर्भुगतान नहीं किया जाता है। यदि नगद प्रवाह के संदर्भ में देखा जाए तो ऋण राशि के अंतरप्रवाह के बदले में प्रतिवर्ष केवल ब्याज राशि का बाह्य प्रवाह होता है।

(la) अशोधनीय ऋणों की कर-पूर्व लागत $\left(kd \ \frac{1}{Bo} x100 \quad \right) =$

l = वार्षिक ब्याज राशि

Bo = ऋणों की राशि व्ययों को घटा कर

(lb) अशोधनीय ऋणों की कर पश्चात् लागत (Kdt)

$$\left[\frac{1}{B0}\,(1-t)\right]100 \quad or\ KD\ (1-t)$$

(ब) शोधनीय ऋणों की लागत – शोधनीय ऋणों का तात्पर्य ऐसे ऋणों से है जो एक निश्चित समय के पश्चात् पुनर्भुगतान योग्य होते है। शोधनीय ऋणों की लागत में ऋण से संबंधित अंतरप्रवाह तथा बाह्य प्रवाह विचार योग्य होते हैं। अत: ऐसे णत्रों की लागत वह कटौती दर होता है जो शोधनीय ऋणों से संबंधित बाह्य-प्रवाह को संबंधित अंतरप्रवाह के बराबर करती है। सूत्ररूप में -

$$Cld = \frac{Col1}{(1+KF)1} + \frac{Col2}{(1+Kd)2} + \frac{Col3}{(1+Kd)3} + \frac{Con}{(1+Kd)n} + \frac{COPn}{(1+Kd)n}$$

Cld = ऋणों के रूप में प्राप्त राशि समस्त ऋण लेने से संबंधित व्ययों तथा निर्गम कटौती को घटा कर अथवा निर्गमन प्रीमियम को जोड़कर।

Coll = x ब्याज के रूप में प्रतिवर्ष देय राशि

Cop = अवधि के अंत में पुनर्देय ऋणराशि शोधन प्रीमियम यदि कोई देय हो उसे जोड़कर।

Kd = ऋणों की लागत जो एक ऐसी कटौती दर है, जो कुल देयों को कुल प्राप्ति के बराबर करती है।

उपरोक्त ऋण लागत को कर पश्चात दर में परिवर्तित करने के लिए (1-t) से गुणा किया जाता है। उपरोक्त सूत्र जो कि जटिल है के स्थान पर सरल सूत्र का प्रयोग भी ऋणों की लागत (kd) ज्ञात करने के लिए किया जाता है – $$Cd = \frac{\text{Amount of Interest of debt} + \frac{1}{N}(F + RP + 1\,D)}{(\text{Net Amount Received on account of debts} + \text{Net Amount Payable on account of debts})/2}$$

E = Expenses of loan taking or debenture issue

RP = Redemption of Premium

ID = Issue Discount

आइए इसे एक उदाहरण द्वारा और स्पष्ट रूप से समझने का प्रयास करें –

नगेंद्र एंड कंपनी ने रू. 10,000 मूल्य के ऋण-पत्र 10% ब्याज पर निर्गमित किए, जिनको शोधन सम-मूल्य पर 10 वर्ष बाद होना है। ऋण-पत्रों के निर्गमन पर रूपये 200 व्यय हुए, ऋण-पूँजी की लागत ज्ञात कीजिए। यहाँ,

I = 100 रू. VP = 10,000 NP = 10,00 – 200 = 9, 800

1,000+

उरोपरांत शुद्ध लागत Cd = कर पूर्व लागत (I-t)

= 10.3-(1+.50)

= 10.3 x .50 = 5.15%

नोट – t = कर की दर 5% (अर्थात एक रूपये पर 50 पैसे) ली गयी है।

(स) समता अंशों की लागत – समता पूँजी एक कंपनी की ऐसी पूँजी है जिस पर एक निश्चित दर से लाभांश प्रतिवर्ष चुकाने की वैधानिक जिम्मेदारी प्रबंध तंत्र पर नहीं होती है। समता पूँजी समान्यत: कंपनी के जीवनकाल में कंपनी द्वारा समता अंशधारियों को वापस नहीं की जाती है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि कंपनी के लिए समता पूँजी की लागत शून्य होती है। समता अंशों के धारक ही कंपनी के वास्तविक स्वामी माने जाते हैं। समता अंश की लागत को प्रति अंश वर्तमान आय और वर्तमान बाजार मूल्य प्रति अंश के बीच अनुपात के रूप में निम्नलिखित रूप से ज्ञात किया जाता है। सूत्र इस प्रकार है –

Ke = समता अंश पूँजी की लागत

Di = चालू वर्ष के अंत में देय लाभांश प्रति अंश

Po = वर्ष के प्रारंभ में प्रति अंश बाजार मूल्य

G = लाभांश वृद्धि दर

आइए उपरोक्त सूत्र को व्यावहारिक रूप में परिवर्तित करने का प्रयास करें –

सुधीर लिमिटेड ने 100 रू. वाले पूर्णदत्त 20,000 समता अंश निर्गमित किए। इन अंशों का वर्तमान बाजार मूल्य 160 रू. प्रति अंश है। कंपनी ने 8 रू. प्रति लाभांक्ष भुगतान किया है। समता पूँजी की लागत बताइए ?

उपरोक्त सूचलाओं के अनुसार –

Solution –

$$Ce(\text{After Tax}) = \frac{DPS}{MP} X100 = \frac{8}{160} \text{X100=5\%}$$

अंश का अंकित मूल्य	1,000 रू. प्रति अंश
अंश का निर्गमन मूल्य	1,050 रू. प्रति अंशि
निर्गमन की लागत	30 रू. प्रति अंश
वर्तमान अजनें	110 रू. प्रति अंश

उपर्युक्त उदाहरण में प्राप्त अंश राशि (NP) = (1050-30) = 1,020 रू. प्रति अंश है और EPS = 110 रू. प्रति अंश है। इस पूँजी की लागत निम्न प्रकार ज्ञात की जाएगी –

$$\frac{EPS}{NP} X100 = \frac{100}{1,020} X100 = 10.79\%$$

C (कर पश्चात्) =

(कर पश्चात्) Ce (After Tax)x $\left(\frac{1}{1-t}\right)$

$$=10.79 \left(\frac{1}{1-5}\right)=21.58\%$$

नोट – t = कर की दर 50% (अर्थात् एक रूपये 50 पैसे) मान ली गयी है।

(3) **लाभों के पुनर्विनियोजन की लागत** – सामान्यत: यह समझा जाता है कि प्रतिधारित लाभों की कोई लागत नहीं होती है। लेकिन सच यह है कि इसकी गर्भित लागत नहीं होती लेकिन इनकी अवसर लागत अवश्य होती है। इसका कारण यह है कि यदि इन लाभों को न रोककर अंशधारियों में ही

लाभांश के रूप में वितरित कर दिया गया होता तो अंशधारियों की प्रतिधारित लाभों की लागत भी अलग-अलग होगी। समता पूँजी लागत की गणना तीन प्रकार से की जाती है -

(अ) अर्जित आय आधार – इस मॉडल के अनुसार समता पूँजी की लागत (Ke) निम्न सूत्र से ज्ञात की जाती है -

$$Ke = \frac{\text{DPS}}{\text{Market price per share}} X100$$

DPS = प्रति अंश अर्जित आय

(ब) लाभांश तथा वृद्धि आधार – यह मॉडल लाभांश तथा उसमें होने वाली वृद्धि दोनों के आधार पर समता पूँजी की लागत की गणना करता है। गणना सूत्र निम्न है –

$$(Ke = \frac{\text{DPS}}{\text{Market price per share}} X100)$$

G = लाभांशों की वार्षिक वृद्धि दर

प्रतिधारित या लाभों के पुनर्वियोग की लागत निम्न प्रकार ज्ञात की जाती है –

Kre = प्रतिधारित आय की पूँजी लागत

KPS = *प्रति अंश अर्जन*

T = कंपनी कर की दर

आइए एक उदाहरण द्वारा अर्जनों की लागत को ज्ञात करने की प्रक्रिया को समझे इसका विवरण इस प्रकार से है –

प्रति अंश लाभांश = *रू. 10*

व्यक्तिगत आय – कर = 30 %

व्यक्तिगत लाभ-कर दर = 20%

निगम कर दर	= 50 %
प्रति अंश बाजार मूल्य	= रू. 100
दलाली	= 2%

उपरोक्त सूचनाओं के आधार पर –

$$Cr(After\ tax) = \frac{DPS\ (1-Ti)(1-B)}{MP\ (1-Te)}$$

$$= \frac{10(1-30)(1-.02)}{100\ (1-.02)} x100 = 8.575\%$$

$$Cr(\text{कर पूर्व}) = 8.575\left(\frac{1}{1-.50}\right) = 17.15'$$

Po = प्रति अंश बाजार मूल्य

(3) अल्पकालीन साख की लागत – संस्था अल्पकालीन ऋण अथवा साख किसी बैंक अथवा अन्य संस्था से प्राप्त करती है उसकी भी लागत लगती है क्योंकि अल्पकालीन ऋण पर ब्याज के अलावा अन्य व्यय भी देना पड़ता है यह लागत ऋण की राशि में ऋण प्राप्त करने के लिए किए गए व्ययों को घटा कर प्राप्त शुद्ध राशि तथा ऋण पर देय ब्याज के अनुपात के रूप में निकालनी चाहिए। इसकी गणना निम्न प्रकार से की जाती है -

$$\text{कर पूर्व} = \frac{\text{वार्षिक ब्याज की दर}}{\text{लघु अवधि लोन से प्राप्ति}} x\ 100$$

(5) पूँजी की औसत लागत – पूँजी के प्रत्येक साधन की अपन-अपनी विशेषताएं एवं गुण दोष होते हैं। अत: कंपनी के प्रबंधक किसी एक ही साधन पर आवश्यकता से अधिक जोर न देकर पूँजी प्राप्ति के विभिन्न साधनों में एक अनुकूलतम संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं जिससे कंपनी के अंशधारियों को अधिक लाभ मिल सके और आय, जोखिम तथा नियंत्रण की दृष्टि से कंपनी में उनके हितों के पूर्ववत् बनाया रखा जा सके या उनमें वृद्धि की जा सकें। उपरोक्त बातों का अध्ययन पूर्व से अर्जित लाभ की दर (कर सहित) 8.25% से अधिक होगी। यदि प्रस्तावित पूँजी विनियोजन पर संभावित लाभ की दर इससे कम है तो ऐसा पूँजी विनियोजन लाभदायक नहीं माना जाएगा। अत: पूँजी की औसत भारयुक्त लागत ऐसा काट बिंदु है जिसके आधार पर नवीन परियोजना में पूँजी लगाने के विषय में कंपनी के प्रबंधक सही एवं उचित निर्णय ले सकते हैं। पूँजी विनियोग के ऐसे समस्त प्रस्ताव जिनकी संभावित लाभ दर इस काट बिंदु से कम है, विचारणीय नहीं होते हैं। आइए, इसे एक उदाहरण द्वारा और स्पष्ट करने का प्रयास करें -

नागेशवर एंड कं. प्रत्येक 100 रूपये वाले 1,000,70% ऋण-पत्रों के निर्गमन की इच्छा कर रही है जिसके लिए कंपनी को निम्नलिखित व्यय उठाने पड़ेंगे – अभिगोपन कमीशन 1.5% दलाली 0.5% छपाई एवं अन्य व्यय 500 रू. । कंपनी की कर की दर 50% मानते हुए ऋण पूँजी की लागत ज्ञात कीजिए।

$C \quad d \ (Befor\ Tax) \qquad NP^{1} x 100 = \frac{7{,}000}{97{,}500}$ x 100=7.18%

जहाँ 1=7% of 1,00,000=7,000

N.P.=1,00,000-(1,500+500+500)=97,500

वैकल्पिक तौर पर $Cd \frac{-7}{97.5}$ x 100=7.18%

यहाँ N.P.= 100-(1.5+0.5+(500-1,000)=97.5

C d (कर पश्चात्) = कर पूर्व लागत (1-t)

= 7.18 (1-.50)=3.59%

पूँजी लागत का भारित औसत

पूँजी एक दुर्लभ वस्तु है जो बिना मूल्य चुकाए प्राप्त नहीं हो सकती। प्रत्येक बचतकर्ता अपनी पूँजी का मूल्य चाहता है। अपनी पूँजी की सुरक्षा और लाभ को ध्यान में रखकर ही प्रत्येक बचतकर्ता अपनी पूँजी दूसरे को सौपता है। कुछ विनियोजक पूँजी के मूल्य की तुलना में सुरक्षा को अधिक महत्व देते हैं तथा कुछ विनियोजक सुरक्षा की अपेक्षा पूँजी के मूल्य को अधिक महत्व देते हैं। पूँजी के विभिन्न साधनों की अपनी-अपनी विशेषताएं गुण, एवं दोष होते हैं। अत: कंपनी के प्रबंध किसी एक ही साधन पर आवश्यकता से अधिक जोर न देकर पूँजी प्राप्ति के विभिन्न साधनों में एक श्रेष्ठ अनुकूलतम संतुलन स्थापित करने का प्रयास करते हैं जिससे कंपनी के अंशधारियों को अधिक लाभ मिल सके।

संस्था के प्रबंध, स्वामित्व, नियंत्रण, आय आदि अनेक तत्वों को ध्यान में रखकर विभिन्न स्रोतों से पूँजी प्राप्त करते हैं विभित्र स्रोतों से प्राप्त पूँजी की गणना विभिन्न विधियों द्वारा की जाती हैं। अत: महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्या यह उत्पन्न होती है कि संस्था के संपूर्ण पूँजी ढाँचे की लागत क्या होगा? माना ऋण-पूँजी एक सस्ता साधन है और यदि कोई कंपनी थोड़ी सी अंशपूँजी रखकर शेष आवश्यकताओं की पूर्ति ऋण-पूँजी से ही करना चाहे तो यह एक सीमा तक ही संभव हो सकता है, उससे अधिक नहीं। प्रत्येक अनुवर्ती ऋण से बढ़ता जाएगा और उत्तरोत्तर अधिक ब्याज देकर ही कंपनी आगे अतिरिक्त ऋण पूँजी प्राप्त नहीं कर सकेगी। आगे चलकर भविष्य में ऐसी स्थिति आ सकती है कि आय की तुलना में ब्याज का भार अधिक प्रतीत होने लगे। अत: व्यावहारिक रूप से कंपनी को आगे के वित्तीय ढाँचे में वित्त प्राप्ति के एक से अधिक साधनों का समावेश करना आवश्यक हो जाता है। यदि विभिन्न साधनों से उपलब्ध पूँजी की औसत संयुक्त लागत मालूम कर ली जाए तो इससे भविष्य में अतिरिक्त वित्त पूर्ति के साधन के बारे में निर्णय लेना आसान हो जाता है विनियोग निर्णय की दृष्टि से पूँजी लागतों के भारित औसत उपयोगी होते हैं। एक विनियोग अवसर की प्रत्याय दर की तुलना भारित औसत पूँजी लागत से की जाती है।

इस प्रकार भारित औसत पूँजी लागत विशिष्ट पूँजी लागत का भारित माध्यम होती है। विशिष्ट पूँजी लागतों का भारित माध्यम के उद्देश्य से फर्म में प्रयोग की जा रही विभिन्न प्रकार की पूँजी के अनुपातों का

प्रयोग भार के रूप में किया जाता है। पूँजी की औसत लागत को ज्ञात करने की प्रक्रिया को निम्न चरणों द्वारा समझा जा सकता है-

क. सर्वप्रथम संस्था में प्रयुक्त समस्त पूँजी की राशि को एक मानकर उसके अनुपात में विभिन्न पूँजी मदों को भार दिया जाता है। भार देने के लिए पूँजी का पुस्तक मूल्य अथवा बाजार मूल्य में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है।

ख. प्रत्येक पूँजी साधन की विशिष्ट लागत अलग से ज्ञात कर ली जाती है।

ग. यदि पूँजी के किसी भी समय पर कर लागत है तो कर का भी समायोजन किया जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीन चरणों की औसत लागत कर पूर्व एवं कर बाद ज्ञात की जाती है। सूत्र रूप में गणना विधि निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते है।

$$\text{Wacc} = \frac{(kd \times W_1)+(Kp \times w_2)+(We \times W_3)}{W_1 + W_2 + W_3}$$

जहाँ Kd = ऋणपूँजी की विशिष्ट लागत।

Kp = पूर्वाधिकार की पूँजी की विशिष्ट लागत।

Ke = समता पूँजी विशिष्ट लागत

W1, W2 तथा W3 = क्रमशः ऋणपूँजी, पूर्वाधिकार पूँजी तथा समता पूँजी के अनुपात है।

पूँजी की औसत लागत की गणना विधि का नीचे दिए गए एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

निम्नलिखित सूचनाओं के आधार पर औसत भारयुक्त लागत की गणना कीजिए।

पूँजी साधन	धनराशि	कर बाद लागत प्रतिशत
ऋणपत्र प्रथम	20,00,000	3.0
ऋणपत्र द्वितीय	10,00,000	3.5
पूर्वाधिकार शेयर्स	20,00,00	8.0
इक्किटी शेयर्स	40,00,00	12.0
प्रतिधारित आय	10, 00,000	9.0
योग	**1,00,00,000**	

उपरोक्त सूचनाओं पर औसत भार युक्त लागत की गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है –

पूँजी साधन	धनराशि	लागत प्रतिशत	लागत
ऋणपत्र प्रथम	20,00,000	3.0	60,000
ऋणपत्र द्वितीय	10,00,000	3.5	35,000
पूर्वाधिकार शेयर्स	20,00,00	8.0	1,60,000
इक्किटी शेयर्स	40,00,00	12.0	4,80,000
प्रतिधारित आय	10, 00,000	9.0	90,000
योग	**1,00,00,000**		**8,25,000**

औसत भारयुक्त पूँजी लागत = 8,25,000 x100 = 1,00,00,000

= 8.25%

उदाहरण – निम्नलिखित सूचनाओं को आधार बनाकर औसत भारयुक्त पूँजी लागत की गणना करें?

स्त्रोत	राशि (रूपये में)	विशिष्ट लागत दर (प्रतिशत में)
ऋण पत्र	2,50,000	4%(कर के पश्चात्)
पूर्वाधिकारी अंश	2,00,000	10% (कर के पश्चात्)
समता अंश	4,00,000	11% (कर के पश्चात्)
प्रतिधृत अर्जनें	1,50,000	8% (कर के पश्चात्)

उपरोक्त सूचनाओं को आधार मानते हुए औसत भारयुक्त पूँजी लागत की गणना निम्नलिखित प्रक्रिया से की जा सकती है :

स्रोत	राशि (रू. में)	भार (w)	विशिष्ट लागत दर (x) (प्रतिशत में)	W x X
ऋण पत्र	2,25,000	5	4	20
पूर्वाधिकारी अंश	2,00,000	4	10	40
समता अंश	4,00,000	8	11	88
प्रतिधृत ऊर्जा में	1,50,000	3	8	24

औसत भारयुक्त लागत (कर पश्चात्)

कर पूर्व लागत = 8.6

अनुकूलतम पूँजी संरचना

एक कंपनी पूँजी योजना तैयार करते समय दो बातों पर प्रमुख रूप से विचार करती है –

(अ) कंपनी की पूँजी आवश्यकताएँ क्या है ?

(ब) कंपनी अपनी पूँजी संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति किन साधनों से कर सकती है ?

उपरोक्त दोनों बातें आंतरिक एवं बाह्य कारकों से प्रभावित होती हैं तथा कंपनी के पूँजी संरचना एवं लाभदायकता को प्रभावित करती हैं। कंपनी के सही संचालन के लिए सही वित्तीयकरण किया जाना चाहिए। वित्तीय नियोजन के अंतर्गत सर्वप्रमुख समस्या पूँजी ढाँचे के निर्धारण की होती है। पूँजी के विभिन्न साधनों के माध्य पारस्परिक अनुपात का निर्धारण विभिन्न मान्यताओं एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। संगठन के समक्ष यह अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न यह होता है कि पूँजी मिश्रण का स्वरूप क्या हो ? पूँजी ढाँचे के मिश्रण का अनुपात प्राय: संगठन के उद्देश्यों पर निर्भर करता है। व्यवसाय का संचालन प्राय: स्वामियों के हितों में अभिवृद्धि के लिए किया जाता है।

अनुकूलतम पूँजी संरचना का आशय किसी कंपनी या निगम की पूँजीकरण में ऐसी प्रतिभूतियों के मिश्रण से है जिससे उस निगम या कंपनी के समता अंशधारियों को अनुकूलतम लाभ प्राप्त हो सके और प्रबंधकीय लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। तभी संभव हो सकता है जब पूँजी संरचना में सम्मिलित विभिन्न वित्तीय साधनों की औसत लागत न्यंनतम हो और प्रबंधकीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समता अंशधारियों की अनुकूलतम आय के अतिरिक्त अन्य घटकों पर भी समुचित ध्यान दिया जाए प्रत्येक कंपनी द्वारा सुदृढ़ एवं संतुलित पूँजी संरचना का निर्माण करने के लिए पूँजीकरण की उचित मात्रा का निर्धारण किया जाता है। अनुकूलतम पूँजी संरचना की प्रमुख विशेषता विभिन्न प्रकार की पूँजियों का एक आदर्श मिश्रण है, जो न केवल कंपनी का उचित पूँजीकरण करता हो वरन् पूँजी लागत को भी न्यूनतम स्तर पर रखता है।

अत: पूँजी ढाँचे का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि कंपनी के अंशधारकों/ स्वामियों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकें तथा पूँजी के विभिन्न साधनों की औसत लागत न्यूनतम हो। अत: पूँजी संरचना के निर्धारण हेतु उन सारे पहलुओं के विवेचन की आवश्यकता होती है जो इससे संबंधित होते है। तभी संगठन हेतु यह आवश्यक होता है कि वह अनुकूलतम पूँजी ढाँचा के सृजन का प्रयास कर स्वामियों के हितों को संवर्धित करने का प्रयास करें।

संक्षेप में, एक अनुकूलतम पूँजी संरचना में समता अंश पूँजी पूर्वाधिकार अंश पूँजी, दीर्घकालीन ऋणों तथा ऋणपत्रों का एक ऐसा मिश्रण रखा जाता है, जिससे आवश्यकता अनुसार पूँजी प्राप्त करने के लिए न्यूनतम पूँजी लागत वहन करनी पड़े तथा वित्तीय लक्ष्यों की भी प्राप्ति हो जाए। वस्तुत: अनुकूलतम पूँजी ढाँचे की संरचना के संदर्भ में कोई विधि मान्य सूत्र नहीं है। कतिपय विशेषताओं एवं गुणों के आधार पर ही अनुकूलतम पूँजी ढाँचे की संरचना का निर्माण किया जा सकता हैं। संक्षेप में अनुकूल पूँजी की संरचना हेतु निम्नलिखित गुण आवश्यक होती है –

1. पूँजी संरचना की योजना जटिलताओं से मुक्त तथा समझने में आसान होनी चाहिए।
2. पूँजी कलेवर ऐसा होना चाहिए जिससे आवश्यकतानुसार पूँजी की प्राप्ति संभव हो सके।
3. पूँजी ढाँचे में कठोरता नहीं होनी चाहिए। यह एक ऐसा ढाँचा होना चाहिए जिसमें भविष्य में आवश्यकतानुसार हेरफेर किया जा सकता है अत: यह लचीला होना चाहिए।
4. पूँजी ढाँचे में विभिन्न प्रकार की पूँजी का अनुकूलतम मिश्रण होना चाहिए ताकी संतुन बना रहे।
5. अनूकूलतम पूँजी संरचना वहीं होती है जिसकी पूँजी लागत न्यूनतम होती है।
6. एक सुदृढ़ एवं संतुलित पूँजी ढाँचा वही है जिसमें स्वामित्व नियंत्रण खोये बिना पूँजी दंतिकरण का प्रयोग कर प्रति अंश अर्जन बढ़ाने का गुण विद्यमान हो।
7. संगठन की पूँजी संरचना में जोखिम की मात्रा न्यूनतम होनी चाहिए। संगठन में कुछ ऐसे आंतरिक एवं बाह्य तथ्व अवश्य होते हैं, जो संगठन में जोखिम की मात्रा को अभिवृद्धि करते रहते हैं- लागत में वृद्धि मूल्य में कमी, करो मे वृद्धि तथा ब्याज दरों में वृद्धि आदि। इन जोखिम पूर्व स्थितियों का संगठन की लाभदेयता पर आत्यधिक प्रभाव पड़ता हे। इसके लिए यह आवश्यक होता हे कि संगठन का पूँजी ढाँचा इस प्रकार उपरोक्त जोखिमों को आसानी से सहन कर सके।
8. पूँजी संरचना की सफलता पूँजी लागत को न्यूनतम कर, प्रति अंश अर्जन अधिकतम करने में होते है।

2.6 मूल्यांकन एवं प्रत्याय दरें

पूँजी बजटन की मूल्यांकन विधियों का संबंध उन विधियों से है जिनके द्वारा किसी परियोजना की लाभदायकता के औचित्य को सिद्ध किया जा सके। प्रत्येक पूँजी व्यय के निर्णय से पूर्व परियोजना की लाभदायकता की जाँच करने के बाद ही उसके स्वीकार करने या अस्वीकार करने का निर्णय लिया जाता है। पूँजी व्यय प्रस्तावों के मूल्यांकन के लिए किसी भी विधि का प्रयोग किया जाए वह ऐसी हो जिसके आधार पर स्वीकार्य तथा अस्वीकार्य परियोजनाओं में भद करना, अनेक विकल्पों में से किसी एक अथवा अधिक को चुनना, उनका कम निर्धारित करना, अधिक लाभों को कम लाभों तथा शेघ्र लाभों को बाद के लाभों की तुलना में प्राथमिकता देना संभव होना चाहिए। पूँजी व्यय प्रस्तावों का मूल्यांकन करने के लिए अनेक विधियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं – आइये इनका प्रमवार विश्लेषण करने का प्रयास करें –

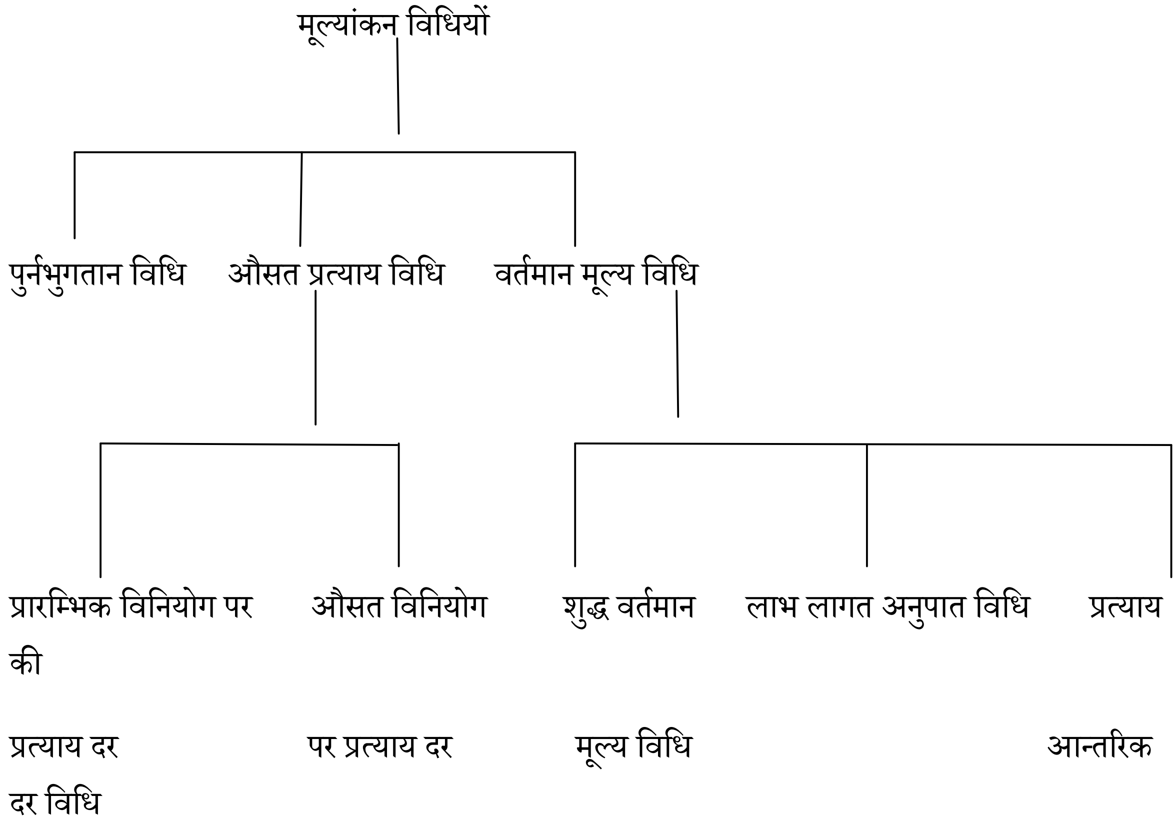

पुनर्भुगतान विधि

पूँजी व्यय का मूल्यांकन करने के लिये प्रयुक्त विधियों में से यह सबसे सरल तथा सबसे अधिक प्रचलित विधि है। इस विधि को Pay-out या Pay-off विधि भी कहते हैं। किसी योजना में विनियोजित राशि कितनी अवधि में वापस प्राप्त हो जाती है, उस अवधि को भुगतान अवधि कहते हैं। विनियोजित पूँजी से प्रति वर्ष जो आय प्राप्त होती है, उस अवधि को भुगतान अवधि कहते हैं। विनियोजित पूँजी से प्रति वर्ष जो आय प्राप्त होती है उसे 'रोकड़ अर्जन' 'रोकड़ बचत' अथवा 'शुद्ध रोक अंतरप्रवाह' कहा जाता है। इस प्रकार शुद्ध रोकड़ अंतरप्रवाह के आधार पर पूँजी संपत्ति में किए गए विनियोग के पुनर्भुगतान की अवधि ज्ञात की जाती है और यह अवधि परियोजना के लिये प्रबंधकीय स्वीकार्य अवधि के बराबर या कम होती है तो उस परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है, अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है।

एक से अधिक वैकल्पिक परियोजनाओं में से इस विधि के आधार पर उस परियोजना को चुना जाता है, जिसकी पुनर्भुगतान अवधि सबसे कम हो।

विशेषताएँ – इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

- जहाँ संस्था की रोकड़ अर्जन क्षमता कम है तथा परियोजना के लिये पूँजी व्यवस्था ऋणों से की गई हो जिसका भुगतान अल्प अवधि में किया जाना है। वहाँ इसका उपयोग होता है।
- ऐसी परियोजनाएं जिनके औद्योगिक एवं तकनीकी विकास के कारण अप्रचलित होने की संभावना अधिक हो, यह विधि ही उपयुक्त रहती है: क्योंकि विनियोजित राशि जितनी वसूल हो, अप्रचलन की जोखिम उतनी ही कम जाती है।
- ऐसी संस्थाएं जिनमें अल्पकालीन निष्पादन पर बल दिया जाता है तथा दीर्घ कालीन की उपेक्षा की जाती है। वहाँ इस तकनीक का उपयोग श्रेयकर होता है।

इस विधि का प्रयोग सूत्र के रूप में निम्न प्रकार किया जाता है –

1. परियोजना से प्रति वर्ष समान शुद्ध रोकड़ अंतरप्रवाह होने पर पुनर्भुगतान अवधि की गणना निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात की जा सकती है –

यहाँ

$$\text{पुनर्भुगतान अवधि} = \frac{\text{प्रारंभिक निवेश}}{\text{एकरूपी वार्षिक कुल प्रत्याय ह्रास तथा ब्याज के पूर्व तथा कर के पश्चात}}$$

P = पुनर्भुगतान अवधि

C = प्रारंभिक निवेश

R = एकरूपी वार्षिक कुल प्रत्याय ह्रास तथा ब्याज के पूर्व तथा कर केपश्चात आइए इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें – एक प्रोजेक्ट की लागत 80,000 रूपये है तथा फर्म का कुल वार्षिक आंतरिक नगद प्रवाह 24,000 रू. प्राप्त होता है। पुनर्भुगतान अवधि 03 वर्ष 04 माह होगी जिसे इस गणना इस प्रकार की जा सकती है –

$$P = \frac{C}{R} = \frac{80{,}000}{24{,}000} = 3\,\frac{1}{3}\ \text{वर्ष}$$

या 03 वर्ष 04 माह

एक वर्ष में 12 महीने होते हैं अत: 1/3 वर्ष 4 माह (1/3 x 12) के बराबर होगा।

(2) **परियोजना से प्रति वर्ष असमान रोकड़ अंतरप्रवाह होने पर पुनर्भुगतान अवधि की गणना -** यदि परियोजना से प्राप्त होने वाली वर्ष शुद्ध रोकड़ अंतरप्रवाह समान नहीं हो तो, तब पुनर्भुगतान अवधि की गणना संचयी बचत की सहायता से की जाती है। प्रत्येक वर्ष की शुद्ध या बचत को अगले वर्ष की बचत की राशि में तब तक जोड़ा जाता है जब तक कि संचयी बचत की राशि में किए गए कुल विनियोग राशि के बराबर न हो जाए। जिस अवधि की बचत विनियोग की वास्तविक लागत के बराबर हो जाती है, उसी अवधि को पुनर्भुगतान अवधि कहेंगे।

इस विधि से पुनर्भुगतान अवधि ज्ञात करते समय उस समय समस्या उत्पन्न होती है जब विनियोग की कुल लागत के बराबर राशि करने के लिए वार्षिक बचत की राशि को पूरे वर्ष में समान रूप से प्राप्त किया हुआ मान लिया जाता है तथा वार्षिक बचत की राशि का जितना भाग प्रयोग किया जाता है, उसका कुल वार्षिक बचत राशि से अनुपात निकाल कर उसे बारह महीनों की अवधि से गुणा कर दिया जाता है। जिससे महीनों में अवधि आ जाती है जिसे पूर्व वर्षो की अवधि में जोड़ देने पर परियोजना के पुनर्भुगतान की अवधि ज्ञात हो जाती है। इसे निम्न उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है –

निमिश एंड कंपनी का प्रबंध एक परियोजना में, 1,50,000 रूपये का विनियोग करना चाहता है, जिससे शुद्ध आय हास तथा ब्याज पूर्व परंतु कर बाद 5 वर्षो के लिए निम्न प्रकार प्राप्त होगी।

प्रथम वर्ष	45,000 रू.
द्वितीय वर्ष	30,000 रू.
तृतीय वर्ष	30,000 रू.
चतुर्थ वर्ष	27,000 रू.
पंचम वर्ष	27,000 रू.

पुनर्भुगतान अवधि की गणना कीजिए ?

प्रारंभिक निवेश 1,50,000 रू. है।

वर्ष	**वार्षिक नगद प्रवाह (रू. में)**	**संचयी कुल नगद प्रवाह (रू)**
1	45,0000	45,000
2	30,000	75,000
3	30,000	1,05,000
4	27,000	1,32,000

5	27,000	1,59,000

पुनर्भुगतान अवधि = 4 वर्ष + $(\frac{18000}{27,000}$ X महीनें$)$

= 4 वर्ष 08 महीने होगा।

पुनर्भुगतान विधि के गुण – इस विधि के निम्नलिखित गुण है-

क. इसकी गणना तथहा समझा बड़ा ही सरल है इसीलिये यह पद्धति निगम प्रबंधकों, यहाँ तक कि सोवियत नियोजनकों, जो इसे वसूली विधि कहते हैं, में बहुत लोकप्रिय है।

ख. अन्य परिष्कृत विधियों, जिनमें विश्लेषण के समय सगणकों के उपयोग में पर्याप्त लागत आती है, अत: उसकी तुलना में यह कम लागतशील विधि है।

ग. रोकड़ कमी वाली संस्थाओं के लिए महत्वूपर्ण है।

घ. ऐसे जिनमें तकनीकी प्रगति बड़ी तेजी से होती है, में मशीनों के अप्रचलन का भय अधिक रहता है। अत: वहाँ उन्हीं परियोजनाओं को चुना जाता है, जिनकी अदायगी अवधि कम से कम हो।

च. तरला के मापन के अतिरिक्त, अदायगी, अवधि विधि कुछ दशाआओं में गणना करने में भी सहायता प्रदान करती है। जैसे – आंतरिक प्रत्याय दर के लिये अदायगी अवधि सन्निकटन का अच्छा मान है अन्यथा 'भूल एवं जाँच' विधि को अपनाना पड़ता है। इसे आगे समझाया गया है।

पुनर्भुगतान विधि की आलोचना -

इस विधि की आलोचना निम्नलिखित बिंदुओं पर की जाती है :

क. यह विधि परियोजना की लाभदायकता का मूल्यांकन नहीं करती और न ही परियोजना में लागत की वसूली पर ही बल देती है।

ख. अदायगी अवधि के बाद वाले रोकड़ अंतरप्रवाहों की उपेक्षा इस विधि के अंतर्गत परियोजना के संपूर्ण रोकड़ अंतरप्रवाहों पर विचार नहीं किया जाता अर्थात अदायगी अवधि के पश्चात् के रोकड़ अतंर्वाहों को छोड़ दिया जाता है।

ग. रोकड़ अंतरप्रवाहों के आकार एवं समय की उपेखा इस विधि में विभिन्न समय एवं विभिन्न मात्राओं में प्राप्त रोकड़ अंतवाहों में कोई अंतर नहीं किया जाता अर्थात यदि एक परियोजना प्रारंभ के वर्षो में अधिक व अंतिम वर्षो में कम तथा दूसरी परियोजना प्रारंभ में कम तथा अंत में अधिक रोकड़ अर्जित करती हैं तो कम अदायगी अवधि के आधार पर निर्णय अलाभकारी हो सकती है।

घ. रोकड़ लागत की उपेक्षा करती है।

च. पूँजी लागत की उपेक्षा है।

इस विधि प्रबंध के लिए एक न्यूनतम स्वीकृत योग्य अदायगी अवधि, जिसके आधार पर किसी परियोजना को स्वीकृत करने का निर्णय लिया जा सके। जिसका निर्धारण कठिन है।

पुनर्भुगतान अवधि विधि की उपर्युक्त कमियों को दूर करने के लिए आइए कुछ सुझावों को विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

- पुनर्भुगातन विधि की एक प्रमुख आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसमें पुनर्भुगतान अवधि के पश्चात् परियोजना की आवश्यकता नहीं देखी जाती है। इस दोष को दूर करने के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि पुनर्भुगतान अवधि के पश्चात् परियोजना से पुनर्भुगतान अवधि के पश्चात् सर्वाधिक आय प्राप्त हो उसे श्रेष्ठ विनियोग मान कर लिया जाए।
- पुनर्भुगतान अवधि विधि के अंतर्गत न तो 'समय कारक' पर ध्यान दिया जाता है ओर न ही विनियोग पर, प्रत्याय दर गणना की जाती है। इन दोनों कमियों को पुनर्भुगतान अवधि व्युत्क्रमों की गणना करके दूर किया जा सकता है।

औसत प्रत्याय विधि

इस विधि के अनेक नाम हैं, इसे लेखांकन विधि या विनियोग पर प्रत्याय या औसत प्रत्याय दर भी कहते हैं। इस विधि के अनुसार जब विभिन्न परियोजनाओं का मूल्यांकन करके उनमें से किसी एक को चुनना होता है तब सभी परियोजनाओं की प्रत्याय दर ज्ञात की जाती है तथा सबसे ऊँची प्रत्याय दर वाली परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है। इसके विपरीत जब किसी एक ही परियोजना की लेखांकन प्रत्याय दर ज्ञात करना हो, तब परियोजना की प्रत्याय दर प्रबंध द्वारा स्वीकार्य न्यूनतम दर के बराबर या उससे अधिक होनी चाहिए। इस विधि के अनुसार दीर्घकालीन परियोजनाओं का मूल्यांकन किया जाता है। इस विधि के अनुसार प्रत्याय दर निम्न प्रकार से ज्ञात की जा सकती है –

1. प्रारंभिक विनियोग पर प्रत्याय दर – प्रारंभिक विनियोग पर प्रत्याय की दर विनियोग एवं विनियोग पर अनुमानित औसत शुद्ध आयु का अनुपात होती है। इसे सूत्र के रूप में इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है –

$$\text{प्रारंभिक विनियोग पर प्रत्याय दर} = \frac{\text{कुल वार्षिक आ ह्रास तथा कर के पश्चात}}{\text{प्रारंभिक निवेश}} \times 100$$

आइए, इस विधि को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें –

निमिश एंड कंपनी लिमिटेड का प्रबंधक चार परियोजनाओं पर विचार कर रहा है। इनमें से केवल एक का चुनाव किया जाना है। प्रत्येक में प्रारंभिक विनियोग 20,000 रूपये है। अनुमानित शुद्ध आय कर बाद परंतु ह्रास पूर्व निम्नांकित तालिका में दी गई है। परियोजनाओं का औसत प्रत्याय दर विधि द्वारा मूल्यांकन कीजिए –

परियोजना	प्रारंभिक निवेश	कुल आय आयकर पश्चात् तथा ह्रास केपूर्व			
		प्रथम वर्ष रू.	द्वितीय वर्ष रू.	तृतीय वर्ष रू.	चतुर्थ वर्ष रू.
अ	20,000	20,000	5,000	2,000	2,000
ब	20,000	15,000	10,000	8,000	8,000
स	20,000	20,000	6,000	4,000	4,000
द	20,000	10,000	15,000	15,000	10,000

उपरोक्त सूचनाओं के अनुसार औसत प्रत्याय दर की गणना निम्न प्रक्रिया द्वारा पूर्ण की जाएगी –

प्रोजेक्ट	प्रारभिक निवेश (रू.)	कुल आय ह्रास के पूर्व तथा कर के पश्चात् (रू.)	कुल ह्रास (रू.)	कुल शुद्ध आय कर पश्चात् तथा ह्रास पर्वू (रू.)	औसत कुल आय कर तथा ह्रास के पश्चात् (रू.)	ए.आर.आर.	श्रेणी
अ	20,000	29,000	20,000	9,000	2,250	11-25%	4
ब	20,000	40,000	20,000	21,000	5,250	26-25%	2
स	20,000	34,000	20,000	14,000	3,500	17-50%	3
द	20,000	50,000	20,000	30,000	7,5000	37-50%	1

औसत प्रत्याय की गणना

प्रोजेक्ट अ $= \frac{2,250}{20,000} \text{x } 100 = 11.25\%$

प्रोजेक्ट ब $= \frac{2,250}{20,000} X100 = 26.25\%$

प्रोजेक्ट स $= \frac{3,500}{20,000} X100 = 17.50\%$

प्रोजेक्ट द $= \frac{7,000}{20,000} X100 = 37.50\%$

इस प्रकार प्रोजेक्ट (द) सर्वश्रेष्ठ विकल्प होगा अन्य विकल्पों की तुलना में।

2. **औसत विनियोग पर प्रत्याय दर** – इस विधि के अंतर्गत शुद्ध आय का अनुपात प्रारंभिक विनियोग से न निकालकर औसत विनियोग से निकाला जाता है। प्रारंभिक विनियोग में निरस्तरण मूल्य को जोड़ कर उसमें दो का भाग देकर औसत विनियोग ज्ञात किया जाता है।

औसत राष्ट्रीय आय प्रारंभिक निवेष – निरस्तरण मूल्य प्रोजेक्ट की आय

औसत प्रत्याय दर = ———————————————————————

x100

1/2 (प्रारंभिक निवेश + निरस्तरण मूल्य)

आइए एक और उदाहरण द्वारा विनियोग प्रस्तावों का मूल्यांकन उनकी लाभदायकता के आधार पर (अ) पुनर्भुगतान अवधि विधि तथा (ब) औसत विनियोग पर प्रत्याय दर विधि से करे।

उपरोक्त में निम्नांकित सूचना इस प्रकार से है –

प्रोजेक्ट	Initial Outlay (Rs.)	Annual Net Cash Fow (Rs.)	Lifein years (Rs.)
अ	25,000	3,000	10
इ	3,000	1,000	5
उ	12,000	2,000	8
ऊ	20,000	4,000	10
इ	40,000	8,000	12

उपरोक्त सूचना के अनुसार गणना की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से होगी –

$$\text{अ) पुनर्भुगतान विधि के अनुसार क्रय} = \frac{\text{प्रारंभिक निवेश}}{\text{औसत वार्षिक नगद प्रवाह}}$$

प्रोजेक्ट	प्रारंभिक निवेष रू.	वार्षिक नगद प्रवाह रू.	पूर्वभुगतान अवधि	क्रय
अ	25,000	3,000	3	5
इ	3,000	1,000	6	1
उ	12,000	2,000	5	4
ऊ	20,000	4,000	5	2
इ	40,000	8,000		2

$$\text{ब) औसत प्रत्याय विधि के अनुसार} = \frac{\text{औसत वार्षिक नगद प्रवा – औसत वार्षिक ह्रास}}{\text{औसत विनियोग}} \times 100$$

आधार	प्रोजेक्ट ए	प्रोजेक्ट बी	प्रोजेक्ट सी	प्रोजेक्ट डी	प्रोजेक्ट इ
प्रारंभिक निवेष (रू.)	25,000	3,000	12,000	20,000	40,000
औसत निवेष (रू.)	12,500	1,5000	6,000	10,000	20,000
आयु वर्षो में वार्षिक	10	5	8	10	12
नगद प्रवाह (रू.)	3,000	1,000	2,000	4,000	8,000
वार्षिक हषस (रू.)	2,500	600	1,500	2,000	3,333
कुलवार्षिक आय (रू.)	500	400	500	2,000	4,667
औसत प्रदाय पर	4%	26.67%	8.33%	20%	23.33%

- **औसत प्रत्याय विधि की विशेषताएँ**

1. यह अत्यधिक सरल विधि है।
2. इस विधि में परियोजना के संपूर्ण जीवन पर विचार किया जाता है।
3. इस विधि में लाभदायकता की जाँच के आधार पर परियोजना का चुनाव किया जाता है।
4. इसमें ह्यस की राशि घटाकर शुद्ध आय की गणना की जाती है, जो साद्धांतिक दृष्टि से उचित है।
5. इस विधि को अपनाकर पूँजी का सर्वोत्तम प्रयोग किया जा सकता है।

- **औसत प्रत्याय विधि की आलोचना –**

1. इस विधि में समयरूपी कारक पर विचार नहीं किया जाता है।
2. इस विधि द्वारा व्यावसायिक लाभों पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों की जाँच संभव हो पाती है।
3. इस विधि द्वारा विनियोग की उचित प्रत्याय दर का निर्धारण संभव नहीं हो पाता है।
4. इस विधि में प्रयुक्त आय एवं विनियोग की धारणा अस्पष्ट है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि

समय समायोजित प्रत्याय दर पर आधारित पूँजी व्ययों के विश्लेषण के लिए प्रयोग की जानेवाली विधियों में शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि अधिक महत्वपूर्ण है। इस विधि का प्रयोग उस समय सरलतापूर्वक किया जाता है जब प्रबंध द्वारा विनियोगों पर न्यूनतम स्वीकार्य प्रत्याय दर निर्धारित अपेक्षित प्रत्याय दर से बट्टा करके वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है। इस वर्तमान मूल्य की परियोजना लागत या विनियोग राशि से तुलना की जाती है। यदि परियोजना में विनियोग लागत से प्राप्त रोकड़ अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य अधिक होता है। प्राप्त रोकड़ अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य परियोजना लागत या विनियोग राशि से जितना अधिक होता है वह विनियोग उतना ही अच्छा माना जाता है। प्रबंध के सामने एक से अधिक परियोजनाओं में से किसी एक का चयन करने की स्थिति में उस परियोजना का चुनाव किया जाएगा, जिससे प्राप्त रोकड़ अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य परियोजना लागत की तुलना में सबसे अधिक है अर्थात जिसका शुद्ध वर्तमान मूल्य सबसे अधिक है उन दस परियोजनाओं का चुनाव किया जाएगा।

शुद्ध वर्तमान मूल्य = प्रोजेक्ट आयु वर्तमान नगद प्रवाह - प्रोजेक्ट कीमत

NP = PV - PC or I

जहाँ NP = शुद्ध वर्तमान मूल्य

PV = प्रोजेक्ट आफ का वर्तमान नगद प्रवाह

PC = प्रोजेक्ट कीमत

I = प्रारंभिक निवेश

आइए, इस सूत्र को एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करे –

अभय कंपनी लिमिटेड का प्रबंध एक परियोजना में 18,000 रूपये विनियोग करना चाहता है जिससे पाँच वर्षो तक आय प्राप्त होगी। परियोंजना से शुद्ध आय कर बाद परंतु ह्रास पूर्व प्रथम वर्ष में 4,000 रूपये द्वितीय वर्ष में 6,000 रूपयें तृतीय वर्ष में 8,000 रूपये, चतुर्थ वर्ष में, 4,000 रूपये तथा पाँचवें वर्ष में 2,000 रूपये प्राप्त होगी। आप प्रबंध को सलाह दीजिए कि क्या यह परियोजना लागू करने योग्य है, यदि प्रबंध वर्तमान मूल्य की गणना के लिए 10 प्रतिशत की दर से सुझाव देता है।

प्रोजेक्ट का प्रारंभिक निवेश 18,000 रू. है।

प्रोजेक्ट के शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना

वर्ष	नगद आंतरिक प्रवाह	वर्तमान मूल्य 10 प्रतिशत बट्टा दर के अनुसार	कुल वर्तमान मूल्य 10 प्रतिशत बट्टा दर के अनुसार
1	4,000	0,909	3,636
2	6,000	0,826	4,956
3	8,000	0,751	6,008
4	4,000	0,683	2,732
5	2,000	0,621	1,242
कुल			**18,574**

शुद्ध वर्तमान मूल्य = कुल वर्तमान मूल्य – प्रारंभिक निवेश

= 18,574 – 18,000 = रू. 574

प्रोजेक्ट वर्तमान मूल्य 574 रू. है। अत: प्रबंधन इसे स्वीकार कर लेगा।

- **शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की विशेषताएँ** – इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ है –

1. इस पद्धति में समय रूपी कारक को उचित महत्व दिया जाता है, इस कारण यह पद्धति दीर्घकालीन विनियोगों की लाभप्रदता के निश्चय के लिए सर्वश्रेष्ठ पद्धति मानी जाती है।
2. यह अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक वस्तुनिष्ठ है, क्योंकि इससे प्राप्त निष्कर्षो पर ह्रास पद्धतियों तथा पूँजीगत एवं आगम व्ययों में विभाजन से संबंधित प्रबंधकों के निर्णयों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
3. इसमें विनियोग के संपूर्ण जीवनकाल में प्राप्त होने वाली आय का ध्यान रखा जाता है।

4. इस पद्धति में जोखिम तथा अनिश्चितताओं पर ध्यान दिया जाता है। जोखिम तथा अनिश्चितताओं के विभिन्न कारकों को ध्यान में रखकर ही इस पद्धति में अर्जन की दर का निश्चय किया जाता है।

5. विनियोग की जीवन अवधि में असमान दर प्राप्त अर्जन की स्थिति में यह पद्धति अधिक उपर्युक्त होती है। असमायोजित औसत विनियोग पर प्रतिदान दर की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त होती है। असमायोजित औसत विनियोग पर प्रतिदान दर की अपेक्षा यह पद्धति अधिक शुद्ध निष्कर्ष प्रदान करती है।

6. इस पद्धति में अलग-अलग अवधि वाली तथा अलग-अलग वर्षो मं अलग-अलग आय प्रदान करने वाले विनियोगों की लाभदायकता की तुलना करना संभव है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की आलोचना – इस विधि की आलोचना निम्न बिंदुओं पर की जाती है –

1. यह पद्धति समझने में तथा प्रयोग करने में प्रेक्षाकृत कठिन है।

2. चूँकि विनियोग की जीवन अवधि का पूर्वानुमान पूर्ण शुद्धता से लगा लेना अत्यंत कठिन है, अत: यह पद्धति स्वत: ही कम महत्वपूर्ण हो जाती है।

3. यह पद्धति अनेक जटिलताओं तथा बारीकियों से भरी हुई, जिसमें स्वयं अनेक अनिश्चितताएं होती हैं, अत: अनिश्चिताओं के आधार पर लगाए गए अनुमान अनिश्चित होते हैं। उदाहरणार्थ रोकड़ अंतरप्रवाह का अनुमान लागत एवं विक्रय अनुमान पर आधारित होता है, जबकि लागत एवं विक्रय लागत एवं विक्रय अनुमान स्वत: ही अनिश्चिताओं से भरे हुए होते है।

4. इस विधि में रोकड़ अंतरप्रवाह की गणना के लिए एक निश्चित प्रतिदान दर को आधार माना जाता है। यह प्रतिदान दर क्यों हो ? अथवा कौन-सी दर उचित होगी ? यह निर्धारित करना अपने आप में एक समस्या है।

5. यह पद्धति अन्य पद्धतियों से अच्छी है, किंतु इससे व्यवसाय की पूँजी लागत पर प्रभाव नहीं पड़ता।

आंतरिक प्रत्याय दर विधि

प्रत्याय की आंतरिक दर वह दर होती है जिससे किसी परियोजना के वार्षिक रोकड़ अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य उस परियोजना के वर्तमान मूल्य के बराबर हो जाता है। इस विधि के प्रयोग में सर्वप्रथम परियोजना में विनियोग होने वाली राशि तथा उस परियोजना से प्राप्त होने वाले अंतरप्रवाहों का अनुमान लगाना होता है। तत्पश्चात् परियोजना से प्राप्त रोकड़ अंतरप्रवाहों का किसी दर से वर्तमान मूल्य परियोजना की विनियोजित राशि के बराबर किया जाता है। यदि वह दर इच्छित दर या बाधा दर या कट-ऑफ रेट से अधिक होती है, तो परियोजना को स्वीकृति कर लिया जाता है, अत्याथा अस्वीकार कर दिया जाता है।

यदि बहुत-सी परियोजनाओं का मूल्यांकन किया जाता है तो अधिकतक आंतरिक प्रत्याय दर वाली परियोजनाओं को प्रथम स्थान पर, उससे कम दर वाली को दूसरे स्थान पर। इसी क्रम में सबसे कम आंतरिक प्रत्याय दर वाली परियोजना को सबसे नीचे अंतिम स्थान पर रखा जाता है। परियोजना को ऊपर से नीचे की ओर उस समय तक स्वीकार किया जाएगा जब तक पूँजी का अवरोध नहीं है। आंतरिक प्रत्याय दर की गणना में निम्नलिखित दो विधियों का प्रयोग किया जाता है – 1. वार्षिक 2. भूल एवं सुधार विधि –

1. **वार्षिक विधि** – प्रत्याय की आंतरिक दर ज्ञात करने हेतु निम्नलिखित दो परिस्थितियाँ हो सकती है –

(1) प्रतिवर्ष रोकड़ अंतरप्रवाह की राशि समान होने पर

(2) प्रतिवर्ष रोकड़ अंतरप्रवाह की राशि असमान होने पर

(1) **प्रतिवर्ष रोकड़ अंतरप्रवाह की राशि समान होने पर** – ऐसी स्थिति में प्रारंभिक विनियोग की राशि में रोकड़ अंतरप्रवाह की राशि का भाग दे दिया जाता है तथा प्राप्त भागफल की राशि को वार्षिकी सारणी में दिए गए मूल्य के सामने देखा जाता है। यह भागफल राशि जिस दर के अंतर्गत आती है वही आंतरिक प्रत्याय की दर होती है।

प्रारंभिक विनियोग रोकड़ अंतरप्रवाह या अंतरप्रवाह का भागफल

$$= \frac{\text{प्रारंभिक विनियोग}}{\text{वार्षिक रोकड़ अंतर्प्रवाह}}$$

आइये इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें –

प्रारंभिक निवेश	रू. 10,000
वार्षिक नकद अंतक्रिया	
प्रथम वर्ष	रू. 2,636.83
द्वितीय वर्ष	रू. 2,636.83
तृतीय वर्ष	रू. 2,636.83
चतुर्थ वर्ष	रू. 2,636.83
पंचम वर्ष	रू. 2,636.83

उपरोक्त सूचना के अनुसार यहाँ रोकड़ अंतरप्रवाह प्रतिवर्ष समान है। अत: सर्वप्रथम प्रारंभिक विनियोग में वार्षिक रोकड़ अंतरप्रवाह का भाग देकर भागफल प्राप्त किया जाएगा। अत: अब वार्षिक सारणी में 5 वर्ष के सामने 3.791 को देखने पर यह 10% के नीचे ज्ञात होता है। अत: आंतरक प्रत्याय की दर 10% है।

(2) **रोकड़ अंतरप्रवाह की राशि प्रतिवर्ष असमान होने पर** – यदि वार्षिक रोकड़ अंतरप्रवाह की राशि प्रतिवर्ष असमान है, तो सर्वप्रथम सभी वर्षो की रोकड़ अंतरप्रवाहों का योग करके उसमें वर्षो की संख्या (प) का भाग देकर औसत

रोकड़ अंर्तवाहों की राशि ज्ञात की जाती है। तत्पश्चात् इस औसत रोकड़ के आधार पर

अनुमानित आंतरिक प्रत्याय की दर पूर्व वर्णित विधि [$= \dfrac{\text{प्रारंभिक विनियोग}}{\text{औसत वार्षिक रोकड़ अंतर्वाह}}$] से

ज्ञात कर लेते हैं तत्पश्चात् अनुमानित आंतरिक प्रत्याय दर के आस-पास की किन्हीं दो दरों से रोकड़ अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर वास्तविक दर की गणना हेतु निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

जहाँ

$$r = \frac{LDR + \text{Residue of } LDF}{\text{Residue of } LDR - \text{Residue of } HDR}(HDR - LDR)$$

आंतरिक प्रत्याय = 4

न्यूनतम बट्टा दर = LDR

अधिकतम बट्टा दर = HDR

प्रारंभिक निवेश	10,000 (रू.)
नगद आंतरिक प्रवाह	
प्रथम वर्ष	रू. 5,000
द्वितीय वर्ष	रू. 5,000
तृतीय वर्ष	रू. 2,000

Determine the internal rate of return using annuity method.

उपरोक्त सूचनाओं के अनुसार

$$\text{औसत नगद आंतरिक प्रवाह} = \frac{5,000 + 5,000 + 2,000}{3}$$

$$= \frac{12,000}{4,000} \text{ Rs. } 4,000$$

Divide the Initial Investment by annual Cash Inflow-

$$= \frac{10,000}{4,000} = 2.5$$

अब वार्षिक सारणी में तीन वर्ष के सामने 2.5 को देखेंगे जो करीब 10% के नीचे आता है। अत: हम वास्तविक प्रत्याय दर की गणना हेतु 10% एव 12% से रोकड़ अंतरप्रवाहों को बट्टा करेंगे, जो निम्नानुसार होगा –

10% आंतरिक प्रवाह दर

वर्ष	रू.	
1	5,000 x 909 =	रू. 4,545
2	5,00 x 826 =	रू. 4,130
3	2,000 x 751 =	रू. 1,502
		रू. 10,177

12% प्रत्याय दर

वर्ष	रू.	
1	5,000 x 893 =	रू. 4,465
2	5,00 x 797 =	रू. 3,985
3	2,000 x 712 =	रू. 1,424
		रू. 9,874

अब निम्नलिखित सूत्र की सहायता से वास्तविक प्रत्याय दर की गणना करेंगे –

$$r = LDR \frac{\text{Residue of LDR}}{\text{Residue of LDR} - \text{Residue of HDR}} (HDR - LDR)$$

$$= 10 + \frac{177}{177-(-126)} (12 - 10)$$

$$= 10 + \frac{177}{303} \times 2$$

$$= 10 + 1.17$$

$$= 11.17$$

अत: वास्तविक प्रत्याय दर 11.17% है।

2. **भूल एवं सुधार विधि** – इस विधि में आंतरिक प्रत्याय की दर ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम वार्षिक विधि के आधार पर ज्ञात अनुमानित दर को लिया जाता है तथा उस दर के आधार पर परियोजना से प्राप्त रोकड़ अंतरप्रवाहों का बट्टा करके उनका वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है और फिर उसकी प्रारंभिक विनियोग से तुलना की जाती है। यदि वर्तमान मूल्य एवं प्रारंभिक विनियोग बराबर हो जाए तो यही दर आंतरिक प्रत्याय की दर होगी। यदि परियोजना का ज्ञात किया गया रोकड़ अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य प्रारंभिक विनियोजित राशि से अधिक है तो अपेक्षाकृत ऊँची दर का प्रयोग करना चाहिए। जब तक परियोजना के अंतरप्रवाहों का वर्तमान मूल्य परियोजना की प्रारंभिक विनियोजित राशि के बराबर नहीं हो जाए तब तक 'भूल एवं सुधार' विधि का प्रयोग करना चाहिए। जहाँ ये दोनों बराबर होंगे वही आंतरिक प्रत्याय दर ज्ञात होगी।

- **भूल एवं सुधार विधि की विशेषताएँ -** इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ –

1. इस पद्धति में समय रूपीकरण को उचित महत्व दिया जाता है, इस कारण यह पद्धति दीर्घकालीन विनियोगों की लाभप्रदत्ता के निश्चयन के लिये सर्वश्रेष्ठ पद्धति मानी जाती है।
2. यह अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक वस्तुनिष्ठ है, क्योंकि इससे प्राप्त निष्कष पर ह्रास पद्धतियों तथा पूँजीगत एवं आगम व्ययों में विभाजन से संबंधित प्रबंधकों के निर्णयों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
3. इसमें विनियोग के संपूर्ण जीवनकाल में प्राप्त होने वाली आय का ध्यान रखा जाता है।
4. इस पद्धतियों जोखिम तथा अनिश्चितताओं पर ध्यान दिया जाता है। जोखिम तथा अनिश्चितताओं के विभिन्न कारकों को ध्यान में रखकर ही इस पद्धतिमें अर्जन की दर का निश्चय किया जाता है।

5. विनियोग की जीवन अवधि में असमान दर प्राप्त अर्जन की स्थिति में यह पद्धतिअधिक उपयुक्त होती है। असमायोजित औसत विनियोग पर प्रतिदान दर की अपेक्षा यह पद्धतिअधिक शुद्ध निष्कार्ष प्रदान करती है।

- भूल एवं सुधार विधि की आलोचना - इस विधि की आलोचना निम्नलिखित बिंदुओं पर की जा सकती है।

1. यह पद्धति समझने में तथा प्रयोग करने में अपेक्षाकृत कठिन है।
2. चूँकि विनियोग की जीवन अवधि का पूर्वानूमान पूर्ण शुद्धता से लगा लेना अत्यंत कठिन है। अत: यह पद्धति स्वत: ही कम महत्वपूर्ण हो जाती है।
3. यह पद्धति अनेक जटिलताओं तथा बारीकियों से भरी हुई है, जिसमें स्वयं अनेक अनिश्चितताएं होती हैं, अत: अनिश्चितताओं के आधार पर लगाए गए अनुमान अनिश्चित होते हैं। उदाहरणार्थ रोकड़ अंतरप्रवाह का अनुमान लागत एवं विक्रय अनुमान पर आधारित होता है, जबकि लागत एवं विक्रय अनुमना स्वत: ही अनिश्चितताओं से भरे हुए होते है।
4. इस विधि में रोकड़ अंतरप्रवाह की गणना के लिये एक निश्चित प्रतिदान दर को आधार माना जाता है। यह प्रतिदान दर क्या हो अतवा कौन-सी उचित होगी? यह निर्धारित करना अपने आप में एक समस्या है।
5. यह पद्धति लेखांकन की अवधारणाओं के अनुरूप एवं आगम का अभिलेखन नहीं करती।
6. यह पद्धति अन्य पद्धतियों से अच्छी, किंतु इससे व्यवसाय की पूँजी लागत पर प्रभाव नहीं पड़ता।

दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन वित्त के स्रोत

एक व्यावसायिक उपक्रम में विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं को समय के आधार पर तीन वर्गो में बाँटा जाता है। दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ, मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ तथा अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ। समय अवधि के आधार पर वित्तीय आवश्यकताएँ का यह वर्गीकरण जितना सरल दिखायी देता है व्यवहार में उतना ही जटिल है। सभी व्यवसायों के लिए स्पष्ट रूप से यह कहना बड़ा कठिन है कि कौन सी वित्तीय आवश्यकताएँ अल्पकालीन है तथा कौन सी आवश्यकताएँ दीर्घकालीन। अल्पकालीन,

मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के मध्य विभाजन रेखाएँ खीचना बड़ा कठिन है परंतु इसके बावजूद भी अधिकांश प्रबंधक वित्तीय आवश्यकताओं के बारे में कुछ मात्रा में सहमत हैं। सामान्यत: एक व्यवसाय के लिए एक वर्ष अथवा उससे कम अवधि वाली वित्तीय आवश्यकताओं को अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ कहा जाता हैं। एक वर्ष से अधिक परंतु पाँच वर्ष से कम अवधि तक की आवश्यकताओं को मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ कहते हैं तथा पाँच वर्ष से अधिक अवधि के लिए आवश्यक वित्तीय आवश्यकताओं को दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ कहते हैं। इन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के उपकरण उपलब्ध होते हैं। जिन्हें निम्नलिखित चित्र के माध्यम से वर्गीकरण किया जा सकता है -

वित्त के स्त्रों का वर्गीकरण

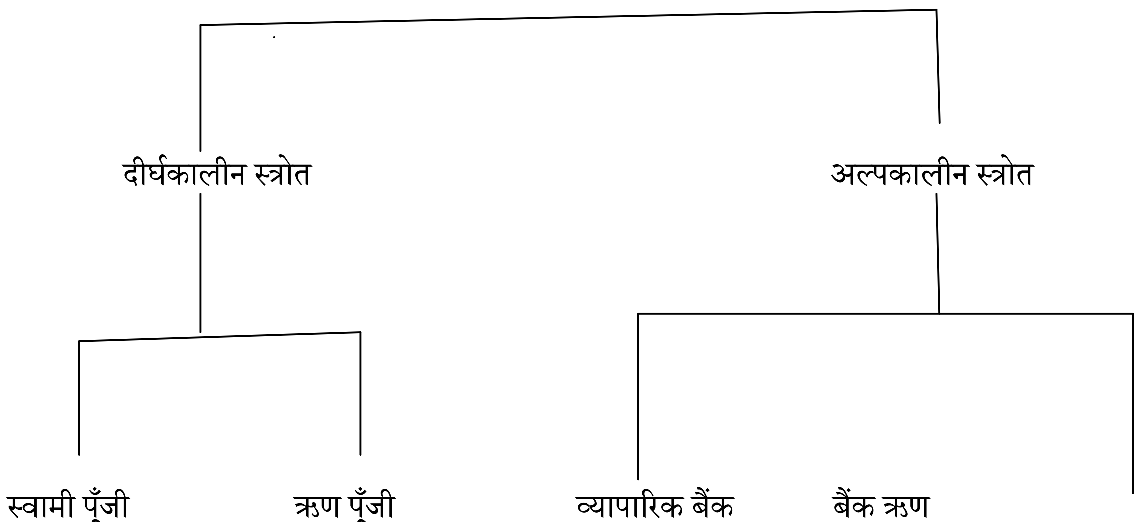

अन्य साधन

1. देय विपत्र 1. सुरक्षित 1. जन निक्षेप

2. प्रपत्र 2. असुरक्षित 2.

आइए, उपरोक्त वर्गीकरण को क्रमश: दीर्घकालीन वित्तीय स्त्रोत तथा आपातकालीन वित्तीय स्त्रोत के संबंध में विश्लेषित करनें का प्रयास करेंगे।

- **दीर्घकालीन वित्त के स्रोत** – दीर्घकालीन वित्त के स्त्रोतों को दो वर्गो में बाँटा जा सकता है। प्रथम स्वामीगत साधन तथा, द्वितीय ऋणगत साधन। स्वामीगत साधन व साधन होते हैं जो व्यवसाय के स्वामियों द्वारा उपलब्ध करवाये जाते है। स्वामीगत साधनों में समता अंश, पूर्वाधिकारी अंश तथा प्रतिधारित अर्जनें शामिल होती है। इस प्रकार ऋणगत साधन वे साधन होते हैं, जिनके अंतर्गत एक व्यवसाय ऋण के रूप में दीर्घकालीन साधन ऋणदाताओं से प्राप्त करता है। ये साधन ऋण पत्र बाँड अथवा दीर्घकालीन ऋण के रूप में होते है।
- **अंश** : संयुक्त स्कंध कंपनियों की स्वामित्व पूँजी अंशों में विभक्त होते हैं। कंपनी अपनी स्वामित्व पूँजी अंशों के निर्गमन द्वारा प्राप्त करनती है। पूँजी का वह आनुपातिक भाग जिसका प्रत्येक सदस्य अधिकारी होता है, अंश कहलाती है। विभिन्न पूर्णदत्त अंशों की एकत्रित रकम को स्कंध की संज्ञा दी जाती है। स्कंध को राशि को छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है। इस रूप में हम यह कह सकते हैं कि अंश स्वामित्व की एक इकाई है, जिसका धारक कंपनी का आंशिक स्वामी होता है। स्वामित्व का प्रतिनिधित्व अंश- प्रमाण-पत्र द्वारा होता है। अंश के आबंटन के पश्चात् प्रत्येक अंशधारी को, जिसे अंश आंबटित किए गए है अंश की संख्या उनके क्रमांश तथा उनका अंकित मूल्य लिखा रहता है। अंशों के निर्गमन से प्राप्त अंश पूँजी की कुछ विशेषताएँ होती है जिनकी वित्तीय प्रबंधकों को जानकारी होनी चाहिए। अंश पूँजी कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार है:

1. स्थायी पूँजी की प्राप्ति नहीं होती
2. लाभांश देने की अनिवार्यता नहीं होती है,
3. संपत्ति को बंधक रखने की आवश्यकता नहीं होती,
4. कंपनी के जीवन काल में धन वापसी नहीं करनी होती,
5. कंपनी के समापन पर समस्त देनदारियों के भुगतान के बाद धन की वापसी का प्रवधान होता है,
6. अंशधारियों को अपने अंश बेचने का अधिकार होती है,
7. आय में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार समाहित होती है,

8. कंपनी के प्रबंध का अधिकार प्राप्त होती है,
9. प्रत्येक अंशधारी का दायित्व अपने द्वारा क्रय किए गए अंशों अंकित मूल्य तक सीमित रहता है तथा
10. कंपनियों द्वारा विभिन्न प्रकार के विनियोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए विभिन्न प्रकार के अंश निर्गमित किए जाते है।

- ऋण पूँजी : व्यावसायिक उपक्रमों के विस्तार के साथ-साथ उनकी वित्तीय आवश्यकताएँ बढ़ती जाती है, जिनकी पूर्ति स्वामित्व पूँजी के अतिरिक्त ऋण पूँजी द्वारा भी की जाती है। यह पूँजी ऋणदाताओं द्वारा प्रदत्त होने के कारण ऋण पूँजी कहलाती है। ऋण पूँजी से साधन कंपनी की अल्पकालीन, तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राप्त किए जा सकते है। अल्पकालीन ऋण कार्यशील पूँजी के उस भाग की पूर्ति करते है, जिसकी प्रकृति मौसमी होती है।

  अल्पकालीन ऋण व्यापारिक बैंकों, साहूकारों आदि से प्राप्त किए जाते है। दीर्घकालीन ऋण लंबी अवधि के लिए प्राप्त किए जाते हैं तथा इनसे स्थायी पूँजी एवं कार्यशील पूँजी के स्थायी भाग की वित्तीय व्यवस्था की जाती है। ये ऋण प्राय: ऋणपत्र अथवा बंधक निर्गमित करके प्राप्त किए जाते है। इसलिए उन्हें निधित ऋण कहते है।

  ऋण पूँजी चाहे अल्पकालीन साधनों से प्राप्त की जाए अथवा दीर्घकालीन साधनों से प्राप्त की जाए उसकी एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि उस पर निश्चित दर से ब्याज चुकाने तथा ऋण के परिपक्क होने पर उसके शोधन का दायित्व उत्पन्न होता है। आज किसी संस्था के लिए ऋण लेना उसकी कमजोर वित्तीय स्थिति का परिचालक नहीं माना जाता है बल्कि ऋण लेकर व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित करना वित्तीय प्रबंधक कीकुशलता का प्रतीक माना जाता है।

  एक कंपनी की वित्तीय व्यवस्था में ऋण लेने का प्रमुख उद्देश्य अपने प्रबंध में बाहय लोगों को अधिकार दिए बगैर अधिक पूँजी प्राप्त करना होता है जिससे कंपनी के सदस्यों की आय में वृद्धि की जा सकें। कंपनी की ऋण लेने की क्षमता उसकी स्वयं की आर्थिक स्थित, ऋणदाताओं में उसके प्रति विश्वास, पूँजी बाजार की दशा आदि तत्वों पर निर्भर करती है। आज सभी व्यावसायिक कंपनियाँ अपनी पूँजी का एक भाग स्वामीगत प्रतिभूतियों से प्राप्त करके शेष भाग ऋण पूँजी से प्राप्त करती है।

- अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ –

  अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं में उपक्रम की ऐसी वित्तीय आवश्यकताओं को सम्मिलित किया जाता है जिनकी अवधि एक वर्ष या इससे कम होती है। कुछ वित्तीय प्रबंधक 15 माह तक

की अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं को भी अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ मानते हैं। अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ कुछ दिनों, कुछ सप्ताहों अथवा कुछ महीनों तक की होती है। अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता कार्यशील पूँजी की वित्तीय व्यवस्था करने हेतु होती है - जैसे कच्चे माल का क्रय, वेतन, मजदूरी, किराया, कर आदि खर्चो का भुगतान, निर्मित माल की उधार विक्री के समय उसका वित्त पोषण करना आदि। अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति, व्यापारिक साख, व्यापारिक बैंकों से अल्पकालीन ऋण, बिलों एवं हुंडियों का बट्टा करा कर वित्त प्राप्त करना, ग्राहकों एवं अभिकर्ताओं से प्राप्त अग्रिम धन राशि, कर्मचारियों एवं जनता से निक्षेप स्वीकारना, करों के लिए किए गए प्रावधान आदि से की जाती है।

अल्पकालीन वित्तीय साधनों का दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए। अल्पकालीन साधनों को शीघ्र ही वापस लौटना होता है। दीर्घकालीन प्रयोग में लगाए गए साधनों में तरलता नहीं होती है। अत: अल्पकालीन साधनों का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे तरलता बनी रहे। आइए अल्पकालीन वित्त के विभिन्न साधनों को क्रमवार विश्लेषित करने का प्रयास करें –

(क) जननिक्षेप - पिछले कुछ वर्षो से कंपनी – क्षेत्र के अल्पकालीन कोषों के साधन के रूप में जन-निक्षेपों का महत्व बढ़ गया है। निजी-क्षेत्र की कंपनियाँ ही नहीं, अपितु सार्वजनिक-क्षेत्र की कंपनियाँ भी अब जनता से प्रापत जमा राशियों के आधार पर पर्याप्त कोषों की व्यवस्था करती है। कंपनियों में जमा राशियाँ दो प्रकार की होती हैं, प्रथम, विमुक्त–निक्षेप, जैसे निक्षेप जो भारत सरकार अथवा रिर्जव बैंक द्वारा जन-निक्षेपों के लिए बनाए गए नियों द्वारा निर्देशित नहीं होते हैं। द्वारा नियम बद्ध निक्षेप जिसके लिए कंपनी अधिनियम की धारा 58-A की व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं, जिसे भारत के रिजर्व बैक द्वारा सन् 1975 में कंपनियों में जन-निक्षेपों के लिए निर्मित किया गया था।

गैर-बैंकिंग, गैर-वित्तीय कंपनियों के जन – निक्षेपों पर कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 58-A की वयवस्थाएँ लागू होती है। गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के जन-निक्षेपों पर कंपनियों द्वारा प्राप्त जन-निक्षेपों के लिए भारत के रिजर्व बैंक द्वारा निर्मित नियम लागू होते है। पब्लिक लिमिटेड कंपनियों एवं सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों में नियमबद्ध जन-निक्षेपों के लिए उपर्युकत व्यवस्थाओं के अंतर्गत समय-समय पर शर्तो एवं नियमों में परिवर्तन किया जाता रहा है।

(ख) बैंक-साधन – निगमों के लिए अल्पकालीन कोषों का यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। इनके द्वारा केवल ऋण सुविधा ही नहीं होती है, अपितु इस साधन का उपयोग धीरे-धीरे बैं-ग्राहकों की एक श्रृखंला का निर्माण करता है, जो ग्राहक के लिए बैंकों से प्राप्त होने वाली अनेक प्रकार की सेवाओं को भी सुलभ बनाता है। इन सेवाओं में अनेक प्रकार की सेवाएँ होती है, जैसे – एजेंसी-कार्य,

परामर्श-सेवाएँ, ग्राहकों के लिए संदर्भ- पत्र विनियोग सेवाएँ, आदि बैंकों द्वारा पारस्परिक खुला एवं निष्कपट व्यवहार, विश्वसनीयता तथा बैंक-ग्राहक संबंधों को मुधर बनाने में सहायक होते हैं तथा प्रबंध कुशलता, ख्याति या साख की पृष्ठिभूमि में बैंक ऐसे ग्राहकों की अनेक प्रकार से सहायता प्रदान करने के लिए तत्पर रहते हैं। इतना अवश्य है कि बैंक ऐसे ग्राहकों से आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं के विवरण की माँग करते है। इन ग्राहकों को कठिनाई और संकट के समय ऋण की किसतों के भुगतान की अवधि में फेर-बदल के लिए भी बैंक सहमत हो जाता है।

(ग) **असुरिक्षत ऋण** – यह बैंक एवं ग्राहक के बीच में एक अनौपचारिक समझौते के रूप में होता है। जो प्राय: एक वर्ष की अवधि के लिए किया जाता है। इसके अधीन बैंक ग्राहकों के लिए अधिकतम ऋण-सीमा निर्धारित कर देता है। ग्राहक को मौसमी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस सीमा तक एवं जैसी जरूरत होती है। ऋण लेने की सुविधा होती हैं। ग्राहक को उसके द्वारा लिए गये ऋण के एक भाग को अपने बैक खाते में न्यूनतम शेष के रूप में रखना होता है। यह शेष 10 से 20 प्रतिशत तक हो सकता है। यह सरल एवं सुविधाजनक व्यवस्था है, किंतु इसके द्वारा कोई कानूनी बाध्यता उत्पन्न नहीं होती है।

(घ) **आवर्ती साख अनुबंध** – यह एक औपचारिक अनुबंध होता है जो न्यायिक बाध्यता उत्पन्न करता है। यह अनुबंध प्राय: एक वर्ष से अधिक के लिए किया जाता है, यद्धपि ऋण अल्पकाल के लिए ही दिए जाते हैं। इसके अंतर्गत दोनों पक्षों के बीच एक अधिकतम सीमा तय हो जाती है। इस सीमा के अंदर ग्राहक आवश्यकतानुसार धनराशि बैंक से ऋण के रूप में ले सकता है। जब भी ग्राहक की माँग आती हैं, तो बैंक इस सीमा तक उस ग्राहक को ऋण देने के लिए वचनबद्ध होता है। ऐसा वचन देने के लिए बैंक, ग्राहक से अनुबंध-शुल्क वसूल करता है जो अप्रयुक्त राशि पर चौथाई से आधे प्रतिशत तक हो सकता है। प्रयुक्त–राशि पर प्रचलित दर से ब्याज देना होता है। यह एक औपचारिक समझौता होता है और यह दोनों पक्षों के लिए कानूनी बाध्यता उत्पन्न करता है।

(च) **अधिविकर्षक** – यह व्यवस्था खड़ी साख से बहुत कुछ मिलती है। अंतर यह है कि अधिविकर्ष की सीमाएँ अपेक्षाकृत कम राशि की होती हैं और इसका संबंध चेकों की स्वीकृति से होता है। इसके अधीन बैंक इस बात की सहमति देता है कि अधिविकर्ष हेतु तय की गयी सीमा के अंदर बैंक द्वारा ग्राहक के चेकों का भुगतान उसके खाते में शेष शून्य होने पर भी किया जाता रहेगा। ग्राहक उस संभावित स्थिति से बचा जाता है जिसका सामना उसे चेक अस्वीकृत होने पर करना होता है। साथ ही कुछ समय के लिए साख की सुविधा भी प्राप्त हो जाती है और संबंध कोषों का उपयोग वह अन्यत्र कर सकता है।

(छ) **सुरक्षित ऋण** – जहाँ जोखिम अधिक होता है वहाँ बैंक ऋणों के लिए सुरक्षा या जमानत दिए जाने पर देता है। जिन ग्राहकों का भुगतान संबंधी पिछला रेकॉर्ड ठीक होता है, उन्हें भी बैंक भविष्य में साख सुरक्षित ऋणों के रूप में ही दिए जाने पर बल देते है। सुरक्षित ऋणों के लिए अनेक औपचारिकताएँ संपन्न करनी होती है, जो इस प्रकार की साख को अधिक महँगा बना देती है। जमानत: प्राय: प्राप्तियों एवं स्कंध को बंधक रखकर दी जाती है।

इस प्रकार प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम को कम अथवा अधिक मात्रा में अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है। अत: उपक्रम के प्रबंधकों को वित्तीय साधनों के संबंध में एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। वित्तीय प्रबंधक अपनी इन सभी वित्तीय आवश्यकताओं को चाहे तो केवल स्वामी पूँजी से पूरा कर सकते हैं। परंतु ऐसा करना स्वयं स्वामियों की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि 'ट्रेडिंग ऑन इक्किटी' का लाभ संस्था को नहीं मिलेगा। इसी तरह एक संस्था अत्यधिक ऋण पूँजी पर निर्भर रह सकती है परंतु इससे संस्था पर ब्याज का भार बढ़ जाता है तथा अनेक बार संस्था का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है।

इसी प्रकार कुछ संस्थाएँ अपनी समस्त प्रकार की वित्तीय आवश्यकताओं के लिए अल्पकालीन साधनों पर निर्भर रहती है जो एक अच्छी नीति नहीं होती है। क्योंकि ऐसी स्थिति में संस्था के पास तरलता के अभाव की समस्या सदैव बनी रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि संस्था विभिन्न अवधियों वाले वित्तीय साधनों तथा उनके उपयोगों के बीच समुचित तालमेल बैठाए तथा अल्पकालीन, माध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय साधनों में 'अनुकूलतम- मिश्रण' निर्धारित करे। अनुकूलतम मिश्रण को प्राप्त करने के लिए वित्तीय प्रबंधकों को निरंतर वित्तीय नियोजन की आवश्यकता होती है। सतत् नियोजन द्वारा ही अनुकूलतम वित्तीय ढाँचे का चुनाव किया जा सकता है तथा पूँजी की लागत को न्यूनतम किया जा सकता है। वित्तीय साधनों का विश्लेषण 'जोखिम, आय तथा नियंत्रण के आधार पर किया जाना चाहिए।

अल्पकालीन वित्तीय विनियोग

अब तक के अध्ययन से यह निश्चित हो चुका है कि वित्तीय विनियोग का आधार कहीं न कहीं समय होता है। अत: समय अवधि के अनुसार वित्तीय विनियोग तीन प्रकार का होता है, यथा-दीर्घकालीन वित्तीय विनियोग, मध्यकालन वित्तीय विनियोग तथा अल्पकालीन वित्तीय विनियोग। इस क्रम में आइए, अल्पकालीन वित्तीय विनियोग को समझने का प्रयास करेंगे।

सामान्यत: एक व्यावसायिक संगठन में एक वर्ष तथा उससे कम अवधि के लिए जो वित्तीय विनियोग किए जाते है, अल्पकालीन वित्तीय विनियोग कहलाते हैं। ऐसे विनियोग मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय विनियोग का ही भाग होते है। अल्पकालीन वित्तीय विनियोग प्राय: कार्यशील पूँजी,

स्कन्ध तथा सामग्री प्रबंध के संबंध में किये जाते हैं तथा किस प्रकार विभिन्न अल्पकालीन साधनों से वित्तीय व्यवस्था करने का कार्य किया जाए इस पर भी विचार किया जाता है। तथा हानि विवरण, कोषों की प्राप्ति एवं उपयोग का विवरण आदि को भी ध्यान में रखा जाता है। कभी-कभी व्यावसायिक इकाईयाँ अल्पकालीन वित्तीय विनियोगों के अंतर्गत संपत्तियों के प्रतिस्थापन, रख-रखाव, तथा बढ़ी हुई कार्यशील पुँजी, के प्रबंध जैसे क्षेत्रों को भी सम्मिलित करते हैं।

इस प्रकार व्यवसाय की प्रारंभिक सफलता काफी हद तक कुशल एवं सुव्यवस्थित अल्पकालीन वित्तीय विनियोजनों पर निर्भर करती है। इन्हीं अल्पकालीन निर्णयों के ऊपर ही संस्था के दीर्घकालीन निर्णयों की संरचना तैयार की जाती है, जो संस्था को लंबे समय तक लाभों से जोड़े रखती है। अत: व्यवसाय प्रवर्तन के पूर्व ही व्यवसाय के प्रारंभिक आकार तथा समाविष्ट विस्तार के मद्देनजर बाजार की लोचनशीलता को देखते हुए, अल्पकालीन विनियोजन की मदों की पहचान कर लेनी चाहिए। जिससे व्यवसाय को सफलता के साथ प्रवर्तित किया जा सके। हम जानते है। कि व्यवसाय में प्रत्येक छोटे बड़े कार्य के लिये पूँजी की आवश्यकता होती है। व्यवसाय की स्थापना, संपत्तियों व सामग्री के क्रय तथा अंतिम उत्पाद निर्माण आदि कार्यो से संबंधित निवेशों को प्राय: अल्पकालीन विनियोगों के अंतर्गत ही अध्ययन किया जाता है। अत: इन सभी आवश्यक लघुकालीन कार्यो के लिये उपयुक्त समय पर पर्याप्त वित्त का निवेश कुशल प्रबंधन के निर्णयों पर ही निर्भर करता है ।

2.7 सारांश

पूँजी ढांचा वित्तीय प्रबंधन की प्रथम सोपान है, जिसके अंतर्गत पूँजी संबंधी विभिन्न निर्णयों की संरचना का निर्माण किया जाता है । अतः पूँजीकरण / पूँजी ढांचा / पूँजी संरचना का तात्पर्य पूँजी की मात्र को निर्धारित करने एवं इसके स्वरूप को एक संरचना के तौर पर प्रस्तुत करने से है । इस प्रकार इसका सीधा सा तात्पर्य है कि कैसे पूँजीकरण में विभिन्न प्रतिभूतियों के पारस्परिक अनुपात को निर्धारित किया जाए । पूँजी संरचना को निर्धारित करने वाले तत्वों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, आंतरिक तत्व और बाह्य तत्व ।

विनियोग निर्णयों से आशय उन निर्णयों से है जो एक वित्त प्रबंधक को व्यवसाय के लिए आवश्यक संपत्तियों के चुनाव के संबंध में लेने होते है। किसी व्यापार को स्थापित करने के पूर्व तथा वर्तमान व्यापार के विस्तार के पूर्व उन सभी विकल्पों पर विचार किया जाता है जो पैसा लगाने के लिए उपलब्ध होते हैं। पूँजी ढाँचा वित्तीय प्रबंध की प्रथम सोपान है जिसके अंतर्गत पूँजी संबंधी विभिन्न निर्णयों की संरचना का निर्माण किया जाता है। अत: पूँजीकरण/पूँजी ढाँचा/पूँजी संरचना का तात्पर्य पूँजी की मात्रा को निर्धारित करने एवं इसके स्वरूप को एक संरचना के तौर पर प्रस्तुत करने से है।

पूँजी बजटन से आशय उपलब्ध पूँजी के विनियोग के लिए किए क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक रूपरेखा तैयार करने से लगाया जाताहै। पूँजीगत बजटन के अंतर्गत दीर्घकालीन लाभ प्रदान करने वाले व्ययों को नियोजित एवं नियंत्रित किया जाता है तथा उपलब्ध साधनों के प्रयोग के लिए सर्वोत्तम योजना बनाई जाती है, पूँजीगत व्ययों को करने का अर्थ- प्रबंधन का दीर्घकाली नियोजन है।

पूँजी की लागत वह न्यूनतम दर है, जिसे प्रत्येक फर्म को अपने प्रत्येक निवेश पर अर्जित करना होता है। ताकि फर्म के बाजार मूल्य को गिरने से रोका जा सके। भारित औसत पूँजी लागत विशिष्ट पूँजी लागत का भारित माध्यम होती है। विशिष्ट पूँजी लागतों का भारित माध्यम के उद्देश्य से फर्म में प्रयोग की जा रही विभिन्न प्रकार की पूँजी के अनुपातों का प्रयोग भार के रूप में किया जाता है।

प्रत्येक कंपनी द्वारा सृदृढ़ एवं सुतुलित पूँजी संरचना का निर्माण करने के लिए पूँजीगरण की उचित मात्रा का निर्धारण किया जाता है। आदश्र अथवा अनुकूलतम पूँजी कलेवर की प्रमुख विशेषता विभिन्न प्रकार की पूँजी का एक आदर्श मिश्रण है जो न केवल कंपनी का उचित पूँजीकरण करता हो वरन् पूँजी लागत को भी न्यूनतम स्तर पर रखता हो।

पूँजी व्यय प्रस्तावों का मूल्यांकन करने के लिए अनेक विधियाँ प्रचलित है जिनमें से प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं- पुनर्भुगतान विधि, औसत प्रत्याय विधि, शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि, तथा आंतरिक प्रत्याय दर विधि।

दीर्घकालीन वित्त के स्रोतों को दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम स्वामीगत साधन तथा द्वितीय ऋणगत साधन। अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति, व्यापारिक साख, व्यापारिक बैंकों से अल्पकालीन ऋण, बिलों एवं हुण्डियों का बट्टा करा कर वित्त करना, ग्राहाकों एवं अभिकर्ताओं से प्राप्त अिग्रम धन राशि, कर्मचारियों एवं जनता से निक्षेप स्वीकारना, करों के लिए किये गये प्रावधान आदि से की जाती है ।

2.8 बोध प्रश्न

1. पूँजी ढांचा के नियोजन तथा उपागम को समझाइए ।
2. पूँजी संरचना को निर्धारित करने वाले तत्वों का उल्लेख कीजिए ।
3. पूँजी संरचना के नियोजन को समझाइए ।
4. व्यावसायिक जीवन में पूँजी संरचना को कितने प्रतिरूपों में देखा जा सकता है?

5. विनियोग एवं पूँजी ढांचा निर्णय से आप क्या समझते हैं?
6. विनियोग निर्णय के सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
7. विनियोग को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाइए।
8. विनियोग हेतु निर्णयन का क्या महत्व है?
9. पूँजी बजटन क्या है? पूँजी बजटन के प्रमुख उद्देश्यों को समझाइए।
10. पूँजी बजटन की प्रक्रियाओं को समझाइए।
11. पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की लागत को समझाइए। पूँजी की लागत के कितने प्रकार होते हैं?
12. पूर्वाधिकार अंश की पूँजी की लागत का निर्धारण कैसे होता है?
13. अनुकूलतम पूँजी संरचना की प्रमुख दो बातें कौन सी हैं? अनुकूलतम पूँजी संरचना के आवश्यक गुणों का उल्लेख कीजिए।
14. पूँजी व्यय प्रस्तावों के मूल्यांकन की विधियों को समझाइए।
15. औसत प्रत्याय की गणना कैसे की जाती है?
16. किसी परियोजना के शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना कैसे करते हैं? शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।

2.9 संदर्भ ग्रंथ

- गोयल, डी. के. एवं गोयल, एस. (2017) वित्तीय प्रबंधन, पांचवां संस्करण, अविचल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली
- Prasanna Chandra (2011) Financial Management, Eighth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Parrino & Kidwell (2011) Fundamentals of corporate finance, First Edition, Wiley India Pvt. Ltd., New Delhi.
- Khan and Jain (2011) Financial Management (Text Problems and Cases), Fifth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई – III: कार्यशील पूँजी का प्रबंधन

इकाई की संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 कार्यशील पूँजी की अवधारणा

3.4 नकद या रोकड़ प्रबंधन

3.5 रोकड़ बजट

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्न

3.8 संदर्भ ग्रंथ

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने क उपरांत आपको अवगत हो जायेगा कि

- कार्यशील पूंजी की अवधारणा एवं उसके प्रकार को समजेंगे
- कार्यशील पूंजी परिचालन चक्र एवं कार्यशील पूंजी अनुपात से संबंधित विभिन्न पहुलओ का विश्लेषण कर सकेंगे
- कार्यशील पूंजी का अनुमान निर्धारित करने वाले तत्वो को समजेंगे
- संतुलित कार्यशील पूंजी अनुपात को जानेगे
- अनुकूलतम रोकड़ का निर्धारण से संबंधित विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- रोकड़ धारण करने के उद्देश्य एवं रोकड़ अधिक्य होने के कारण को समजेंगे।
- रोकड़ अधिक्य होने के कारण एवं रोकड़ प्रवाह की समस्याओं के कारण को जानेंगे।
- तरलता में सुधार के उपाय रोकड़ शेष को निर्धारण करने वाल्व तत्व को समजेंगे।
- रोकड़ प्रवाह प्रबंध तथा तरन के प्रकार एवं स्रोत को जानेंगे।

- रोकड़ प्रबंध मॉडल तथा अतिरिक्त रोकड़ का विपणन एवं योग्य प्रतिभूतियो में विनियोजन से संबंधित विभिन्न पहलुओ का वि’’लेषण कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

किसी भी उद्योग के व्यवसाय के संचालन के लिए स्थिर रूप में निवेश की तरह कार्यशील पूंजी भी बेहद आवशयक होता है। कंपनी के दैनिक कामकाज की लागत में भाग लेने के लिए कार्यशील पूंजी का इस्तेमाल किया जाता है। कार्यशील पूंजी शुरुआत में रोक के रूप में होता है. उसके बाद इस पूंजी का रूपांतर अस्थिर या तरल संपदा में किया जाएगा। कंपनी के व्यवसायों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिक्री किया जाने के बाद कार्यशील पूंजी का रोकड में स्वरूप में प्राप्त होता है। यह रोकड पुन: उत्पादन कार्य में निवेश किया जाता है। इस तरह से रोकड राशी से कार्यशील एवं कार्यशील पूंजी से रोकड राशी ऐसा चक्रकार निरंतर चालू रहता है। इस चक्रकार गती से चलने वाले कारोबार की प्रगति और विकास दर चक्रकार गती पर निर्भर करता है। इसलिए हर प्रबंधक को कार्यशील की पूंजी के लिए उचित गति से प्रबंधन करना बेहद जरूरी है।

नकदी एवं नकदी–तुल्य सम्पत्तियों का प्रबंध चल–सम्पत्तियों के प्रबन्ध का केन्द्र–बिन्दु है। नकद–तुल्य सम्पत्तियों (cash equivalent) में शीघ्र विपणन–योग्य प्रतिभूतियाँ, बैंक में जमा धनराशि आदि भी आती है। ये दोनों भी हस्तस्थ रोकड़ (Cash in hand) के बराबर ही तरल होती है। व्यवसाय के सफल संचालन में तरल सम्पत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नकद कोषों का व्यापार में उतना ही महत्व है जितना कि मानव शरीर में रक्त का। जिस प्रकार रक्त का उचित संचालन एवं प्रवाह मनुष्य को स्वस्थ रखता है उसी भांति नकद कोष व्यापार में सभी क्रियाओं को क्रियान्वित तथा संचालित करते है। हर व्यापारिक सौदे के साथ–साथ या तो रोकड़ का अन्तर्वाह (inflow of cash) होता है और या रोकड़का बहिर्वाह (outflow of cash)। यद्यपि बहुत से व्यवहार ऐसे भी होते हैं जो रोकड़ के प्रवाह (flow) को बिल्कुल प्रभावित नहीं करते लेकिन अधिकांश व्यवहार रोकड़ के प्रवाह पर प्रभाव डालते है। रोकड़ का बहिर्वाह पूंजी तरलता को कम करता है जबकि अन्तर्वाह से इसमें वृद्धि होती है। रोकड़ का अन्तर्वाह तो उत्पादन के नकद विक्रय, प्राप्य विपत्रों की वसूली, अंशधारियों से प्राप्त होने वाली धनराशि, समय–समय पर लिए जाने वाले ऋणों, विनियोगों पर प्राप्त ब्याज या लाभांश आदि से होता है। इसके दूसरी ओर रोकड़ का बहिर्वाह दैनिक भुगतानों, माल के नकद क्रय, देय विपत्रों का भुगतान और करों तथा लाभांश की अदायगी आदि से होता है। कुछ दशायें ऐसी भी होती है जो नकद राशि अन्तर्वाह को तो रोक लेती हैं जबकि उनका बहिर्वाह बना रहता है। आर्थिक मन्दी, मांग में कमी या लम्बी अवधि तक चलने वाली हड़ताल ऐसी ही दशाओं के कुछ उदाहरण है। ऐसी परिस्थिति में फर्म को अपनी भुगतान क्षमता बनाये रखना अति कठिन होता है। अतः नकद कोषों के प्रबन्ध, संचालन, नियोजन व नियन्त्रण का अपना ही विशेष महत्त्व है।

नकद–कोषों के प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वक्त–जरूरत पड़ने पर नकदी की कमी न पड़े और एक ओर तो व्यवसाय में आने वाली रोकड़ का प्रवाह ठीक बना रहे तो दूसरी ओर समय पर सभी भुगतान ठीक से होते रहें। अतः फर्म के प्रबन्धकों को चाहिये कि वे नकद–कोषों के प्रबन्ध की सुदृढ़ नीति तैयार करें।

3.3 कार्यशील पूँजी की अवधारणा

कई विशेषज्ञों ने अपने परिभाषाओं के माध्यम से कार्यशील पूंजी शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है। इनमें से प्रमुख परिभाषाए निम्नलिखित है।

1) श्री मिड, मैलेंट और फिल्ड के अनुसार, " चालु-संपत्ती कुल योग का अर्थ हि कार्यशील पूंजी होता है। कार्यशील पूंजी मौजूदा संपत्ति का कुल योग है।

2) श्री बोनवेल और डेवी की परिभाषा के अनुसार 'किसी भी निधि या वित्तीय प्राप्ति के कारण अगर चल संपत्ति में वृद्धि हो तो कार्यशील पूंजी में भी वृद्धिहोती है, कारण यह दोनों समान हैं। " मतलब धन का कोई भी अधिग्रहण जो मौजूदा चल संपत्ति को बढ़ाता है, कार्यशील पूंजी भी बढ़ाता है, क्योंकि वे एक और समान हैं।

3) श्री गेस्टेटेनबर्ग के अनुसार कार्यशील पूंजी को निम्म्नाकीत रूप में परिभाषित किया गया है। 'वर्तमान परिसंपत्तियों के मौजूदा भुगतानों में से अधिकांश को कार्यशील पूंजी के रूप में परिभाषित किया गया है। यह कार्यशील पूंजी को सामान्य परिभाषित किया जा सकता है।

4) श्री गीटमैन के मुताबिक, कार्यशील पूंजी की आम परिभाषा की जा रही है कि 'मौजूदा धन और वर्तमान दायित्व के बीच का अंतर' है। शुद्ध कार्यशील पूंजी की सबसे आम परिभाषा मौजूदा परिसंपत्तियों और वर्तमान देनदारियों में अंतर है।

इस प्रकार के उद्योग की चल संपत्तियों का कुल योग का मतलब कार्यशील पूंजी है। साथ ही चल संपदा और चल देयतों में जो अंतर होता है उसे भी कार्यशील पूंजी माना गया है।

कार्यशील पूंजी के प्रकार

कार्यशील पूंजी के निम्म्नाकीत प्रकार होते है।

1) **नियमित कार्यशील पूंजी या स्थिर कार्यशील पूंजी** (Regular of Fixed Working Capital) : उद्योग में उत्पादन के काम को जारी रखने के लिए पूंजी का नियमित उपयोग किया जाता है उसे 'नियमित या स्थिर कार्यशील पूंजी' कहा जाता है। नियमित कार्यशील पूंजी: सामान्य स्थिति में बनाए जाने वाले कार्यशील पूंजी की न्यूनतम राशि को नियमित कार्यशील पूंजी कहा जाता है। यह पूंजी व्यवसाय की सामान्य स्थितियों को संभालने के लिए यह आवश्यक है। उदाहरण: श्रमिको को श्रम और कर्मचारियों को वेतन का भुगतान

करने के लिए उपलब्ध आवश्यक राशि नियमित या स्थिर कार्यशील पूंजी हो सकती है। क्योंकि यह लागत लगातार, नियमित और स्थिर है।

2) **मौसमी या सीजन कार्यशील पूंजी** (Seasonal working capital): कुछ उत्पादों में मौसमी मांग होती है उत्सव के कारण मौसमी मांग पैदा होती है। इस तरह, मौसमी कामकाजी पूंजी का मतलब है उत्पाद की मौसमी मांग को पूरा करने के लिए बनाए गए कार्यशील पूंजी का एक हिस्सा। उद्योग को एक ही समय में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता नहीं रहती कार्यशील पूंजी के कुछ हिस्सों का उपयोग यह विशेष मौसम या सीजन में किया जाता है। यही कारण है कि उसे मौसमी या सीजन कार्यशील पूंजी कहा जाता । उदाहरण के लिए, चीनी कारखाने में गन्ना खरीद, या कपास क्रय योजना आदि।

3) **विशिष्ट कार्यशील पूंजी: (Special working capital)** : किसी विशेष उद्देश्य के लिए उद्योग में इस्तेमाल किया जाने वाला कार्यशील पूंजी 'विशेष कार्यशील पूंजी' कहलाता है। व्यवसाय के विकास के लिए विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं। कार्यक्रम विज्ञापन अभियान, बिक्री संवर्धन गतिविधियों, उत्पाद विकास गतिविधियों, विपणन अनुसंधान गतिविधियों, नए उत्पादों का शुभारंभ, बाजारों के विस्तार और इस तरह की हो सकती हैं। इसलिए, विशेष कार्यशील पूंजी का मतलब है कि कंपनी के विशेष कार्यक्रमों के खर्चों को पूरा करने के लिए बनाए गए कार्यशील पूंजी का एक हिस्सा है। उदाहरण: विज्ञापन व्यय की बड़ी मात्रा, प्रारंभिक खर्च आदि। इसी तरह, व्यवसाय में अक्सर विशेष परिस्थितिया बन जाती है। कई कारणों के कारण उत्पादन में एक रुकावट पैदा होने की संभावना है। इसलिए, उत्पाद निरंतर रखने के लिए अतिरिक्त पूंजी का उपयोग करना आवश्यक है। उन्हें एक निश्चित कार्यशील पूंजी के रूप में जाना जाता है।

४) **सकल कार्यशील पूंजी**: व्यवसाय में उपलब्ध चल संपतीयो का कुल योग ही सकल कार्यशील पूंजी है। हर व्यवसाय में उपलब्ध ऐसे चल संपतीया कम्पनी में जितनी भी चल संपतीया है जैसे रोकड, बँक कोष, देनदार, प्राप्य विपत्र, अल्पकालीन विनियोग, पूर्वदत्त भुगतान उन सबका कुल योग हि सकल कार्यशील पूंजी कह्लाती है।

५) **नकारात्मक कार्यशील पूंजी**: कभी-कभी, मूल्य। वर्तमान परिसंपत्तियों की वर्तमान देनदारियों की तुलना में कम है, यह नकारात्मक कार्यशील पूंजी दर्शाता है। यदि ऐसी स्थिति पैदा होती है, तो फर्म जल्द ही वित्तीय संकट को पूरा करने जा रहा है।

६) **रिजर्व कार्यशील पूंजी**: इसे कुशन वर्किंग कैपिटल के रूप में अन्यथा कहा जाता है। यह अनिश्चित परिवर्तनों को पूरा करने या अनिश्चितताओं को पूरा करने के लिए व्यावसायिक इकाइयों द्वारा बनाई गई अल्पकालिक वित्तीय व्यवस्था को संदर्भित करता है। एक फर्म हमेशा कुछ जोखिमों की अपेक्षा के साथ काम करता है जो नियंत्रित या बेकाबू हो सकता है व्यापारिक दुनिया में अनियंत्रित जोखिमों को पूरा करने और बनाए रखने के लिए आरक्षित कार्यशील पूंजी का इस्तेमाल किया जा सकता है।

कार्यशील पूंजी परिचालन चक्र

कार्यशील पूंजी को एक परिचालन पूंजी या घूमने वाले पूंजी भी कहा जाता है। कैश रूपांतरण चक्र एक फर्म की इन्वेंट्री की खरीद और प्राप्त होने वाले खातों से नकद की रसीद के बीच की अवधि है। यही वह धन / पूंजी है जो निरंतर तरीके से मौजूदा परिसंपत्तियों के विभिन्न रूपों में फैलता है। उदाहरण के लिए, समय पर, धनराशि को कच्चे माल में बांधा जा सकता है, बाद में अर्ध-तैयार उत्पादों में परिवर्तित कर दिया जाता है, फिर तैयार या अंतिम उत्पादों में और जब ये तैयार किए गए उत्पाद बेचे जाते हैं, तो इसे या तो खाता प्राप्तियां या नकदी में बदला जाता है। वर्तमान परिसंपत्तियों में उसकी नकदी का पुन: निवेश किया जाता है इस प्रकार, राशि हमेशा परिचालित या नकदी से चालू परिसंपत्तियों के लिए घूमती रहती है और फिर से नकदी के लिए वापस आती है। यही कारण है कि कुछ लोग कार्यशील पूंजी प्रबंधन की बजाय परिचालन पूंजी प्रबंधन का इस्तेमाल करना पसंद करते हैं। हालांकि इस परिसंचरण को कम अंतराल पर किया जाता है, फिर भी पैसा फिर से जरूरी होता है।

अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ सर्टिफाईड पब्लिक एकाउंटेंट ने परिचालन चक्र को परिभाषित किया: "प्रक्रिया और अंतिम नकदी की प्राप्ति में प्रवेश करने वाली सामग्री या सेवाओं के अधिग्रहण के बीच औसत समय।"

आई। एम। पांडे के अनुसार, "परिचालन चक्र संसाधनों के अधिग्रहण में समय की अवधि है, कच्चे माल के रूपांतरण को तैयार वस्तुओं में काम करने के लिए, तैयार माल के बिक्री में बिक्री और बिक्री के संग्रह में शामिल है।"

कैश कनवर्ज़न चक्र दिन की संख्या का प्रतिनिधित्व करती है, जो एक फर्म की नकदी व्यापार के संचालन के भीतर बनी हुई है। कैश कनवर्ज़न चक्र का उपयोग करते हुए एक नकदी प्रवाह विश्लेषण में यह भी एक समग्र तरीके से पता चलता है कि कंपनी अपने कार्यशील पूंजी को कितनी कुशलता से प्रबंधित कर रही है।

कार्यशील पूंजी का अनुमान ऑपरेटिंग चक्र पद्धति ऑपरेटिंग चक्र की अवधि पर आधारित है। अब चक्र की अवधि, बड़ी कार्यशील पूंजी आवश्यकताओं होंगे ऑपरेटिंग चक्र का मतलब कच्चा माल का चक्र है जो तैयार वस्तुओं को प्रगति में खाते में देय खातों के लिए और अंत में नकद के लिए काम करता है। ऑपरेटिंग चक्र समय कच्चा माल की खरीद से नकदी में अपने रूपांतरण के लिए शुरू किया गया समय है।

एक छोटा चक्र एक व्यवसाय को जल्दी से नकद प्राप्त करने की अनुमति देता है जिसे अतिरिक्त खरीद या ऋण चुकौती के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। कैश कनवर्ज़न चक्र को कम करते हुए, एक कंपनी सामान्य रूप से अधिक स्वस्थ होती है। व्यवसायिक ग्राहकों से भुगतान को तेज करके और आपूर्तिकर्ताओं के भुगतान को धीमा करके नकदी रूपांतरण चक्र को छोटा करने का प्रयास करते हैं। सीसीसी भी नकारात्मक हो सकता है; उदाहरण के लिए, अगर कंपनी के पास एक मजबूत बाजार की स्थिति है और आपूर्तिकर्ताओं के लिए क्रय शर्तों को नियंत्रित कर सकते है।

इस प्रकार, एक विनिर्माण उद्यम के परिचालन चक्र में तीन चरण शामिल हैं:

1. संसाधनों का अधिग्रहण जैसे कि कच्चे माल, श्रम, बिजली और ईंधन आदि।
2. उत्पाद का निर्माण जिसमें कच्चे माल का निर्माण कार्य में प्रगति के साथ तैयार माल में होता है।
3. या तो नकद या क्रेडिट पर उत्पाद की बिक्री। संग्रह के लिए क्रेडिट बिक्री खाता प्राप्त करना।

ऑपरेटिंग चक्र या धन के संचलन प्रवाह का सबसे अच्छा निम्नलिखित तरीके से किया जा सकता है:

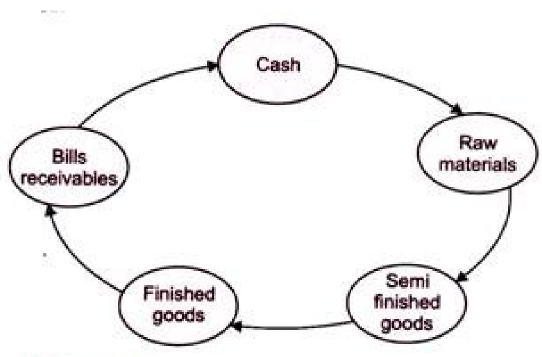

Figure 25.1: Working Capital Operating Cycle

पूंजी / वित्त को किसी भी उद्यम का जीवन-रक्षक माना जाता है इसलिए, किसी उद्यम में कार्यशील पूंजी का महत्व इस तथ्य में निहित है कि इसका परिचालित व्यवसाय में ठीक से नियंत्रित किया जाना चाहिए। क्योंकि, किसी भी अधिक परिसंचरण या परिसंचरण के कारण समस्याएं पैदा हो सकती हैं जैसे मानव रक्त में उच्च या निम्न रक्तचाप नामक अनुचित रक्त परिसंचरण समस्या पैदा कर सकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि दो भागों से मिलकर कुल कामकाजी राजपत्रों को (i) नियमित या स्थिर और (ii) वैरिएबल के रूप में जाना जाता है। ज़रूरी राशि, , कम अंतराल पर वर्तमान परिसंपत्तियों में बार-बार निवेश करने के लिए आवश्यक होती है, इसे नियमित या स्थिर कार्यशील पूंजी कहा जाता है। वास्तव में, यह निवेश क्षीणभूत न्यूनतम है और उद्यम में स्थायी रूप से डूब रहा है। कार्यशील पूंजी का दूसरा भाग भिन्न-भिन्न उतार-चढ़ाव के कारण (अर्थात। वृद्धि या गिरावट) व्यापार की मात्रा में भिन्न हो सकता है। इसलिए, इसे 'परिवर्तनीय कार्यशील पूंजी' या वैरिएबल के रूप में जाना जाता है।

कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्व या घटक

कंपनी के कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं। कार्यशील पूंजी की राशि का निर्धारण करते समय, निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक हैं।

1. बिक्री:

विभिन्न कारकों में, कार्यशील पूंजी की मात्रा निर्धारित करने के लिए बिक्री का आकार महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। बिक्री की मात्रा बढ़ाने के लिए, उद्यम को अपनी वर्तमान संपत्ति बनाए रखने की आवश्यकता है। अवधि के दौरान, उद्यम अपनी मौजूदा संपत्तियों की वार्षिक बिक्री को स्थिर रखने के लिए स्थिति में हो जाता है। नतीजतन, टर्नओवर रेशियो, अर्थात्, मौजूदा परिसंपत्तियों को चालू चक्र की लंबाई को कम करने में बढ़ोतरी बढ़ जाती है। इस प्रकार, ऑपरेटिंग चक्र की अवधि कम, कार्यशील पूंजी और इसके विपरीत के लिए कम आवश्यकताओं होंगे।

2. आपरेटिंग साइकिल की लंबाई:

विभिन्न चरणों के माध्यम से नकदी का रूपांतरण अर्थात कच्चा माल, अर्द्ध प्रसंस्कृत माल, तैयार माल, बिक्री, देनदार और बिल प्राप्तियां नकदी में एक निश्चित अवधि होती है जिसे 'ऑपरेटिंग चक्र की लंबाई' कहा जाता है। अब ऑपरेटिंग चक्र का समय, ज़्यादा कामकाजी पूंजी आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, भारी इंजीनियरिंग को चावल मिल या कपास स्पिनिंग मिल या स्टील रोलिंग मिल की अपेक्षा अपेक्षाकृत अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह इस प्रकार है कि कार्य चक्र की अवधि के आधार पर, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता उद्यम से उद्यम तक भिन्न होती है।

3. व्यवसाय की प्रकृति:

व्यवसाय की प्रकृति के आधार पर उद्यमों में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, ट्रेडिंग कंपनियों को विनिर्माण कंपनियों की तुलना में अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि व्यापारिक व्यवसाय को बड़ी मात्रा में सामानों की आवश्यकता होती है, जो शेयरों में रहती है और उत्पादन संबंधी पूंजी के मुकाबले अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी भी लेती है।

दोनों प्रकार के व्यवसायों में, वर्तमान संपत्ति का मूल्य कुल संपत्ति के मूल्य का 80% से 90% है। मौजूदा परिसंपत्तियों में निवेश होटल और रेस्तरां के मामले में अपेक्षाकृत छोटा है क्योंकि उनके पास ज्यादातर नकदी बिक्री है, और देनदारियों के संतुलन में केवल थोड़ी मात्रा है

4. क्रेडिट की शर्तें:

एक और महत्वपूर्ण कारक जो कार्यशील पूंजी आवश्यकताओं की राशि निर्धारित करता है, ग्राहकों को अनुमति दी जाने वाली क्रेडिट की शर्तों से संबंधित है। उदाहरण के लिए, एक उद्यम केवल 15 दिनों की क्रेडिट की अनुमति दे सकता है, जबकि अन्य 90 दिनों के अपने ग्राहकों को क्रेडिट कर सकते हैं। इसके

अलावा, एक उद्यम अपने सभी ग्राहकों को क्रेडिट सुविधाएं प्रदान कर सकता है, जबकि एक ही व्यवसाय में एक अन्य उद्यम केवल चुनने के लिए क्रेडिट का विस्तार कर सकता है और केवल उन विश्वसनीय ग्राहकों को ही भुगतान कर सकता है। फिर, कार्यशील पूंजी के लिए आवश्यकताओं को स्वाभाविक रूप से अधिक होगा यदि क्रेडिट की अवधि लंबी है और क्रेडिट सुविधा सभी ग्राहकों तक बढ़ जाती है, चाहे वे विश्वसनीय हों या गैर-विश्वसनीय हों। इसका कारण यह है कि देनदारियों का अब और संतुलन होगा और वह भी अपेक्षाकृत लंबी अवधि के लिए जो स्पष्ट रूप से अधिक पूंजी के लिए मांग करेगा। इसके विपरीत, यदि कच्चे माल की आपूर्ति अनुकूल शर्तों या क्रेडिट की शर्तों पर उपलब्ध है, तो भुगतान अपेक्षाकृत लंबी अवधि के बाद किया जाएगा, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता तदनुसार छोटी होगी।

5. मौसमी बदलाव:

मौसमी उद्यमों, अर्थात्, जिनके कामकाज को मौसम में उठाया जाता है, उन्हें विशेष मौसम के दौरान उनके बढ़ते कार्यों को पूरा करने के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता हो सकती है। मौसमी उद्यम का एक लोकप्रिय उदाहरण चीनी कारखाना हो सकता है जिसका कार्य अत्यधिक मौसमी है

6. इन्वेंटरी का कारोबार:

अगर माल आकार में बड़ा है लेकिन कारोबार धीमा है, तो छोटे पैमाने पर उद्यम को अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, यदि माल छोटा है लेकिन उनका कारोबार जल्दी है, तो उद्यम को एक छोटी सी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

4. कुल लागत में कच्चे माल की लागत का अनुपात:

जहां किसी उत्पाद के निर्माण में इस्तेमाल होने वाली कच्ची सामग्रियों की लागत कुल लागत के अनुपात में बहुत बड़ी है और उसके अंतिम मूल्य की आवश्यकता होती है, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी अधिक होगी। यही कारण है कि, एक कपास कपड़ा मिल या चीनी मिल में, इस उद्देश्य के लिए बहुत अधिक धनराशि की आवश्यकता होती है। इस कारण के लिए एक भवन ठेकेदार को भी विशाल कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। यदि सामग्री का महत्व कम होता है, उदाहरण के लिए एक ऑक्सीजन कंपनी में, कार्यशील पूंजी की ज़रूरतें स्वाभाविक रूप से अधिक नहीं होगी।

5. मैनुअल श्रम या मैकेनाइजेशन का प्रयोग:

श्रमिक गहन उद्योगों में, उच्च मैकेनिक वाले लोगों की तुलना में बड़ी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। उत्तरार्द्ध निश्चित पूंजी का एक बड़ा हिस्सा होगा। यह याद किया जा सकता है, हालांकि, कुछ हद तक

मैन्युअल श्रम या मशीनरी का निर्णय प्रबंधन के साथ निहित है। इसलिए, ज्यादातर मामलों में कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को कम करने और अचल संपत्तियों में निवेश में वृद्धि करने और इसके विपरीत में संभव है।

7. उत्पादन प्रौद्योगिकी की प्रकृति:

श्रमिक गहन प्रौद्योगिकी के मामले में, यूनिट को मजदूरी का भुगतान करने के लिए अधिक राशि की आवश्यकता होगी और इसलिए, अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। दूसरी तरफ, अगर उत्पादन तकनीक पूंजीगत है, तो उद्यम को मजदूरी जैसे खर्चों के लिए कम भुगतान करना होगा। नतीजतन, उद्यम को कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

10. नकदी की आवश्यकताएं:

विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हाथ में नकदी की आवश्यकता है, जैसे, वेतन, किराए, दरों आदि का भुगतान, कार्यशील पूंजी पर एक प्रभाव है। अधिक की नकद आवश्यकताओं को कंपनी की पूंजीगत आवश्यकताओं को पूरा करना होगा और इसके विपरीत होगा।

11. अन्य कारक:

उपर्युक्त विचारों के अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाले कई अन्य कारक भी हैं। उनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं

(I) उत्पादन और वितरण नीतियों के बीच समन्वय की डिग्री

(Ii) वितरण के क्षेत्र में विशेषज्ञता

(Iii) परिवहन और संचार के साधनों के विकास।

(Iv) कारोबार के प्रकार में निहित खतरों और आकस्मिकताओं।

8. आकस्मिकताओं:

अगर छोटे पैमाने के उद्यमों के उत्पादों की मांग और कीमतें व्यापक विविधताएं या उतार-चढ़ाव के अधीन हैं, तो उतार-चढ़ाव को पूरा करने के लिए आकस्मिक प्रावधान करना होगा। यह स्पष्ट रूप से छोटे उद्यमों की कार्यशील पूंजी के लिए आवश्यकताओं को बढ़ा देगा। हालांकि इस सूची में कुछ अन्य कारक जोड़ सकते हैं,

एक छोटे पैमाने पर उद्यम की कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को निर्धारित करने में प्रमुख कारक दिखाई देते हैं।

कार्यशील पूंजी का अनुमान

कार्यशील पूंजी यह व्यवसाय जीवन रक्त है। कोई व्यावसायिक पूंजी पर्याप्तता के बिना सफल नहीं हो सकता। इस वजह से, कंपनी की कार्यशील पूंजी में कमी को रोकने के लिए कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करना आवश्यक हो जता है। कार्यशील पूंजी का अनुमान किया जना है, तो निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार करना आवश्यक है।

एक छोटे पैमाने पर उद्यम के मामले में, कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं का अनुमान करने वाले महत्वपूर्ण कारक निम्नानुसार हैं:

1. बिक्री:

विभिन्न कारकों में, कार्यशील पूंजी की मात्रा का अनुमान करने के लिए बिक्री का आकार महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। बिक्री की मात्रा बढ़ाने के लिए, उद्यम को अपनी वर्तमान संपत्ति बनाए रखने की आवश्यकता है। अवधि के दौरान, उद्यम अपनी मौजूदा संपत्तियों की वार्षिक बिक्री को स्थिर रखने के लिए स्थिति में हो जाता है। नतीजतन, टर्नओवर रेशियो, अर्थात्, मौजूदा परिसंपत्तियों को चालू चक्र की लंबाई को कम करने में बढ़ोतरी बढ़ जाती है। इस प्रकार, ऑपरेटिंग चक्र की अवधि कम, कार्यशील पूंजी और इसके विपरीत के लिए कम आवश्यकताओं होंगे।

2. आपरेटिंग साइकिल की लंबाई:

विभिन्न चरणों के माध्यम से नकदी का रूपांतरण अर्थात कच्चा माल, अर्द्ध प्रसंस्कृत माल, तैयार माल, बिक्री, देनदार और बिल प्राप्तियां नकदी में एक निश्चित अवधि होती है जिसे 'ऑपरेटिंग चक्र की लंबाई' कहा जाता है। अब ऑपरेटिंग चक्र का समय, ज़्यादा कामकाजी पूंजी आवश्यक है।

उदाहरण के लिए, भारी इंजीनियरिंग को चावल मिल या कपास स्पिनिंग मिल या स्टील रोलिंग मिल की अपेक्षा अपेक्षाकृत अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता है। इस प्रकार, यह इस प्रकार है कि कार्य चक्र की अवधि के आधार पर, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता उद्यम से उद्यम तक भिन्न होती है।

3. व्यवसाय की प्रकृति:

व्यवसाय की प्रकृति के आधार पर उद्यमों में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, ट्रेडिंग कंपनियों को विनिर्माण कंपनियों की तुलना में अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि व्यापारिक व्यवसाय को बड़ी मात्रा में सामानों की आवश्यकता होती है, जो शेयरों में रहती है और उत्पादन संबंधी पूंजी के मुकाबले अधिक मात्रा में कार्यशील पूंजी भी लेती है।

दोनों प्रकार के व्यवसायों में, वर्तमान संपत्ति का मूल्य कुल संपत्ति के मूल्य का 80% से 90% है। मौजूदा परिसंपत्तियों में निवेश होटल और रेस्तरां के मामले में अपेक्षाकृत छोटा है क्योंकि उनके पास ज्यादातर नकदी बिक्री है, और देनदारियों के संतुलन में केवल थोड़ी मात्रा है

4. क्रेडिट की शर्तें:

एक और महत्वपूर्ण कारक जो कार्यशील पूंजी आवश्यकताओं की राशि का अनुमान करता है, ग्राहकों को अनुमति दी जाने वाली क्रेडिट की शर्तों से संबंधित है। उदाहरण के लिए, एक उद्यम केवल 15 दिनों की क्रेडिट की अनुमति दे सकता है, जबकि अन्य 90 दिनों के अपने ग्राहकों को क्रेडिट कर सकते हैं। इसके अलावा, एक उद्यम अपने सभी ग्राहकों को क्रेडिट सुविधाएं प्रदान कर सकता है, जबकि एक ही व्यवसाय में एक अन्य उद्यम केवल चुनने के लिए क्रेडिट का विस्तार कर सकता है और केवल उन विश्वसनीय ग्राहकों को ही भुगतान कर सकता है। फिर, कार्यशील पूंजी के लिए आवश्यकताओं को स्वाभाविक रूप से अधिक होगा यदि क्रेडिट की अवधि लंबी है और क्रेडिट सुविधा सभी ग्राहकों तक बढ़ जाती है, चाहे वे विश्वसनीय हों या गैर-विश्वसनीय हों। इसका कारण यह है कि देनदारियों का अब और संतुलन होगा और वह भी अपेक्षाकृत लंबी अवधि के लिए जो स्पष्ट रूप से अधिक पूंजी के लिए मांग करेगा। इसके विपरीत, यदि कच्चे माल की आपूर्ति अनुकूल शर्तों या क्रेडिट की शर्तों पर उपलब्ध है, तो भुगतान अपेक्षाकृत लंबी अवधि के बाद किया जाएगा, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता तदनुसार छोटी होगी।

5. मौसमी बदलाव:

मौसमी उद्यमों, अर्थात्, जिनके कामकाज को मौसम में उठाया जाता है, उन्हें विशेष मौसम के दौरान उनके बढ़ते कार्यों को पूरा करने के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता हो सकती है। मौसमी उद्यम का एक लोकप्रिय उदाहरण चीनी कारखाना हो सकता है जिसका कार्य अत्यधिक मौसमी है

6. इन्वेंटरी का कारोबार:

अगर माल आकार में बड़ा है लेकिन कारोबार धीमा है, तो छोटे पैमाने पर उद्यम को अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, यदि माल छोटा है लेकिन उनका कारोबार जल्दी है, तो उद्यम को एक छोटी सी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

7. उत्पादन प्रौद्योगिकी की प्रकृति:

श्रमिक गहन प्रौद्योगिकी के मामले में, यूनिट को मजदूरी का भुगतान करने के लिए अधिक राशि की आवश्यकता होगी और इसलिए, अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। दूसरी तरफ, अगर उत्पादन तकनीक पूंजीगत है, तो उद्यम को मजदूरी जैसे खर्चों के लिए कम भुगतान करना होगा। नतीजतन, उद्यम को कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

8. आकस्मिकताओं:

अगर छोटे पैमाने के उद्यमों के उत्पादों की मांग और कीमतें व्यापक विविधताएं या उतार-चढ़ाव के अधीन हैं, तो उतार-चढ़ाव को पूरा करने के लिए आकस्मिक प्रावधान करना होगा। यह स्पष्ट रूप से छोटे उद्यमों की कार्यशील पूंजी के लिए आवश्यकताओं को बढ़ा देगा। हालांकि इस सूची में कुछ अन्य कारक जोड़ सकते हैं, एक छोटे पैमाने पर उद्यम की कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को निर्धारित करने में प्रमुख कारक दिखाई देते हैं।

उपरोक्त कारक जो कार्यषील पूंजी को प्रभावित करते है और इसलिए कार्यषील पूंजी का अनुमान लगाते समय इन्हें ध्यान में रखना आवष्यक होता है। परन्तु इन कारकों से भी अधिक महत्वपूर्ण कारक प्रबन्ध की योग्यता व क्षमता है जो कार्यषील पूंजी को र्प्याप्त सीमा तक प्रभावित करती है। उपर्युक्त कारकों के प्रति प्रबन्ध का दृश्टिकोण कारकों की प्रकृति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है जोखिम उठाने की क्षमता, पूंजी संरचना का लचीलापन, लाभांष नीति, पूंजी का उचित स्रोत व क्रय विक्रय सम्बन्धी साख नीति, आदि ऐसे क्षेत्र है जिनमें दक्ष प्रबन्ध अपनी कुषलता का परिचय देकर कार्यषील पूंजी की आवष्यकता को अनुकूलतम एवं लाभदायी बनाये रख सकता है।

कार्यषील पूंजी के पूर्वानुमान की तकनीकियां

किसी भी आगामी अवधि के लिए कार्यषील पूंजी की मात्रा का पूर्वानुमान लगाने के लिए निम्न में से कोई भी तकनीक प्रयोग में लायी जा सकती है।

(1) संचालन चक्र रीति

(2) चालू सम्पतियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान रीति

(3) रोकड़ पूर्वानुमान रीति

(4) प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति

(5) लाभ–हानि समायोजन रीति

(1) संचालन चक्र रीति :– रोकड़– कच्चा माल–निर्मित माल–देनदार व प्राप्त बिल–नकद' यही संचालन चक्र होता है। एक संचालन चक्र की अवधि संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में आपूर्तिदाता द्वारा स्वीकृत अवधि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है। संचालन चक्र रीति से किसी संस्था की भावी कार्यषील पूंजी का पूर्वानुमान लगाने के लिए एक अवधि के संचालन व्ययों में उसी अवधि के संचालन चक्रों की संख्या से भाग दिया जाता है इस रीति के प्रयोग हेतु निम्न की गणना आवष्यक होती है।

(क) संचालन व्यय – किसी अवधि के कुल संचालन व्यय में उस अवधि में (गैर नकद खर्चो को छोड़कर) किये गये सामग्री क्रय, निर्माणी व्यय, प्रषासनिक व्यय, विक्रय व वितरण व्यय, आदि को षामिल करते है। यह जरूरी है कि इन व्ययों की रकम का अनुमान लगाते समय उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन, नवीन उत्पाद का प्रारम्भ पुराने उत्पाद का परित्याग, मूल्य स्तर में परिवर्तन आदि से उत्पन्न परिवर्तनों का समायोजन कर लिया जाय।

(ख) संचालन चक्र की अवधि– संचालन चक्र की अवधि से तात्पर्य संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि के योग में से आपूर्तिदाताओं द्वारा प्रदत अवधि के घटाने के बाद बची हुई अवधि से होता है। संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि की गणना विधि इस प्रकार है :–

(1) सामग्री संग्रहण अवधि (दिनों में) उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व जितने दिन सामग्री को स्टोर में रखना पड़ता है उसे ही सामग्री स्रंहण अवधि कहते हैं इसकी गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है

चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान रीति– इस रीति के अन्तर्गत हम आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों के आधार पर चालू सम्पतियों का रोकड़ लागत पर अनुमान लगाते हैं और इसी प्रकार चालू दायित्वों का भी अनुमान लगा लेते हैं। चालू सम्पतियों में से चालू दायित्वों को घटा देने पर कार्यषील पूंजी की मात्रा ज्ञात हो जाती है। यदि कार्यषील पूंजी का अर्थ चालू सम्पतियों से लगाया गया हो तो चालू सम्पतियों के अनुमानित मूल्य को ही कार्यषील पूंजी मान लिया जाता है। गत अनुभव, सरल, नीति, आदि के आधार पर विभिन्न चालू सम्पतियों एवं दायित्वों का अनुमान लगाया जाता है।

रोकड़ पूर्वानुमान रीति– इस रीति के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाली प्राप्तियों एवं भुगतानों का अनुमान लगाया जाता है और अन्तर की रकम रोकड़ आधिक्य या कमी को दर्षाती है कमी की रकम का कहीं–न कहीं से अर्थ प्रबन्धन करना पड़ता है। वस्तुतः यह रीति रोकड़ बजट का ही रूप होती है।

प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति – इस रीति के अन्तर्गत अवधि में होने वाले लेन–देनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की सम्पतियों एवं दायित्वों का अनुमान लगा लिया जाता है। यह अनुमान दी गयी सूचनाओं के आधार पर किया जाता है। सम्पतियों एवं दायित्वों के अन्तर को कार्यषील पूंजी के रूप में लिया जाता है। पूर्वानुमानित सम्पतियों एवं दायित्वों के आधार पर एक आर्थिक चिट्ठा बना लिया जाता है जिसे प्रक्षेपी चिट्ठा कहते हैं।

लाभ हानि समायोजन रीति– इस रीति के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों के आधार पर अनुमानित लाभ की गणना कर ली जाती है इस अनुमानित लाभ में से रोकड़ आगमन व रोकड़ बहिर्गमन का समायोजन करके कार्यषील पूंजी की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है वस्तुतः यह विधि लाभ को रोकड़ आधार पर परिवर्तित करती है।

3.4 नकद या रोकड़ प्रबंधन

रोकड़ बजट का अर्थ (Cash Budget) :– नकदी के आयोजन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाला दूसरा महत्वपूर्ण उपकरण है रोकड़ बजट। गुथमैन एवं डूगल के शब्दों में, ''किसी व्यावसायिक संस्था के लिए एक निश्चित अवधि के लिये रोकड़ स्थिति का पूर्वानुमान लगाना ही रोकड़ बजट कहलाता है।'' इस प्रकार एक रोकड़ बजट किसी निश्चित भावी अवधि के लिए रोकड़ प्रवाह का पूर्वानुमान होता है। इसे भावी रोकड़ अन्तर्वाहों तथा रोकड़ बहिर्वाहों का अनुमान लगाकर तैयार किया जाता है। ये अनुमान विक्रय उत्पादन, विपणन, सेविवर्गीय तथा उपक्रम की अन्य नीतियों पर विचार करके लगाये जाते हैं।

जब रोकड़–बजट व्यापार के लिए नकदी की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगा देता है तो इसका दूसरा कार्य रोकड़ नियन्त्रण के रूप में शुरू होता है। इस कार्य के लिये नकदी–बजट रिपोर्ट (Cash Budget Report) बनाई जाती है। इस रिपोर्ट का आशय वास्तविक आय–व्यय की तुलना पूर्वानुमान आय–व्यय करने से है। प्रत्येक बजट–समय की समाप्ति पर वास्तविक (Actual) व्ययों एवं बजट की राशियों में तुलना की जाती है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा यदि दोनों में अन्तर पाया जाता है तो अन्तर का कारण ढूंढा जाता है। नकदी–रिपोर्ट (Cash Report) नियन्त्रण करने की एक अच्छी विधि है।

गुथमैन एवं डूगल के शब्दों में, ''किसी व्यावसायिक संस्था के लिये एक निश्चित अवधि के लिए रोकड़ स्थिति का पूर्वानुमान लगाना ही रोकड़ बजट कहलाता है।

इसी प्रकार जेम्स वैन होर्ने के शब्दों में, ''एक रोकड़ बजट किसी निश्चित भावी अवधि के लिए रोकड़ प्रवाह का पूर्वानुमान होता है।''

इस प्रकार रोकड़ बजट बनाकर यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि एक परिकल्पित अवधि में अनुमानित व्ययों के लिये कितनी रोकड़ की आवश्यकता होगी और फर्म की सामान्य गतिविधियों से (नकद बिक्री, उधार की वसूली आदि) कितनी रोकड़ एकत्रित हो सकती है। इस प्रकार रोकड़ बजट बनाने का मुख्य उद्देश्य उपक्रम की शोधन क्षमता (Solvency) को बनाये रखना है, एक रोकड़ बजट प्रायः एक वर्ष के लिए बनाया जाता है जिसे भविष्य में छमाही, तिमाही अथवा मासिक आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है।

अनुकूलतम रोकड़ का निर्धारण:

नकद–कोषों के प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वक्त–जरूरत पड़ने पर नकदी की कमी न पड़े और एक ओर तो व्यवसाय में आने वाली रोकड़ का प्रवाह ठीक

बना रहे तो दूसरी ओर समय पर सभी भुगतान ठीक से होते रहें। अतः फर्म के प्रबन्धकों को चाहिये कि वे अनुकूलतम रोकड़ का निर्धारण हेतु नकद–कोषों के प्रबन्ध की सुदृढ़ नीति तैयार करें। नकद–कोषों के प्रबन्ध में मुख्य रूप से निम्न चार बातें आती हैं :–

(1) **नकदी का नियोजन (Cash Planning)** – इसके अन्तर्गत, रोकड़ के अन्तर्वाहों और बहिर्वाहों का इस प्रकार पूर्वानुमान लगाना आता है कि फर्म को विभिन्न कालावधियों में रोकड़ के अतिरेक अथवा कमी का स्पष्ट पूर्वाभास हो जाए। इस बारे में रोकड़ की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

(2) **रोकड़–प्रवाहों का प्रबन्ध (Managing the Cashflows)** – रोकड़ के अन्तर्वाह एवं बहिर्वाहों का प्रबन्ध भली प्रकार करना चाहिए। अन्तर्वाहों का ठीक–ठीक पूर्वानुमान लगाना तथा बहिर्वाहों में कमी लाने के प्रयत्न करना, रोकड़ प्रवाहों के प्रबन्ध का मुख्य भाग है।

(3) **नकद–काषों का अनुकूलतम शेष (Optimum Cash level)** – फर्म को नकद–कोषों के अनुकूलतम शेषों को भी निश्चत करना चाहिए। अधिक शेष रखने पर होने वाली लागतों तथा कम शेष रखने पर होने वाली हानियों का संतुलन करके ही प्रबन्धक लोग अनुकूलतम शेष की सीमा निश्चित कर सकते हैं।

(4) **अतिरिक्त कोषों का विनियोजन (Investing Idle Cash)** – नकदी के प्रबन्ध का चौथा पहलू है अतिरिक्त अथवा निष्क्रिय नकदी का विनियोजन करना ताकि फर्म का वह पैसा अनुत्पादक ही न पड़ा रहे। यह नकदी प्रायः बैंक–निक्षेपों व शीघ्र विपणनशील प्रतिभूतियों में लगाई जाती है। अतः प्रबन्धकों को इस पहलू पर भी भली भांति विचार करना चाहिए।

पर्याप्त नकदी कोषों के लाभ

पर्याप्त नकदी का रखना प्रत्येक व्यवसाय में आवश्यक है अन्यथा इसके बिना आपत्ति का आना अवश्यम्भावी है। यद्यपि चालू दायित्वों का भुगतान फर्म की चल सम्पत्त्यिों द्वारा उत्पन्न धन में से किया जाता है परन्तु तब भी कार्यशील पूंजी का अनुपात चालू दायित्वों से पर्याप्त सुरक्षात्मक रूप में बना रहे ताकि कभी उसकी कमी न पड़ने पाये। चाहे किसी भी ओर से कार्यशील पूंजी की आवश्यकता उत्पन्न हो, वह व्यावसायिक संस्था जो पर्याप्त कोष रखती है, अपने भविष्य की उन्नति का मार्ग बन सकती है। कुछ विशेष कारण एवं लाभ जिनके कारण पर्याप्त धन कोषों की आवश्यकता प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को पड़ती है और जिनका लाभ वे उठाती है निम्न प्रकार से है। इनमें से अधिकांश आवश्यकतायें नकदी की ही होती हैं –

(1) **प्राविधिक अकुशलता की क्षतिपूर्ति** (Compensation to Technical Efficiency) – पर्याप्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का प्रमुख कारण फर्म की प्राविधिक

अकुशलता की क्षतिपूर्ति करना है। किसी भी व्यापार की साख क्षमता एवं संचालन शक्ति बनाये रखने और उत्पादन तन्त्र को चालू रखने के लिये यह आवश्यक है कि कच्चे माल का मूल्य चुकाने, श्रमिकों को समय पर भृत्ति देने, बिक्री लागतों एवं प्रबन्धकीय व्ययों को चुकाने के लिए पर्याप्त धन फर्म के पास हो।

(2) **साख का बने रहना** (Maintenance of Goodwill) — कच्चे माल के प्रदाता को त्वरित भुगतान न केवल माल की सतत प्रदाय की गारंटी करता है अपितु व्यापार को आवश्यकता पड़ने पर भविष्य में अधिक साख सुविधायें एवं सामयिक क्रियाओं के सफल संचालन की संभावना में भी तैयार करता है। एक नितांत व्यावहारिक दृष्टिकोण से, किसी भी संस्था की साख इस बात पर निर्भर करती है कि वह व्यावसायिक संस्था कितनी जल्दी एवं क्षमतापूर्वक भुगतान करती है।

(3) **नकद कटौती की प्राप्ति** (Cash Discount) — एक आवश्यक कार्यशील पूंजी रखने वाली संस्था को नकद कटौती का लाभ भी मिलता है जो उसकी उत्पादन क्षमता एवं लाभों में वृद्धि करता है। साधारणतः व्यवसायी लोग ''2/10 net 30'' शब्दावली प्रयोग करते है। इसका तात्पर्य यह है कि रूपये का भुगतान सुपुर्दगी की तिथि से 30 दिन के अन्दर होना है। परन्तु यदि क्रेता उस भुगतान को सुपुर्दगी के 10 दिन के अन्दर ही कर देता है तो वह बीजक में से अपने आप ही 2 प्रतिशत कटौती काट लेने का अधिकारी है। इस प्रकार से एक क्रेता परिपक्वता दिवस के 20 दिन पहले भुगतान कर देने पर 2 प्रतिशत नकद कटौती पाने का अधिकारी है।

(4) **बैंकों से सदसम्बन्धों की स्थापना** (Good Bank Relations) — यदि कोई व्यावसायिक संस्था प्रारंभ से ही पर्याप्त पूंजी के साथ प्रारम्भ की जाती है और कालान्तर में पर्याप्त साख एवं व्यावसायिक कीर्ति अर्जित करती है तो ऐसी संस्था से सम्बन्ध बनाने तथा बनाये रखने को बैंक भी उत्सुक रहते हैं। ऐसी संस्थाओं को बैंकों से मौसमी ऋण (Seasonal loans) आवश्यकतानुकूल उचित ब्याज दर पर मिलते हैं। किसी भी संस्था को बैंक ऋण प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि उसकी आर्थिक स्थिति तरल एवं सुदृढ़ हो।

(5) **आपत्तियों का सफल समाधान** (Safety during bad days) — आपत्तिकाल में ऐसी संस्थायें बड़ी सरलतापूर्वक अपने अस्तित्व को बचा लेती है। नकद कोष उनकी सुरक्षा का काम करते हैं।

(6) **व्यावसायिक अवसरों का उपयोग** (Utilisation of Business opportunities) — तेजी के समय अथवा समृद्धिकाल में अपने विस्तार करने तथा अधिकाधिक लाभार्जन करने के लिये ऐसी संस्था इन अवसरों का लाभ उठा सकती है।

(7) **नये विनियोगों को प्रोत्साहन** (Motivation for New Investments) – जब एक व्यक्ति कम्पनी की प्रतिभूतियों में धन विनियोग करता है तो वह अपनी विनियोजित धनराशि पर समुचित पुरस्कार की लालसा भी रखता है। जब व्यापार में समुचित कार्यशील पूंजी उपलब्ध नहीं है तो लाभों का पुनर्विनियोग करना पड़ेगा। यह स्थिति भविष्य में निगमों के सम्बन्ध में धनराशि का संकलन अत्यन्त कठिन कर देती है। व्यक्ति ऐसे औद्योगिक विनियोजन से विमुख हो जायेंगे क्योंकि वह उन्हें वार्षिक लाभाँश उपलब्ध नहीं कराता।

(8) **कार्य क्षमता में वृद्धि एवं स्थायित्व** (Increase stability in efficiency) – पर्याप्त नकदी या कार्यशील पूंजी उत्पादन क्षमता को गिरने से भी बचाती है। निरन्तर उत्पादन का तात्पर्य है श्रमिक वर्ग को निरन्तर कार्य। इससे उनका नैतिक स्तर ऊँचा उठता है, उनकी कार्य क्षमता बढ़ती है, उत्पादन लागत कम होती है, और समाज में फर्म की साख स्थापित होती है।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को दूरदर्शिता के दृष्टिकोण से पर्याप्त कार्यशील पूंजी रखनी चाहिये। अब प्रश्न उठता है कि वह कितनी हो? इसका सीधा–सादा उत्तर है आवश्यकता के अनुसार एडमण्ड लिंकन के शब्दों में, ''जिस प्रकार एक मनुष्य को उतनी ही लम्बी टाँगों की आवश्यकता होती है जिससे कि वह जमीन पर चल सके उसी प्रकार से निगम को कार्यशील पूंजी एवं स्थायी पूंजी को सुखद अनुपात रखना श्रेयस्कर है।''

रोकड़ धारण करने के उद्देश

यहां पहला प्रश्न यह पैदा होता है कि फर्में नकद–कोष क्यों रखती हैं या क्यों रखना चाहती हैं। फर्म को नकद–कोषों के अनुकूलतम शेषों को भी निश्चत करना चाहिए। अधिक शेष रखने पर होने वाली लागतों तथा कम शेष रखने पर होने वाली हानियों का संतुलन करके ही प्रबन्धक लोग अनुकूलतम शेष की सीमा निश्चित कर सकते हैं।

किसी भी फर्म द्वारा नकदी का समुचित शेष या कोष रखने के पीछे निम्न तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं –

(1) **व्यापार सम्बन्धी आवश्यकतायें** (Transaction Motives) – व्यापार सम्बन्धी आवश्यकताओं का अभिप्राय नकद कोषों के इस महत्वपूर्ण उद्देश्य से है जो फर्म को अपना व्यापार नियमित रूप से चलाने में मदद देता है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह है कि फर्म को माल का क्रय, विक्रय करने तथा अन्य खर्चों का भुगतान करने के लिये नियमित रूप से रोकड़ की आवश्यकता होती है। अतः इन प्रतिदिन होने वाले खर्चों को पूरा करने के लिए नकदी रखना आवश्यक है। यदि फर्म के प्रबन्धक अपनी आय व अपने व्ययों का सारणीयन करने में सफल हो जाते हैं तो वे कम नकदी से

भी काम चला सकते है। उदाहरणार्थ एक जन हितार्थ व्यावसायिक संस्था (public utility concern) में, जहां कि देय बिलों का भुगतान एक निश्चित अवधि के बाद होता है, कम नकदी से काम चल जाता है। इसके विपरित एक खुदरा व्यापार में कुल बिक्री की अनुपात में अधिक नकदी की आवश्यकता होती है।

(2) **पूर्व–विचार सम्बन्धी आवश्यकतायें** (Precautionary Motive) – नकद–कोष रखने के पीछे दूसरा मुख्य प्रयोजन आशा से परे (unexpected) – आकस्मिकताओं का सामना करना भी हो सकता है। प्रायः किसी उपक्रम को ऐसी आकस्मिकता का सामना करना पड़ सकता है जिनके सम्बन्ध में पहले से न सोचा गया हो और न जिनके लिये वित्तीय आयोजन ही किया गया हो। ऐसी आकस्मिकताओं में हड़ताल, तालाबन्दी, आग लग जाना, कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना तथा अप्रचलन आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। जो फर्म पर्याप्त नकद–कोष रखती है वे ही इन आकस्मिकताओं का सफलतापूर्वक सामना कर सकती हैं।

(3) **परिकल्पनात्मक आवश्यकतायें** (Speculative Motives) – कुछ व्यावसायिक संस्थायें परिकल्पना से लाभ कमाने के उद्देश्य से भी नकद–कोष रखती है। इसका मुख्य ध्येय भविष्य में मूल्य–स्तर में होने वाले परिवर्तनों से लाभ कमाना होता है। उदाहरणार्थ, यदि फर्म को किसी समय कच्चा माल सस्ता मिल रहा हो तो वह अधिक क्रय करने का विचार कर सकती है। इसी प्रकार यदि भविष्य में अपने उत्पाद का मूल्य व मांग काफी बढ़ने की आशा हो तो अधिक उत्पादन करके रख सकती है। इन दोनों ही परिस्थितियों में उसका उद्देश्य परिकल्पना है लेकिन दोनों ही परिस्थितियों में उसे अधिक नकदी की आवश्यकता होगी।

तरलता में सुधार के उपाय

प्रत्येक फर्म के लिये यह आवश्यक है कि उसमें कोषों की तरलता बनी रहे। यदि तरलता संबंधी समस्यायें बढ़ रही हों तो उसमें सुधार के लिये निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं –

1) फर्म को विक्रय वृद्धि के प्रयास करने चाहिए, जिससे वह विक्रय से प्राप्त होने वाले आगमों या आयों में पर्याप्त वृद्धि करें। इसके लिये विभिन्न उपायों को अपनाकर बिक्री को बढ़ाना होगा। आवश्यकतानुसार या परिस्थिति को देखते हुए फर्म को मूल्य में कमी करके, कम लाभ–उपांत पर ही बिक्री करनी चाहिए। कम लाभ पर यदि बिक्री का आवर्त बढ़ता है तो उससे भी लाभ में वृद्धि होती है।

2) तरलता लाने के लिये यह आवश्यक है कि स्टॉक के आवर्त में पर्याप्त वृद्धि की जाये। यदि साल में, स्टॉक का आवर्त 5 है तो उसे 7 या 10 गुना तक करने का प्रयास करना चाहिए। इससे फर्म की तरलता बढ़ेगी।

3) उचित साख प्रबंधन करके भी तरलता बढ़ाई जा सकती है। इसके लिये, लेनदारों से अधिक समय के लिये उधार लिया जाये तथा भुगतान में देरी की जाये, तो उससे तरलता बढ़ेगी।

4) उसी प्रकार से देनदारों को कम अवधि का साख प्रदान किया जाए तथा उनसे वसूली का कुशल प्रबंधन करके भी तरलता को बढ़ाया जा सकता है।

5) ऐसी संपत्तियों को जिन्हें कई वर्षों पूर्व क्रय किया गया हो और जो अब बहुत उपयोगी न रह गयी हो, बेचकर भी तरलता को बढ़ाया जा सकता है।

6) ऋणों के भुगतान की अवधि बढ़ाई जा सकती है जिससे तरलता पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

7) उसी प्रकार से लाभांश के भुगतान के लिये भी उदार नीति न अपनाकर तरलता बढ़ाई जा सकती है।

8) स्थायी संपत्तियों के क्रय को कुछ समय के लिये स्थगित करके भी तरलता बढ़ाई जा सकती है।

रोकड़ शेष को निर्धारण करने वाल्व तत्व:(Factors determining Cash balances)

किसी उपक्रम में कितना नकद–कोष रखा जाये इसका उत्तर देना अति कठिन है। प्रायः नकद–कोषों के आकार पर निम्न तत्वों का निर्णायक प्रभाव पड़ता है –

(1) **व्यापारिक साख की उपलब्धता** (Availabitliy of Trade Credit) – यदि कोई व्यापारिक फर्म किसी लाइन में काफी समय से काम कर रही है और बाजार में उसकी ख्याति काफी अच्छी है तो उसको आसानी से व्यापारिक साख उपलब्ध होगी। व्यापारिक साख की आसानी से उपलब्धि नकदी की कम आवश्यकता पर बल देती है। इसके विपरीत जिन फर्मों को साख की सुविधा नहीं मिलती उन्हें अधिक नकद–कोष रखने होंगे। यही कारण है कि व्यवसाय की स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में अधिक नकद–कोषों की आवश्यकता होती है और ज्यों–ज्यों व्यापार विकसित होता है उसकी आवश्यकता कम होती जाती है।

(2) **प्राप्त–विपत्रों की स्थिति** (Position of Account Receivables) – यदि फर्म को अपने प्राप्य–बिलों का भुगतान समय पर बिना किसी बाधा के मिलता रहता है तो वह फर्म कम नकद–कोष से भी काम चला सकती है।

(3) **व्यवसाय की प्रकृति** (Nature of Business) – विभिन्न उद्योगों की प्रकृति के अनुसार भी कुल सम्पत्तियों की तुलना में तरल कोषों का अनुपात न्यूनाधिक होता है। फिर भी कुल सम्पत्तियों की तुलना में तरल कोषों का अनुपात अधिकाँश व्यवसायों में पाँच से दस प्रतिशत की बीच रहता है। किसी भी उपक्रम विशेष में नकद–कोषों और उनका कुल सम्पत्तियों से अनुपात आदि के विषय में प्रबन्धकों द्वारा उचित नीति का निर्धारण

विगत अनुभव एवं प्रचलित परम्परा के साथ–साथ बहुत कुछ अपने अन्तर्ज्ञान के आधार पर भी किया जाता है।

(4) **स्टॉक रखने की स्थिति** (Investment position in Investories) – यदि व्यवसाय इस प्रकार का है कि जिसमें कच्चे माल का स्टॉक एवं तैयार माल (finished goods) का स्टॉक अधिक मात्रा में रखा जाता है तो नकद–कोषों की अधिक आवश्यकता पड़ेगी। इसके विपरीत इसकी उल्टी स्थिति होगी।

(5) **माल की माँग–प्रकृति** (Nature of Product's Demand) – किसी व्यापारिक फर्म द्वारा यदि ऐसे वतुस्यें बेची जाती हैं जिनकी मनुष्य को प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है एवं वह प्रायः लगातार खरीदता रहता है तो ऐसी स्थिति में अधिक नकद–कोषों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्योंकि इसके क्रय–विक्रय में रोकड़ का प्रवाह नियमित रूप से होता रहता है। इसके विपरीत पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादकों को अधिक रोकड़ शेषों की आवश्यकता पड़ती है।

(6) **नकदी के अन्तर्वाहों की स्थिति** (Cash Inflow Determined by Cash Budget) – नकदी–बजट का निर्माण उन सभी सम्भावनाओं पर प्रकाश डालता है जिनके द्वारा फर्म में नकदी का प्रवेश होता है। किस–किस तिथि को कितनी मात्रा में धन का आगमन होगा, यह रोकड़ बजट द्वारा निर्धारित होता है और इससे नकदी–कोषों की आवश्यकताओं का समुचित निर्धारिण किया जा सकता है। यदि आवश्यकता के समय ही रोकड़ का अन्तर्वाह होना है तो कम रोकड़ शेषों से ही काम चल जायेगा।

(7) **भुगतान पद्धति** (Payment Policy) – फर्म द्वारा अपने ऋणों का भुगतान करने की विधि, उनकी मात्रा एवं भुगतान विधि भी नकद–कोषों के स्तर को बहुत अधिक सीमा तक निर्धारित करते हैं।

(8) **उधार लेने की शक्ति** (Borrowing Capacity) – यह व्यापारिक संस्था जो आकस्मिक स्थितियों में अधिक उधार लेने की स्थिति में है, अपने पास कम नकद–कोषों को रख सकती है। इसके विपरीत स्थिति में फर्म को अपने पास ही अधिक नकदी–कोषों की व्यवस्था करनी होगी।

(9) **नकदी–कोषों का कुशल प्रबन्ध** (Management of Cash) – वह संस्था जो अपने नकदी कोषों का अधिक कुशलता–पूर्वक प्रबन्ध कर सकती है उसे कम ही नकद–कोषों की आवश्यकता पड़ती है। अगर प्रबन्ध प्रत्येक रूपये का गहन उपयोग करता है तो कम रोकड़ से भी काम चल सकता है और यदि इतनी गहनता से काम नहीं करता है तो अधिक कोषों की आवश्यकता पड़ेगी।

(10) **बैंकों से सम्बन्ध** (Relations with Banks) – नकदी के रखे जाने वाले शेषों का स्तर पर्याप्त मात्रा में इस बात पर निर्भर करता है कि फर्म के व्यापारिक बैंकों से कैसे सम्बन्ध है ? फर्म किस सीमा तक इस सुविधा का लाभ उठाना चाहती है या उठाती है ? बैंक उसे किस सीमा तक नकद–साख (cash credit) और अधिविकर्ष (Overdraft) की सुविधा प्रदान करते हैं ? यदि बैंक से अगले वित्त–वर्ष के लिए खड़ी–साख (credit-line) का अनुबन्ध कर लिया जाता है तो प्रबन्धक निश्चित रह कर कम नकद–कोषों से भी व्यापार कर सकते हैं। ऐसी वचनबद्धता के बदले बैंक कुछ 'वायदा–शुल्क' (commitment charge) लेते हैं जो ब्याज की तुलना में कम ही होता है।

(11) **रोकड़ वसूली नीति** (Cash collection policy) – यदि फर्म अपने देनदारों से कुशलता तथा शीघ्रता के साथ वसूली करती है तो उसके फलस्वरूप कम रोकड़ भूमि की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत जब वह रोकड़ की वसूली की उदार नीति अपनाती है और कुशलता के साथ वसूली नहीं करती तो अधिक रोकड़ शेष की आवश्यकता होगी।

(12) **क्रय–विक्रय की शर्तें** (Term of purchase and sale) – माल का क्रय या विक्रय फर्म किन शर्तों पर करती है, उसका भी प्रभाव रोकड़ शेष पर पड़ता है। यदि फर्म अपना माल उधार बेचने की नीति अपनाती है तो, अधिक रोकड़ की आवश्यकता होगी। उसी प्रकार, यदि फर्म उधार क्रय की अपेक्षाकृत नकद क्रय की नीति अपनाती है तो अधिक शेष की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत यदि फर्म नकद विक्रय और उधार क्रय करती है तो कम रोकड़ शेष की आवश्यकता रहेगी।

(13) **व्यापार का आकार** (Size of trade) – छोटे पैमाने पर व्यापार करने वाली फर्म में कम रोकड़ की आवश्यकता होती है, जबकि एक बड़े आकार की फर्म को अधिक मात्रा में रोकड़ शेष बनाकर रखना होगा।

रोकड़ प्रवाह प्रबंध

वित्तीय प्रबंधन की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह रोकड़ प्रवाह का प्रबंध कितनी कुशलता के साथ करता है। रोकड़ का प्रवाह अंतर्वाह तथा वहिर्वाह होता है। अतः प्रबंधक को दोनों में उचित सामंजस्य बनाकर रखना चाहिए। उसका यह प्रयास होना चाहिए कि रोकड़ का अंतर्वाह अधिकतम हो तथा उसका वहिर्वाह न्यूनतम हो। इसके लिये रोकड़ की वसूली समय पर होनी चाहिए तथा उसका संवितरण विलम्ब से होना चाहिए। इसके दो भागों में बाँटा जा सकता है–

अ) **अंतर्वाह को अधिकतम करना (Maximisation of cash inflows)** – रोकड़ में अंतर्वाहों को अधिक से अधिक करने के लिये निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए –

1) **एकल बैंक खाता** (Single Bank Account) – फर्म को चाहिए कि यदि उसके खाते कई बैंकों में खुले हो तो उसे एक ही बैंक में खाता रखना चाहिए तथा

अन्य बैंकों के खातों को बन्द कर देना चाहिए। इससे एक ही स्थान पर अंतर्वाह होगा और उसकी जानकारी होती रहेगी।

2) **ताला–संदूक प्रणाली अपनाना** (Adoption of lock-box system) – इस प्रणाली के अंतर्गत फर्म अपने प्रमुख व्यापारिक केंद्रों पर डाकघरों में ताला लगा संदूक किराये पर ले लेती है। क्षेत्र–विशेष के ग्राहकों को यह निर्देश दे दिया जाता है कि वे अपने चैक उसी ताला लगे संदूक में ही जमा कर दें। फर्म द्वारा अधिकृत व्यक्ति उस संदूक को खोलकर सभी चैकों को अपने बैंक में जमा कर देता है इससे समय की पर्याप्त बचत होती है और शीघ्रता से वसूली केन्द्रित ढंग से हो पाती है।

3) **विकेंद्रित वसूली केंद्र** (Decentratised collection centre) – इसके लिये फर्म को विभिन्न व्यापारिक केंद्रों के लिये अलग–अलग संग्रहण या वसूली केंद्र स्थापित करने चाहिए। ग्राहक या देनदार जिनसे रूपया वसूल किया जाना हो अपने भुगतान को अपने पास के केंद्र में जाकर रूपया या चैक से देते हैं। उस केंद्र विशेष के व्यवस्थापक ग्राहकों से प्राप्त धनराशि को बैंक में शीघ्र ही जमा करा देते हैं। इस प्रकार से प्रधान कार्यालय में ही वसूली राशि प्राप्त करने के स्थान पर कई विकेंद्रित केंद्रों में इस प्रकार की व्यवस्था करके समय व लागत दोनों में कमी करते हैं और तेजी के साथ वसूली संभव हो पाती है।

4) **चैकों की प्राप्ति के लिये शीघ्र व्यवस्था** (Quick arrangement for receipt of cheque)– बड़ी फर्में विभिन्न माध्यमों के सहारे, शीघ्रातिशीघ्र चैक को प्राप्त करने की व्यवस्था करती हैं। इसके लिये, कूरियर सेवा, प्रत्यक्ष वसूली, स्पीड पोस्ट, हवाई डाक आदि माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है।

5) **इलेक्ट्रॉनिक हस्तांतरण** (Electronic transfer) – वर्तमान में कोर बैंकिंग सेवा के माध्यम से बैंक धनराशि का इलेक्ट्रानिक हस्तांतरण कर देती है। बिना विलम्ब किये इस प्रकार धनराशि फर्म के खाते में जमा हो जाती है। इसमें समय की अत्यधिक बचत हो जाती है तथा इसका चार्जेज भी बहुत कम लिया जाता है।

ब) **रोकड़ वहिर्वाहों को न्यूनतम करना (Minimisation of cash outflows)** – भुगतान के लिये रोकड़ वहिर्वाहों को न्यूनतम करने के लिये निम्न उपाय अपनाने चाहिए –

1) **केंद्रित भुगतान केंद्र** (Centralised Disbursement Center) – इसके लिये फर्म भुगतान के लिये केवल मुख्यालय से ही सारी व्यवस्था करती हैं। भुगतानों में देरी करने का यह लोकप्रिय तरीका है, जब फर्म अपने मुख्यालय से देरी से चैक निर्गमित करती है तो उसे ग्राहक के पास पहुंचने में समय लगता है। साथ ही ग्राहक के बैंक द्वारा वसूली में भी समय लगता है। इस समय अंतराल का लाभ फर्म को मिल जाता है। इसे कार्यवाही समय (Floating Time) कहते हैं।

2) **शीघ्र भुगतान का टालना** (Avoidance of early payments) – फर्म को चाहिए कि वह भुगतान में शीघ्रता न करें। माल क्रय करने के लिये पूर्तिकर्त्ता से अधिक से अधिक समय का उधार लेना चाहिए। साथ ही नकद क्रय के स्थान पर उधार क्रय ही करना चाहिए। इस प्रकार भुगतान के लिये कुछ समय मिल जाता है।

3) **नकद कटौती का लाभ न लेना** (Leaving cash discount) – यदि फर्म नकद माल क्रय करती है तो उसे इसके लिये नकद छूट मिल सकती है। परंतु फर्म को चाहिए कि वहिर्वाह रोकने के लिये नकद छूट के लाभ को न लेकर उधार ही क्रय करना चाहिए। इससे नकद वहिर्वाह कम होगा।

4) **तरण का लाभ लेना** (Taking advantage of float) – चैक के लिखने तथा उसके भुगतान के समय में जो अंतराल होता है इस अंतराल को ही तरण कहते हैं। यदि फर्म ने चैक 01 अप्रैल को लिखकर दिया, तो प्राप्तकर्ता उसे अपने बैंक में जमा करेगा। उसे भुगतान लेने में मान लीजिये उसे 25 दिन लग जाते हैं तो इस अंतर को लाभ उठाकर फर्म इस धन का समुचित उपयोग कर सकता है। इस प्रकार से तरण का सही अनुमान लगाकर उसे उपयोगी ढंग से विनियोजित करके अपनी अर्जन क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

तरण के प्रकार एवं स्रोत

तरण का तात्पर्य उस अवधि से है जो बैंक के द्वारा भुगतान करने या प्राप्त करने के पहले व्यतीत होता है। उदाहरण के लिये, एक फर्म चैक लिखती है और उसे ग्राहक को निर्गमित करती है। उसके बाद चैक प्राप्त करने के बाद ग्राहक उसे बैंक में जमा करता है जमा करने के बाद कुछ समय के अंतराल से ही उसे भुगतान प्राप्त होता है। इस प्रक्रिया में 15 से 20 दिन लग सकते हैं। उस अवधि में वह धनराशि फर्म के पास ही रहती है। इस अवधि तक धनराशि रहने का लाभ वह फर्म उठा सकती हैं। फर्म रोकड़ के प्रबंधन की कुशलता इस तरण के माध्यम से बढ़ा सकता है यदि वह रोकड़ अंतर्प्रवाह तथा वहिर्प्रवाह की सही जानकारी प्राप्त कर लें। तरण निम्न तीन प्रकार के होते हैं –

1) **वसूली या संग्रहण तरण** (Collection float) – इसका तात्पर्य उस समय से है जबकि ग्राहक या देनदार भुगतान करता हे और वह समय जब फर्म के बैंक खाते में आ जाता है और कोष उपलब्ध हो जाता है। यदि तरण में अधिक समय लगता है तो वह निम्नलिखित तीन कारणों से हो सकता है –

   i) ग्राहकों द्वारा चैक के भेजने पर डाक संबंधी देरी के कारण

   ii) वसूली के लिये चैक को बैंक में जमा करने में देरी के कारण

   iii) उस चैक के समाशोधन करने में बैंक द्वारा देरी के कारण इस देरी को कम करने के लिये फर्म वैकल्पिक व्यवस्था पर विचार कर सकती है जिससे वसूली में कम से कम समय लगे।

2) **भुगतान तरण** (Payment float) – फर्म द्वारा चैक के निर्ममित करने पर भुगतान करने में बैंक जो समय लेती है, उसे ही भुगतान तरण कहते हैं। इस समय अंतराल का लाभ फर्म उठा सकती है। यदि उसे उस अंतराल की सही–सही जानकारी हो। रोकड़ के अभाव की स्थिति में, उससे लाभ हो सकता है, किंतु इसमें पर्याप्त सावधानी रखनी चाहिए।

3) **शुद्ध तरण** (Net float) – एक निश्चित समय पर शुद्ध तरण का तात्पर्य उस शेष से है जोकि बैंक में दिखाया जा रहा शेष है मान लीजिए कि बैंक के खाते में 50,000 रु. हैं और फर्म के खाते में केवल 30,000 रू. है तो 20,000 रू. शुद्ध तरण होगा। यदि भुगतान तरण प्राप्त तरण से अधिक हो तो उसे शुद्ध धनात्मक तरण (Positive net float) कहते हैं। यदि प्राप्त तरण, भुगतान तरण से अधिक हो तो उसे शुद्ध ऋणात्मक तरण (Negative net float) कहते हैं। यदि शुद्ध धनात्मक तरण है तो फर्म को उससे लाभ हो सकता है।

तरण के स्त्रोत निम्नलिखित हैं :–

1) बिलिंग तरण (Billing float)

2) बिल मेलिंग तरण (Bill mailing float)

3) उधारी की अवधि (Credit period)

4) चैक मेलिंग तरण (Cheque mailing float)

5) चैक प्रक्रिया तरण (Cheque processing float)

6) चैक समाशोधन तरण (Cheque clearing float)

रोकड़ प्रबंध मॉडल :

बौमोल का स्कन्ध निर्णय मॉडल
(Baumol's Inventory Decision Model)

डब्लू0 जे0 बौमोल के अनुसार ''जिस प्रकार स्कन्ध निर्णय मॉडल स्कन्ध में विनियोग के प्रबन्धक के लिये उपयोगी है जिसमें स्कन्ध आदेश की अनूकुलतम मात्रा तथा आदेशों की अनुकूलतम संख्या का निर्धारिण किया जाता है उसी प्रकार इस स्कन्ध निर्णय मॉडल (मितव्ययी आदेश मात्रा मॉडल) को रोकड़ के प्रबन्ध के लिये भी अपनाया जा सकता है। इसमें रोकड़ को स्कन्ध की भाँति माना जा सकता है। एक फर्म द्वारा अपनी भावी माँग को पूरा करने के लिये रोकड़ का पर्याप्त कोष रखा जाता है। स्कन्ध निर्णय मॉडल से रखी जाने वाली रोकड़ की अनुकूलतम राशि का निर्धारण तथा उस समय का निर्धारण करते है जब विपण्य प्रतिभूतियों एवं अल्पकालीन विनियोगों को बेच कर रोकड़ प्राप्त करना चाहिए अथवा जब रोकड़ की राशि का विपण्य प्रतिभूतियों एवं अल्पकालीन विनियोगों में विनियोग करना

चाहिये। इस मॉडल में रोकड़ शेष रखने की लागत अर्थात विनियोगों पर अर्जित किया जा सकने वाले ब्याज की हानि और प्रतिभूतियों का विक्रय करने पर वहन की जाने वाली लागत (व्यवहार लागत) के मध्य सन्तुलन स्थापित करने हैं।

बौमोल का सूत्र निम्न प्रकार के प्रयोग किया जा सकता है –

$$C=\sqrt{\frac{2bT}{i}}$$

where, C=The optmum average amount of cash to be obtained.

b= Order cost or cost of obtaining cash by one transaction.

T=The total amount of cash needed for making payments in a given period.

i=interest rates on borrowings or on marketable securities.

उदाहरण के लिये यदि एक संस्था को एक महीने में Rs.10,00,000 का भुगतान करना है जो पूरी अवधि में समान रूप से वितरित है। प्रति लेन–देन स्थायी लागत 100 रूपये और विपण्य प्रतिभूतियों पर ब्याज की दर 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। रोकड़ लेन–देन के लिये अनुकूलतम आकार को ज्ञात करना है।

यहाँ b = Rs. 100, T = Rs. 90,00,000 तथा प्रतिवर्ष तथा i = 6% प्रतिवर्ष

अर्थात् $\frac{6}{12}\% = .5\%\ or\ .005$ प्रति माह है।

$$C=\sqrt{\frac{2bT}{i}}=\sqrt{\frac{2(100)(90,00,000)}{.005}}=Rs.\ 6,00,000$$

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि अनुकूलतम नकद व्यवहार की राशि 6,00,000 होनी चाहिये और औसत नदक व्यवहार 6,00,000 ÷ 2 = 3,00,000 होना चाहिए। संस्था को महीने में 90,00,000 ÷ 6,00,000 = 15 व्यहवहार प्रतिभूतियों को बेचने के करने पड़ेंगे।

मिलर–ओर मॉडल

(The Miller-Orr Model)

मेर्टन मिलर एवं डेनियल ओर ने बताया कि स्कन्ध एवं रोकड़ प्रबन्ध की समस्याओं में बहुत अधिक समानताएँ है क्योंकि रोकड़ में भी स्कन्ध की भाँति सामयिक परिवर्तन होता है। उन्होंने एक ऐसा मॉडल विकसित किया है जो कि रोकड़ के उच्चतम एवं निम्नतम स्तर तथा विपण्य प्रतिभूतियों में विनियोजन की जाने वाली रोकड़ का समय एवं मात्रा को निर्धारित करता है। मिलर और ओर ने इस मॉडल का नाम नियन्त्रण सीमा (Control Limit Model) रखा। उनके अनुसार रोकड़ भुगतानों में अनिश्चितता के कारण स्कन्ध निर्णय मॉडल उपयुक्त नहीं रहता। नियन्त्रण सीमा मॉडल में उच्चतम एवं निम्नतम सीमाओं का निर्धारण व्यवहार

लागत तथा अवसर लागत के आधार पर किया जाता है। यह रोकड़ शेष के उच्चावचन से भी प्रभावित होती है।

मिलर–ओर मॉडल को निम्न समीकरण से स्पष्ट कर सकते है –

$$Z=3\sqrt{\frac{3b\propto^2}{4i}} \text{ or } Z=\left(\frac{3b\propto^2}{4i}\right)^{1/3}$$

Here, Z = optimal cash balance which is in between upper control limit (h) and lower control limit (1), Z is the return point.

b = fixed cost to be incurred on a transaction of sale or purchase of markable securities.

$\propto^2$ = variance of daily net cash flows.

i – interest per day on marketable securities.

इस मॉडल में जब रोकड़ शेष उच्चतम सीमा पर पहुँच जाये तो प्रतिभूतियों को खरीदकर अनुकूलतम रोकड़ शेष तक पहुंच जाते है। परन्तु जब रोकड़ शेष घटते–घटते न्यूनतम सीमा तक पहुंच जाता है तो प्रतिभूतियों को बेचकर रोकड़ प्राप्त करते है और अनुकूलतम रोकड़ शेष तक पहुंचते है। अतः अनुकूलतम रोकड़ शेष (Z) वापसी बिन्दु (Return Point) है। जिससे ऊपर की ओर रोकड़ शेष होने पर प्रतिभूतियों का क्रय होता है और नीचे होने पर प्रतिभूतियों का विक्रय किया जाता है।

आगे चित्र में 'h' अधिकतम सीमा 'I' निम्नतम सीमा और 'Z'अनुकूलतम रोकड़ शेष बिन्दु या वापसी बिन्दु (Return Point) है।

इस तथ्य को एक उदाहरण से भी स्पष्ट कर सकते हैं –

मिलर–ओर माडल का रेखाचित्र प्रदर्शन :

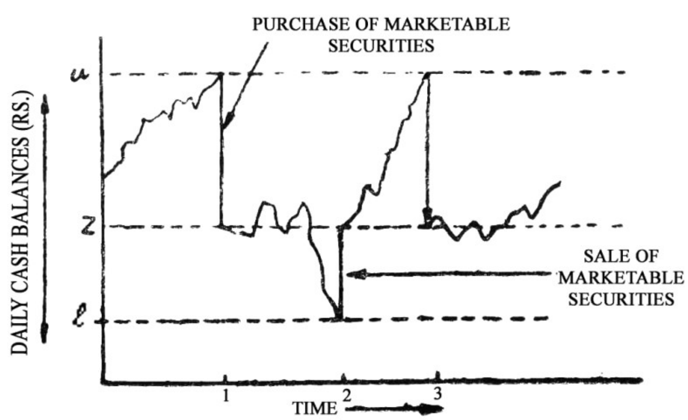

अतिरिक्त रोकड़ का विपणन योग्य प्रतिभूतियो में विनियोजन :

अतिरिक्त रोकड़ का विपणन योग्य प्रतिभूतियों में विनियोजन (Investing surplus cash in marketable securities)

यदि फर्म के पास आवश्यकता से अधिक रोकड़ है तो उसका विनियोग उचित ढंग से किया जाना चाहिए। विनियोग करने के लिये कई प्रकार की अल्पकालीन प्रतिभूतियाँ उपलब्ध हो सकती है। उनमें से सही विकल्प का चुनाव करके विनियोग के लिये उसका उचित प्रबंध किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि विनियोग के लिये प्रतिभूति ऐसी हो जिसे आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र ही रोकड़ में परिवर्तित किया जा सके।

इन विपणन योग्य अल्पकालीन प्रतिभूतियों का चुनाव करते समय निम्नलिखित तत्वों पर विशेष ध्यान देना चाहिए –

1) **सुरक्षा** (Safety) – प्रतिभूति ऐसी होनी चाहिए जिसमें जोखिम न्यूनतम हो और सुरक्षा अधिकतम हो। यदि फर्म को निकट भविष्य में रोकड़ की आवश्यकता हो तो निश्चित रूप से केवल सुरक्षित प्रतिभूतियों का ही क्रय किया जाना चाहिए। अधिक प्रतिफल देने वाली प्रतिभूतियों में जोखिम अधिक होता है। अतः उनका चुनाव नहीं किया जाना चाहिए इसमें जोखिम का तात्पर्य पूँजी और ब्याज का समय से न मिल पाने का है।

2) **परिपक्वता** (Maturity) – अल्पकालीन विपणन योग्य प्रतिभूतियों का चुनाव करते समय उनके परिपक्व होने की अवधि पर ध्यान देना चाहिए। भिन्न–भिन्न प्रतिभूतियों के लिये अवधि समाप्त होने पर मूलधन तथा ब्याज वापस लाने की अवधि अलग–अलग होती है। दीर्घकालीन प्रतिभूतियाँ जिनकी परिपक्वता की अवधि लंबी होती है, जोखिम भी अधिक होता है। लंबे समयावधि में ब्याज दर में उच्चावचन भी अधिक होता है। इस दृष्टि से अल्पकालीन प्रतिभूति का चुनाव करना चाहिए।

3) **विपणन योग्यता** (Marketability) – विपणन योग्यता का तात्पर्य सुविधा व गति से है, जिनमें प्रतिभूति या विनियोग को रोकड़ में बदला जा सके। इस संबंध में मूल्य तथा समय पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि प्रतिभूति को आसानी से तथा शीघ्र ही बेचा जा सके और उससे मूल्य की हानि भी न हो तो उसे विपणन योग्य प्रतिभूति कह सकते हैं। सरकारी कोष बिल को तरल तथा सुरक्षित माना जा सकता है।

अल्पकालीन विनियोग के प्रकार

भारत में फर्मों को कई प्रकार के विनियोग के अवसर उपलब्ध हैं। उनमें से कुछ विनियोग के प्रकार निम्नलिखित हैं –

1) **मुद्रा बाजार सामान्य कोष** (Money market mutual fund) – ये सामान्य कोष या म्यूचुअल फण्ड अल्पकालीन विपणन योग्य प्रतिभूतियों में विनियोजित करती है। केवल 30 दिनों की अवधि में ही परिपक्वता होती है। उस अवधि के उपरांत कभी भी रोकड़ वापस लिया जा सकता है। इसमें प्रतिफल भी अधिक होता है। आजकल ये भारत में कंपनियों में लोकप्रिय हो रहा है।

2) **अन्तर कम्पनी जमा** (Inter-corporate deposit) – कंपनियाँ आपस में भी लेन–देन करती हैं, जिन कंपनियों के पास अतिरिक्त रोकड़ होता है वे कम रोकड़ वाली कंपनियों में विनियोजन कर देती हैं। ये विनियोग भी अल्पकालीन होता है, किंतु इसमें जोखिम भी अधिक होता है। उससे आय तो अधिक होती है, किंतु मूलधन व ब्याज न मिलने की संभावना भी बढ़ जाती है।

3) **बैंक जमा** (Bank deposit) – यह एक आसान तरीका है। बैंक में रोकड़ कुछ निश्चित समय के लिए जमा किया जाता है। उस निश्चित अवधि से पूर्व रोकड़ नहीं निकाला जा सकता। ये जमा कई अवधियों के लिए किया जा सकता है। अलग–अलग अवधि पर अलग–अलग दर से ब्याज दिया जाता है।

4) **व्यापारिक प्रपत्र** (Commercial paper) – ये बहुत ही लोकप्रिय प्रपत्र है। इन्हें साख वाली बड़ी कंपनियां निर्गमित करती है और अल्पकालीन किंतु असुरक्षित प्रतिभूमि है। इसे तीन माह से लेकर एक वर्ष के लिये निर्गमित किया जाता है। विपणन योग्य प्रतिभूति होने के कारण, इसमें तरलता भी पर्याप्त होती है।

5) **जमा का प्रमाण–पत्र** (Certificate of deposits) – यह प्रमाण–पत्र बैंक एक निश्चित समय के लिये स्थायी जमा के बदले में निर्गमित करती है। ये प्रमाण–पत्र भी विपणन योग्य होते हैं, क्योंकि ये विनिमय प्रलेख (Negotiable instrument) होते हैं।

6) **ट्रेजरी बिल** (Treasury bill) – ट्रेजरी बिल अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूति है। सामान्यतया, इन बिलों को छूट या कटौती पर बेचा जाता है तथा उनका शोधन, परिपक्वता पर सम मूल्य पर होता है, इनमें तरलता अत्यधिक होती है तथा इन्हें कभी भी खरीदा–बेचा जा सकता है। इस प्रतिभूति में जोखिम बिल्कुल भी नहीं होता।

3.5 रोकड़ बजट

रोकड़ बजट का अर्थ

नकदी के आयोजन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाला दूसरा महत्वपूर्ण उपकरण है रोकड़ बजट। गुथमैन एवं डूगल के शब्दों में, ''किसी व्यावसायिक संस्था के लिए एक निश्चित अवधि के लिये रोकड़ स्थिति का पूर्वानुमान लगाना ही रोकड़ बजट कहलाता है।'' इस प्रकार एक रोकड़ बजट किसी निश्चित भावी अवधि के लिए रोकड़ प्रवाह का पूर्वानुमान होता है। इसे भावी रोकड़ अन्तर्वाहों तथा रोकड़ बहिर्वाहों का अनुमान लगाकर तैयार किया जाता है। ये अनुमान विक्रय उत्पादन, विपणन, सेविवर्गीय तथा उपक्रम की अन्य नीतियों पर विचार करके लगाये जाते हैं।

जब रोकड़–बजट व्यापार के लिए नकदी की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान लगा देता है तो इसका दूसरा कार्य रोकड़ नियन्त्रण के रूप में शुरू होता है। इस कार्य के लिये नकदी–बजट रिपोर्ट (Cash Budget Report) बनाई जाती है। इस रिपोर्ट का आशय वास्तविक आय–व्यय की तुलना पूर्वानुमान आय–व्यय करने से है। प्रत्येक बजट–समय की समाप्ति पर वास्तविक (Actual) व्ययों एवं बजट की राशियों में तुलना की जाती है। तुलनात्मक अध्ययन द्वारा यदि दोनों में अन्तर पाया जाता है तो अन्तर का कारण ढूंढा जाता है। नकदी–रिपोर्ट (Cash Report) नियन्त्रण करने की एक अच्छी विधि है।

गुथमैन एवं डूगल के शब्दों में, ''किसी व्यावसायिक संस्था के लिये एक निश्चित अवधि के लिए रोकड़ स्थिति का पूर्वानुमान लगाना ही रोकड़ बजट कहलाता है।

इसी प्रकार जेम्स वैन होर्ने के शब्दों में, ''एक रोकड़ बजट किसी निश्चित भावी अवधि के लिए रोकड़ प्रवाह का पूर्वानुमान होता है।''

इस प्रकार रोकड़ बजट बनाकर यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि एक परिकल्पित अवधि में अनुमानित व्ययों के लिये कितनी रोकड़ की आवश्यकता होगी और फर्म की सामान्य गतिविधियों से (नकद बिक्री, उधार की वसूली आदि) कितनी रोकड़ एकत्रित हो सकती है। इस प्रकार रोकड़ बजट बनाने का मुख्य उद्देश्य उपक्रम की शोधन क्षमता (Solvency) को बनाये रखना है, एक रोकड़ बजट प्रायः एक वर्ष के लिए बनाया जाता है जिसे भविष्य में छमाही, तिमाही अथवा मासिक आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है।

रोकड़ बजट बनाने के लिए वित्तीय प्रबन्ध को निम्न कार्य करने पड़ते है –

(अ) **प्राप्तियों का पूर्वानुमान लगाना** (Estimating Cash-inflow) – रोकड़ बजट बनाने में सबसे पहला कदम रोकड़ प्राप्तियों से विभिन्न साधनों को निश्चित करके उनसे प्राप्त होने वाली रोकड़ का पूर्वानुमान लगाना है। रोकड़ की प्राप्ति नकद बिक्री, देनदारों से

वसूली, प्राप्य बिलों से भुगतान, अग्रिम तथा ऋणों पर ब्याज, स्थिर सम्पत्तियों की बिक्री से प्राप्य आय आदि से होती है। नकद बिक्री से प्राप्त हो सकने वाली रोकड़ का पूर्वानुमान तो गत वर्षों में हुई नकद बिक्री तथा उधार बिक्री के पारस्परिक अनुपात के आधार पर लगाया जा सकता है। परन्तु उधार बिक्री से प्राप्त होने वाली रोकड़ का पूर्वानुमान लगाना प्रायः कठिन होता है। इसके लिए व्यवसाय की प्रकृति, साख नीति, देय नकद कटौतियाँ, वसूली की अवधि तथा अपने ग्राहकों की साख–स्थिति आदि कई तत्वों को ध्यान में रखना पड़ेगा।

(ब) **भुगतानों का पूर्वानुमान लगाना** (Estimating Cash-outflows) – इसका अनुमान लगाने के लिये सामग्री के क्रय, मजदूरी, प्रत्यक्ष उपरिव्यय, ऋणदाताओं को दिये जाने वाले भुगतान, कर दायित्वों का अनुमान तथा लाभांश देयता आदि का अनुमान लगाया जाता है, लेकिन ऐसा कोई भी व्यय इनमें सम्मिलित नहीं किया जाता जिस पर रोकड़ का व्यय नहीं होता, जैसे ह्रास की व्यवस्था आदि। ऋणदाताओं के भुगतान के लिये आवश्यक रोकड़ का अनुमान लगाते समय पिछले अनुभवों के आधार पर छूट आदि की व्यवस्था करनी चाहिये।

रोकड़ बजट एवं वित्तीय बजट (Cash Budget and Financial Budget) – वित्तीय बजट रोकड़ बजट का ही एक विस्तृत रूप है। बड़े उपक्रमों में रोकड़ बजट को दो भागों में तैयार किया जाता है रोकड़ बजट तथा वित्तीय बजट। ऐसा करने पर रोकड़ बजट में केवल नकद प्राप्तियों तथा नकद भुगतानों की प्रविष्टि की जाती है और नकदी कोष वित्तीय बजट से ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार वित्तीय बजट भी तैयार करने पर रोकड़ बजट बहुत संक्षिप्त रह जाता है और इसमें केवल व्यावसायिक क्रियाओं से सम्बन्धित नकद व्यवहारों का ही लेखा रहता है जबकि वित्तीय बजट इन क्रियाओं का नकदी शेषों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह दर्शाता है। इस प्रकार वित्तीय बजट वित्तीय प्रबन्ध के हाथों में ऐसा महत्वपूर्ण उपकरण है जिसके माध्यम से वह यह जान सकता है कि परिकल्पित अवधि में नकदी की कितनी कमी रहेगी या आधिक्य रहेगा। यदि वित्तीय बजट के अनुसार नकदी की कमी दिखलायी पड़ती है तो इसके लिए प्रबन्ध पहले से ही आवश्यक साधनों की व्यवस्था कर सकता है और यदि नकदी का आधिक्य दिखाई देता है तो इसके लाभदायक विनियोगों, किसी ऋण के भुगतान अथवा लाभाँश बाँटने की व्यवस्था की जा सकती है। वित्तीय बजट बनाने के लिये पहले प्रक्षेपित स्थिति–विवरण तथा लाभ–हानि खाता भी बनाया जाता है।

रोकड़ बजट के कार्य/महत्व (Functions or Advantages of Cash Budget) –

रोकड़ बजट कार्यशील पूँजी के नियन्त्रण एवं नियोजन के लिये वित्तीय प्रबन्ध के हाथों में एक उपयोगी उपकरण है। इसकी सहायता से उपलब्ध रोकड़ साधनों का वैकल्पिक उपयोग करते हुए अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। संक्षेप में, इसके निम्नलिखित भाग है –

(1) **कोषों की भावी आवश्यकता का अनुमान लगाना** (Forecasting the future needs of funds) – रोकड़ बजट की सहायता से भावी वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कब और कितनी मात्रा में रोकड़ की आवश्यकता होगी। समय से पहले ही आवश्यकता का पता लग जाने से उचित पूँजी लागत पर वित्त की व्यवस्था की जा सकती है।

(2) **रोकड़ व्ययों पर नियन्त्रण** (Controlling cash expenditures) – यह रोकड़ व्ययों पर नियन्त्रण रखने की उपयोगी युक्ति है। इसकी सहायता से उपक्रम के विभिन्न विभागों द्वारा किये जाने वाले व्ययों को नियन्त्रित किया जा सकता है ताकि वे उपक्रम के उद्देश्य तथा वित्तीय साधनों के अन्दर ही अन्दर रहें।

(3) **उचित रोकड़ शेषों का रखना** (Maintenance of Ample Cash Balance) – रोकड़ उपक्रम की वित्तीय सरलता (liquidity) का आधार होते है। प्रबन्धक यह भली–भांति जानते है कि उचित तरलता के अभाव में उत्पादन घट सकता है और उत्पादन घटने से आय घट जाती है। अतः रोकड़ बजट इन सन्दर्भ में सबसे उपयोगी यह काम करता है कि यह उचित रोकड़ शेष बनाये रखने में सहायक होता है।

(4) **रोकड़ के नियोजन में सहायता** (Helpful in Planning) – रोकड़ बजट रोकड़ के नियोजन में भी सहायता पहुंचाता है। यह निश्चित अवधि अन्तरालों पर रोकड़ की कमी अथवा रोकड़ के आधिक्य को प्रदर्शित करता है। रोकड़ कमी के समय अस्थायी साधनों से वित्त का प्रबन्ध किया जा सकता है तथा रोकड़ आधिक्य को अस्थायी (अल्पकालीन) विनियोगों में लगाया जा सकता है।

(5) **प्रस्तावित विस्तार कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता की जांच** (Testing the influence of proposed expansion programmes) – रोकड़ बजट की सहायता से किसी भी प्रस्तावित विस्तार कार्यक्रम अथवा विनियोग कार्यक्रमों से प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों (cash inflows) का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है और उसकी उत्पादकता आदि की जांच की जा सकती है।

(6) **वित्तीय निष्पादन का मूल्यांकन** (Evalution of Performance) – एक रोकड़ बजट वित्तीय निष्पादन के मूल्यांकन के लिये एक प्रमाप की भाँति कार्य करता है।

(7) **सुदृढ़ लाभाँश नीति** (Sound Dividend Policy) – इसकी सहायता से एक श्रेष्ठ एवं नियमित लाभाँश नीति का अनुसरण किया जा सकता है तथा अंशधारियों को सन्तुष्ट रखा जा सकता है।

(8) **दीर्घकालीन नियोजन एवं समन्वय का आधार** (Basis of Long term Planing and Co-ordination) – रोकड़ बजटन की सहायता से कार्यशील पूँजी, विक्रय, प्रबन्ध, साख

प्रबन्ध, विनियोग प्रबन्ध आदि कार्यों में समन्वय तथा सहयोग स्थापित किया जा सकता है। यह वित्तीय प्रबन्ध की क्षमता/अक्षमता पर प्रकाश डालता है और आवश्यकतानुकूल कदम उठाने के लिये प्रेरणा देता है। यह दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन का आधार है।

रोकड़ बजट तैयार करना (Preparation of Cash Budget)

उपक्रम में रोकड़ बजट बनाने का प्रमुख दायित्व बजट नियन्त्रक या प्रधान वित्तीय अधिकारी पर होता है। सामान्यतता रोकड़ बजट की अवधि अन्य विभागीय बजटों के अनुरूप ही रखा जाती है। इसमें दीर्घकालीन व अल्पकालीन दोनों ही प्रकार के पूर्वानुमान दिये जा सकते हैं। अधिकाँशतः यह बजट एक वर्ष के लिये तैयार किया जाता है और उसे व्यवसाय की प्रकृति और रोकड़ स्थिति के अनुसार तिमाही, मासिक, साप्ताहिक या दैनिक अवधियों में विभाजित किया जाता है। यदि व्यवसाय की रोकड़ स्थिति सुदृढ़ नहीं है या व्यावसायिक क्रियायें अस्थिर है तो साप्ताहिक या दैनिक आधार पर बजट बनाना ही लाभदायक होगा।

रोकड़ बजट बनाने की विधियां (Methods of Cash Budget)

रोकड़ बजट बनाने की तीन पद्धतियाँ है –

(1) प्राप्ति एवं शोधन पद्धति (Receipts and Payments Method),

(2) समायोजित लाभालाभ पद्धति (Adjusted Profit and Loss Method or Adjusted Earnigng Method),

(3) स्थिति–विवरण पद्धति (Balance Sheet Method)।

हम नीचे रोकड़ बजट बनाने की पहली विधि का वर्णन कर रहे हैं क्योंकि यही व्यवहार में सबसे अधिक लाई जाती है।

(1) **प्राप्ति एवं शोधन पद्धति** – यह सर्वाधिक प्रचलित पद्धति है। अल्पकालीन रोकड़ पूर्वानुमानों के लिए सामान्यतया इसी पद्धति का प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति अन्य दोनों पद्धतियों से अधिक विस्तृत है क्योंकि इसके अन्तर्गत बजट अवधि की सभी रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतानों को प्रकट किया जाता है। इसके निर्माण के लिए रोकड़ सम्बन्धी सूचनायें अन्य बजटों से प्राप्त की जाती है।

इस पद्धति में रोकड़ बजट को दो भागों में विभाजित किया जाता है। एक भाग में रोकड़ प्राप्ति की राशि व समय और दूसरे भाग में रोकड़ भुगतान की राशि व समय दिखलाया जाता है।

(अ) **रोकड़ प्राप्तियाँ** (Cash Receipts) – व्यवसाय में रोकड़ प्राप्ति के निम्न स्रोत होते हैं–

(i) **क्रिया–कलापों से उत्पन्न रोकड़ प्राप्तियाँ** (Cash Receipts arising from operations) – इसके अन्तर्गत ग्राहकों से प्राप्त अग्रिम, नकद बिक्री व देनदारों तथा प्राप्त बिलों से उगाही गई राशि आती है। नकद बिक्री से रोकड़ प्राप्ति का पूर्वानुमान अपेक्षाकृत सरल होता है परन्तु इस सम्बन्ध में संस्था की नकद छूट नीति को ध्यान में रखना चाहिए। उधार बिक्री की दशा में विक्रय की शर्तों, साख नीति, ग्राहकों की स्थिति, व्यवसाय की परिपाटी, और विक्रय बिन्दु तथा वसूली बिन्दु के बीच समयान्तर (Time lag) पर उचित ध्यान देना चाहिए। इसके सम्बन्ध में साख व वसूली विभाग महत्वपूर्ण आँकड़े एकत्रित कर सकता है।

(ii) **गैर क्रिया–कलाप रोकड़ प्राप्तियाँ** (Non-operating cash receipts) – इसमें ब्याज, लाभाँश, किराया, कमीशन, रायल्टी, स्क्रेप की बिक्री, कर वापसी, गैर क्रियाकलाप आय सम्मिलित की जाती है।

(iii) **पूँजी–सौदों से रोकड़ प्राप्तियाँ** (Cash receipts from capital transactions) – इसमें स्थायी सम्पत्तियों व विनियोगों के विक्रय, अंशों की विक्री, कर वापसी, गैर क्रियाकलाप आय सम्मिलित की जाती है।

(ब) **रोकड़ भुगतान** (Cash Disbursements) – रोकड़ भुगतान की राशि निम्न मदों में मालूम की जा सकती है –

(i) **क्रिया–कलापों के लिये भुगतान** (Cash Disbursements for operations) – इसमें निम्नलिखित है –

(A) **रोकड़ क्रय तथा देय खाते** (Cash purchases and accounts payable) – इसमें कच्चे माल के विक्रेताओं को दिये जाने वाले अग्रिम, क्रय के समय किये जाने वाली रोकड़ी भुगतान व लेनदारों को दिये जाने वाले भुगतान सम्मिलित है। ये अनुमान क्रयकी शर्तों, प्राप्य छूट और क्रय बिन्दु व भुगतान बिन्दु के बीच समयान्तर (time lag) पर आधारित होते हैं।

(B) **श्रम** (Labour) – इसमें मजदूरी भुगतान में समयान्तर पर ध्यान रखना चाहिए।

(C) **उपरिव्यय** (Overheads) – इसमें कारखाना उपरिव्यय, विक्रय एवं वितरण उपरिव्यय तथा प्रशासन व सामान्य उपरिव्यय के लिए किए जाने वाले भुगतान सम्मिलित होते हैं। इस लागतों के सम्बन्ध में भुगतान के समयान्तर पर ध्यान रखना चाहिए।

(ii) **गैर क्रियाकलापों व्ययों के लिए भुगतान** (Cash disbursements for non-operative expenses) – इसमें वित्तीय व्यय (ब्याज, किराया, लाभाँश, बोनस आदि), दान, आय–कर आदि के लिए किए जाने वाले भुगतान सम्मिलित है। इन व्ययों को उस अवधि में दिखलाया जाये जिनमें इनका वास्तविक भुगतान किया जाता है।

(iii) **पूँजी सौदों के लिए भुगतान** (Cash disbursements for capital transactions)– यह स्थायी सम्पत्तियों व प्रतिभूतियों के क्रय के लिए आवश्यक रोकड़ अनुमानों से सम्बन्धित है। इसमें बैंक अधिविकर्ष की अदायगी, ऋण–पत्रों का भुगतान आदि मदें भी सम्मिलित की जाती है।

प्रत्येक अवधि के प्रारम्भिक रोकड़ शेष में उस अवधि में प्राप्त कुल रोकड़ को जोड़कर प्राप्त राशि से कुल भुगतान घटा दिये जाते हैं तथा शेष राशि नियंत्रण अवधि के अंतिम रोकड़ शेष को दर्शाता है।

(2) **समायोजित लाभालाभ पद्धति** (Adjusted Profit and Loss Method) – जहाँ पर रोकड़ के दीर्घकालीन पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं, वहाँ पर यह पद्धति उपयुक्त रहती है। इसे 'धन–प्रवाह तालिका' भी कहते हैं क्योंकि इसके अन्तर्गत लाभ–हानि खाते को ही रोकड़ पूर्वानुमान में परिवर्तित किया जाता है। यह पद्धति बजटरी नियन्त्रण के लिए बहुत उपायेगी है।

इस पद्धति के अन्तर्गत रोकड़ के प्रारम्भिक शेष में बजट अवधि के अनुमानित लाभों को जोड़कर रोकड़ का अन्तिम शेष निकाला जाता है। इस पद्धति का मूल आधार यह है कि किसी अवधि में व्यवसाय मे जितने लाभ अर्जित किय जाते है उससे इस व्यवसाय में उतनी ही रोचकता में वृद्धि होगी (अर्थात् लाभ रोकड़) अतः यदि सम्बन्धित अवधि में कोई उधार सौदे, पूँजी सौदे, सभूत राशियाँ (Accruals), प्रावधान, स्टाक परिवर्तन या लाभ–समायोजन न हों तो लाभ–हानि खाते में दिखलाया गया शेष रोकड़ वही के रोकड़ शेष के बराबर होगा। यह मान्यता अव्यवहारिक है क्योंकि उपर्युक्त बातें कभी स्थिर नहीं रहती। अतः इस मान्यता में कुछ समायोजन करने आवश्यक हो जाते है। इस पद्धति में रोकड़ पूर्वानुमान बजट अवधि के लाभों से प्रारम्भ होते है और फिर इस अंक को निम्नलिखित मदों से समायोजित किया जाता है –

(अ) **जोड़े जाने वाली मदें** (Items to be added) :

(1) व्ययों की गैर–रोकड़ी मदें : ये व्यय की ऐसी मदें है जो कि लाभ–हानि खाते के नाम तो लिख दी जाती है परन्तु जिनसे रोकड़ बहिर्वाह (cash outflow) नहीं होता। ये निम्नलिखित हो सकती है –

(i) ह्रास (Depreciation)

(ii) अपलिखित स्थगित व्यय (Written off deffered expenses)

(iii) अपलिखित अमूर्त सम्पत्तियाँ (Written off fictitious assets)

(iv) अपलिखित पूर्वदत्त व्यय (Written off prepaid expenses)

(2) दो अवधियों के बीच सम्पत्तियों और शुद्ध मूल्य (Net Worth) में परिवर्तन जो कि नकदी की मात्रा में वृद्धि लाते है। ये निम्नलिखित है –

(i) अन्तिम स्कन्ध में कमी

(ii) विविध देनदारों में कमी

(iii) विभिन्न लेनदारों व अन्य दायित्वों में वृद्धि

(iv) उपार्जित व्यय (Accrued expenses)

(v) संयन्त्रों व अन्य स्थाई सम्पत्तियों का विक्रय

(vi) पूँजी का निर्गमन

(vii) ऋण–पत्रों का निर्गमन।

(ब) **घटाये जाने वाली मदें** (Items to be deducted) :

(1) **आय की गैर–रोकड़ी मदें** – ये आय की ऐसी मदें हैं जिन पर आय बजट अवधि में अर्जित तो कर ली जायेंगी, परन्तु प्राप्त न हो सकेंगी, जैसे उपार्जित किराया, ब्याज, लाभाँश, रायल्टी आदि।

(2) दो अवधियों में सम्पत्तियों, दायित्वों और शुद्ध मूल्य के परिवर्तन जो कि रोकड़ की मात्रा में कमी लाते है। ये निम्नलिखित हो सकते हैं –

(i) अन्तिम स्कन्ध में वृद्धि

(ii) विविध देनदारों में वृद्धि

(iii) विविध लेनदारों व अन्य दायित्वों में कमी

(iv) गत अवधि के अदत्त भुगतान
(v) ऋण–पत्रों या शोध्यनीय पूर्वाधिकार अंशों का शोधन
(vi) पूँजी वापसी
(vii) लाभाँश भुगतान
(viii) सम्पत्तियों का क्रय
(ix) अंशों या प्रतिभूतियों का क्रय।

(3) **स्थिति–विवरण पद्धति** (Balance Sheet Method) – रोकड़ के पूर्वानुमान लगाने की यह पद्धति सिद्धांत रूप में समायोजित लाभा–लाभ पद्धति के अनुरूप ही है। यह पद्धति रोकड़ के दीर्घकालीन पूर्वानुमान के लिये बहुत उपयुक्त है। इस पद्धति के अन्तर्गत आगामी अवधि के लिये, केवल रोकड़ को छोड़कर अन्य सभी मदों को दर्शाते हुये अनुमानित स्थिति विवरण बना लिया जाता है। फिर स्थिति विवरण के दोनों पक्षों की सन्तुलित किया जाता है, अन्तर रोकड़ शेष कहलाता है। यदि सम्पत्ति पक्ष को योग दायित्व पक्ष के योग से अधिक होता है तो वह अन्तर बैंक में रोकड़ शेष प्रकट करता है।

3.6 सारांश

कार्यशील पूँजी का तात्पर्य दिन-प्रतिदिन के फर्म के परिचालन के लिए विभिन्न व्ययों के लिए आवश्यक पूँजी से है। इसकी परंपरागत तथा आधुनिक अवधारणायें हैं। कार्यशील पूँजी दो प्रकार की होती है – सकल कार्यशील पूँजी तथा शुद्ध कार्यशील पूँजी। समस्त चल संपत्तियों के योग को सकल कार्यशील पूँजी तथा सकल चालू संपत्तियों एवं सकल चालू दायित्वों के अंतर को शुद्ध कार्यशील पूँजी कहते हैं। शुद्ध कार्यशील पूँजी गुणात्मक पहलू है और यह धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों ही हो सकता है। कार्यशील पूँजी स्थायी तथा अस्थायी दोनों ही होती है।

प्रत्येक व्यवसाय में रोकड़ का कुशल प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। अनुकूलतम रोकड़ का निर्धारण करके उसमें लागत में कमी की जनि चाहिए। रोकड़ धारण करने के उद्देश्य हैं – व्यवहार उद्देश्य, सतर्कता उद्देश्य तथा सट्टा उद्देश्य। रोकड़ प्रवाह की अनेक समस्याएं हैं। इनके विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करके इस संबंध में समय से उपाय किया जाना चाहिए। फर्म में आवश्यक तरलता बनाये रखना चाहिए। इसके लिए सुधारात्मक उपाय अपनाना चाहिए।

3.7 बोध प्रश्न

1. कार्यशील पूँजी किसे कहते हैं ?
2. कार्यशील पूँजी के प्रबन्ध की महत्ता समझाइये।
3. ''कार्यशील पूँजी की अधिकता एवं न्यूनता दोनों हानिकारक है'' इस कथन की व्याख्या करें।
4. कार्यशील पूँजी के प्रकार एवं इसके अवयवों का वर्णन कीजिए।
5. कार्यशील पूँजी के प्रबन्ध में क्षमता के मापदण्डों को विस्तार से समझाइये।
6. कार्यशील पूँजी के अनुमान में आवश्यक बातों का उल्लेख कीजिए।
7. कार्यशील पूँजी के पूर्वानुमान की तकनीकों का वर्णन कीजिए।
8. रोकड़ प्रवाह विवरण को परिभाषित करें तथा कोष प्रवाह एवं रोक–प्रवाह में भेद कीजिए।
9. लेखांकन प्रमाप–3 के अनुसार रोकड़ प्रवाह विवरण के संशोधित प्रारूप पर विस्तार से चर्चा करें।
10. रोकड़ प्रवाह विवरण की प्रत्यक्ष विधि की उपयोगिता का वर्णन करें तथा रोकड़ प्रवाह विवरण एवं रोकड़ बजट में भेद कीजिए।
11. रोकड़ प्रवाह विश्लेषण के उपयोगों का वर्णन करें।
12. रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार करने से पहले की जाने वाली तैयारी का वर्णन करें तथा अप्रत्यक्ष विधि को प्रमाणित प्रारूप तैयार करें।
13. रोकड़ प्रवाह विवरण को परिभाषित करें तथा कोष प्रवाह एवं रोक–प्रवाह में भेद कीजिए।
14. लेखांकन प्रमाप–3 के अनुसार रोकड़ प्रवाह विवरण के संशोधित प्रारूप पर विस्तार से चर्चा करें।
15. रोकड़ प्रवाह विवरण की प्रत्यक्ष विधि की उपयोगिता का वर्णन करें तथा रोकड़ प्रवाह विवरण एवं रोकड़ बजट में भेद कीजिए।
16. रोकड़ प्रवाह विश्लेषण के उपयोगों का वर्णन करें।
17. रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार करने से पहले की जाने वाली तैयारी का वर्णन करें तथा अप्रत्यक्ष विधि को प्रमाणित प्रारूप तैयार करें।

3.8 संदर्भ ग्रंथ

- गोयल, डी. के. एवं गोयल, एस. (2017) वित्तीय प्रबंधन, पांचवां संस्करण, अविचल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली
- Prasanna Chandra (2011) Financial Management, Eighth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

- Parrino & Kidwell (2011) Fundamentals of corporate finance, First Edition, Wiley India Pvt. Ltd., New Delhi.
- Khan and Jain (2011) Financial Management (Text Problems and Cases), Fifth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई – IV : लाभांश

इकाई की संरचना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 लाभांश का अर्थ एवं परिभाषा

4.4 लाभांश के प्रकार एवं लाभांश नीति

4.5 सुदृढ़ लाभांश नीति की पूर्व आवश्यकताएं

4.6 वाल्टर, गॉर्डन तथा मोदीगिलानी एवं मिलर के लाभांश मॉडल

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्न

4.9 संदर्भ ग्रंथ

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आपको अवगत हो जायेगा कि

- लाभंश का अर्थ एवं उसके उद्देश्य से आप रूबरू हो जाओंगे।
- लाभांश की अवधारणा एवं उसके प्रकार को समजेंगे।
- लाभांश की संबंधित विभिन्न नीतियों का विश्लेशण कर सकेंगे।
- स्थिर लाभांश के लाभ को समजेंगे।
- सुदृढ़ लाभांश्ज्ञ नीति की पूर्व आवश्यकताएं को जानेगे।
- लाभां”ा के विभिन्न माडल को समजोंगे।

4.2 प्रस्तावना

कंपनी की आय का जो हिस्सा भागधारक में वितरित किया गया उसे लाभांश कहा जाता हैं। कंपनी में शेयरधारकों अपने निवेश राशी के बदले उन्हें जो लाभ दिया जाता हैं उसे लाभांश कहते हैं। शेयरधारक यह कंपनी में अपने निवेश पर अधिक से अधिक डिविडेंड और साथ ही अपनी संपत्ति में वृद्धि करना चाहते हैं। याउलट कंपनी को अपने व्यवसाय की दीर्घकालिक विकास योजना तैयार करने के लिए हैं बड़े पैमाने पर वित्तीय प्रबंधन द्वारा निधि बनाने की आवश्यकता हैं। कंपनी द्वारा प्राप्त आय में से अधिकतम आय लाभांश के रूप में शेयरधारकों को बांटा जाता है, तो भविष्य में कंपनी के विस्तार योजना के लिए कंपनी को पूंजीकरण की स्थापना के लिए बाह्य स्रोतों पर निर्भर रहना होगा। इसलिए शेयरधारकों का हित से सम्बंधित सुरक्षित रख कर कंपनी का भविष्यफल कालीन विकास के लिए उपयुक्त राशी शेष रहेगी इस प्रकार की लाभांश्ज्ञ नीति निर्धारित करना कंपनी को आवश्यक हैं। कंपनी के शेयरधारकों के लिए कंपनी की मूल्यांकन बढ़ाना यही लाभांश नीति के उद्देश्य होता हैं। इसलिए डिविडेंड पॉलिसी निश्चित करने के लिए कंपनी की संपत्ति में बढ़ोत्तरी होगी और शेयरधारकों को अपने हिस्से का उचित भुगतान प्राप्त होगा। इसी तरह की नीति को स्वीकार करना चाहिए।

4.3 लाभांश का अर्थ एवं परिभाषा

कंपनी की आय का जो हिस्सा भागधारक में वितरित किया गया उसे लाभांश कहा जाता हैं। कंपनी में शेयरधारको को अपने निवेश राशी के बदले उन्हें जो लाभ दिया जाता हैं उसे लाभांश कहते हैं। कंपनी को केवल शुद्ध लाभ के माध्यम से प्राप्त राशी में से ही लाभांश को वितरित किया जा सकता हैं। कंपनी के पूंजी राशी में से लाभांश का शोधन नही किया जा सकता। कंपनी की संपत्ति पर मूल्यह्रास और कर की रकम को शुद्ध लाभ से घटाकर, शेष मुनाफे में से लाभांश का शोधन किया जा सकता है। निदेशक मंडल को लाभांश की दर निर्धारत करने का अधिकार होता है।

4.4 लाभांश के प्रकार एवं लाभांश नीति

लाभांश के प्रकार

निम्नाकित प्रकार से लाभांश का शोधन किया जाता है।

1. **रोकड लाभांश (Cash Dividend)** – सामान्यतः जो कंपनी रोकड के रूप में लाभांश का भुगतान करती है ऐसे लाभांश को रोकड लाभांश कहते है।
2. **स्कंध या बोनस अंश लाभांश (Stock Dividend)** – अगर शेयरधारक को रोकड के रूप में लाभांश का शोधन नही करते हुए बोनस अंश के रूप में अधिसूचित किया

जाता है, तो उसे एक स्कंध या बोनस अंश लाभांश कहा जाता है। जिससे लाभ राशी का पुंजीकरण में परिवर्तन होता है।

3. **बांड या ऋण पत्र लाभांश (Bond or Debenture Dividend)** – अगर शेयरधारक को बांड या ऋण पत्र के रूप में लाभांश प्रदान किया जाता है तो ऐसे लाभांश को बांड या ऋण पत्र लाभांश कहते है।
4. **संपत्ती लाभांश (Property Dividend)** – जब किसी वर्ष में कंपनी को लाभांश देना संभव नहीं होता है ऐसे समय लाभांश को सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में वितरित किया जाता है। लेकिन आधुनिक समय में यह विधि बंद कर दी गई है।
5. **अंतरिम लाभांश (Interim Dividend)** – कंपनी के वित्तीय वर्ष के पहले भी, यदि निदेशक मंडल शेयरधारकों को एक विशेष दर पर लाभांश घोषित करता है, तो इसे अंतरिम या मध्य–लाभांश कहा जाता है। इस प्रकार, व्यापार की जरूरतों की मांग पर विचार करने के बाद, शुद्ध लाभ के कुछ हिस्सों को व्यवसाय में निवेश किया जाता है और शेष हिस्से को शेयरधारकों में लाभांश के रूप में वितरित किया जाता है।
6. **पूर्वाधिकार लाभांश (Preference Dividend)** – पूर्वाधिकार लाभांश का अर्थ लाभांश के उस प्रकार से है जिसका भुगतान पूर्वाधिकार अंशो के प्रतिफल स्वरूप किया जाता है। पूर्वाधिकार लाभांश के भुगतान का दर इस प्रकार के अंश के निर्गमन के समय निच्छित किया जाता है। पूर्वाधिकार अंश धारक समता अंश धारकों की तुलाना में सर्वप्रथम लाभांश पाने के हकदार होते है। पूर्वाधिकार अंश धारकों को समता अंश धारकों से सर्वप्रथम लाभांश्ज्ञ का भुगतान किया जाता है। लाभांश का भुगतान करने या ना करने का निर्णय निदेशक मंडल द्वारा लिया जाता है। किन्तु कम्पनी द्वारा लाभांश घोषित करने पर पूर्वाधिकार अंश धारकों की प्राथमिकता तथा पूर्वनिर्धारित निच्छित दर में बदल करने का इन्हे कोई अधिकार नही होता।
7. **समता लाभांश (Equity Dividend)** – समता अंश धारक कम्पनी के असली मालिक होते है। इस प्रकार के लाभांश का भुगतान कम्पनी द्वारा देय ऋण पत्रों पर देय ब्याज, ह्रास, संचित कर भुगतान एवं अधिमान/पूर्वाधिकार अंशधारकों के लाभांश इत्यादी के भुगतान के उपरांत शेष राशी में से किया जाता है। समता अंशधारकों को भुगतान करने या ना करने, एवं लाभंश की दर तथा भुगतान का माध्यम जैसे की रोकड़/बोनस अंश लाभांश/संपत्ती लाभांश पर निर्णय लेने के लिए निदेशक मंडल को पूर्ण स्वतंत्रता होती है।
8. **नियमित लाभांश (Regular Dividend)** – कम्पनी हर वित्तीय वर्ष में समापन पर निदेशक मंडल द्वारा घोषित लाभांश ही नियमित लाभांश कहलाता है। कम्पनी के विभाजन योग्य लाभों में से इस प्रकार के लाभांश की घोषणा की जाती है। अंशधारकों को देय सामायिक भुगतान के स्वरूप में इसे स्वीकार किया जाता है।
9. **लाभ लाभांश (Profit Dividend)** – कम्पनी को अगर लाभ प्राप्त होता है तो अर्जित लाभों में से लाभ लाभांश का भुगतान किया जाता है। चालू वर्ष के लाभागत वर्षों के संचित लाभ तथा सहाय्यक कम्पनी द्वारा अर्जित लाभों में से लाभ लाभांश का भुगतान

किया जा सकता है। लाभांश नीति निर्धारण के अंतर्गत प्रायः लाभ लाभांश को ही केंद्रबिंदु मन जाता है।

10. **वैकल्पिक लाभांश (Alternative Dividend)** – कम्पनी द्वारा जब अपने अंशधारकों को लाभांश रोकड़ लेने अथवा सम्पति के रूप में लेने सम्बन्धी विकल्प दिया जाता है तब उसे वैकल्पिक लाभांश कहते है।
11. **समापन लाभांश (Liquidation Dividend)** – कम्पनी के समापन पर जो लाभांश का भुगतान किया जाता है उसे समापन लाभांश कहते है। कम्पनी द्वारा देय यह अंतिम लाभांश्झ होता है। इस प्रकार के लाभांश को रोकड़ अथवा सम्पति के रूप में भुगतान किया जाता है। परन्तु प्रायः यह देखा गया है की इस प्रकार के लाभांश व्यावहारिक तौर पर नही दिए जाते।

लाभांश नीति के प्रकार

लाभांश नीति के निम्नांकित प्रमुख प्रकार हैं –

1. **नियमित लाभांश नीति (Regular Dividend Policy)** – एक सामान्य दर से लाभ का वितरण करना, जिसका अर्थ ही 'नियमित लाभांश' है। नियमित लाभांश नीति के कारण कंपनी का एक लाभकारी इतिहास स्थापित होता है जिससे शेयरधारकों में उत्साह स्थापित होकर आत्मविश्वास पैदा होता है। यह नीति कंपनी के दीर्घकालिक पूंजी निधि के लिए सहायक है। नियमित लाभांश्झ नीति के कारण, कंपनी के शेयरों की कीमतों पर बाजार में स्थिरता प्रदान होती है। जिस कंपनी को स्थिरता स्थापित हुई है एवं सभी भविष्य की योजनाएं की आपूर्ति की गई है ऐसी कंपनी नियमित लाभांश नीति को स्वीकार कर सकती है।
2. **स्थिर लाभांश नीति (Stable Divident Policy)** – यह एक स्थिर लाभांश की रणनीति है जिसमें रिटर्न की लाभांश दर कम जादा नहीं होती है। रिटर्न की लाभांश दर स्थिर रहती हैं। यह एक निश्चित लेकिन न्यूनतम लाभांश के लिए नियमित प्रदान करना ही स्थिर लाभांश हैं। कुछ कंपनियां लाभ की हद तक ध्यान दिए बिना एक मोचन नीति की एक निश्चित राशि को देखते हैं तो कुछ कंपनियां प्रत्येक वर्ष के लाभ पर एक निश्चित प्रतिशत दर पर लाभांश वितरित करती हैं। इससे कंपनी अपने व्यवसाय को कुशलतापूर्वक और सफलतापूर्वक प्रबंधित करती है इस पर शेयरधारक विश्वास करते हैं। बाजार में कंपनी के अंशो की किंमत स्थिर रहती हैं जिससे कंपनी के वित्तीय संस्थानों के लिए कंपनी में निवेश करना फायदेमंद होता हैं। इसी तरह देश की राष्ट्रीय आय में प्रवाह उत्पन्न करने के लिए स्थिर लाभांश नीति उपयोगी है।
3. **अनियमित लाभांश नीति (Irregular Diviend Policy)** – जिन कंपनियों को लाभ प्राप्ति में अनिश्चितता होती; व्यवसाय ठीक से संचालित नहीं हो रहा है, तरल संपत्ति का अभाव है, तथा कंपनी के वित्तीय पक्ष पर लाभांश के वितरण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभवना होती है। कंपनी को अनियमित लाभांश नीति को स्वीकार करना

होगा। इस नीति के अनुसार, यदि कंपनी को लाभ मिलता है तो ही लाभांश केवल शेयरधारकों को वितरित किए जाते हैं।

इसी तरह, लाभ हो कर भी अगर इसका उपयोग व्यवसाय के संचालन या तरल संपत्तियों के निर्माण के लिए किया गया तो शेयरधारकों को लाभांश नहीं दिए जाते हैं। आम तौर पर अनियमित लाभांश नीति यह गारंटी नहीं देती है कि लाभांश्ज्ञ का भुगतान शेयरधारकों को किया जाना चाहिए।

4. **शून्य लाभ नीति (Nil Dividend Policy)** – जब कंपनी में परिचालन पुंजी की स्थिति बहुत प्रतिकूल है या कंपनी को एक विस्तार योजना लागू करने के लिये जब पुंजी की जरूरत होती है, तो कंपनी शेयरधारकों को लाभांश वितरित नही करने का निर्णय लिया जाता है। यह 'निरंक लाभांश नीति' कहलाता है।

लाभांश नीति को निर्धारित करने वाले घटक

लाभांश नीति को निर्धारित करने से पहले निम्नांकीत घटकों विचार करना आवश्यक है :

1. **कंपनी की आयु किंवा वय (Age of the Company)** – कंपनी की स्थापना कितने साल पूर्व हुई, व्यवसाय सुरु कर कितने वर्ष हुए इन घटकों से लाभांश नीति प्रभावित होती है। यदि एक नई कंपनी है, तो लाभांश की नीति को कम कर दिया जाएगा ताकि कंपनी की विस्तार योजनाओं के लिए पूंजी विस्तार की सुविधा मिल सके। इसके विपरीत, यदि कंपनी पुरानी है, तो कंपनी का व्यवसाय स्थिर है और वित्तीय स्थिति स्थिर है। उस समय कंपनी उदार लाभांश नीति को स्वीकार कर सकती है।
2. **व्यवसाया का स्वरूप (Nature of the Business)** – लाभांश आवंटन की राशि कंपनी की लाभप्रदता पर निर्भर करती है तथा कंपनी का लाभ कंपनी के व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। यदि उपभोक्ता उत्पाद का व्यवसाय कम्पनी कर रहा है, तो ऐसी उत्पाद की मांग स्थिर होती है। जिससे कंपनी की आय भी स्थिर होती है। इसलिए, कंपनी लगातार और नियमित दर पर लाभांश आवंटित कर सकती है। दूसरी ओर अगर कंपनी गुणवत्ता/शान शौकत/ विलासमय वाले सामान का उत्पादन कर रहे हैं, तो इन मदों की मांग अधिक लवचिक होती है, इसलिए, उपज अस्थिर और अनिश्चित है। उस समय कंपनी प्रत्येक वर्ष एक निश्चित दर से लाभांश आवंटित नहीं कर सकती।
3. **कम्पनी को पूंजी की आवश्यकता (Need of Capital to the company)** – कंपनी को विभिन्न कारणों से अगर पूंजी की जरूरत होती है, और बाजार से यह पूंजी प्राप्त नहीं की जा सकती है तो कंपनी का लाभांश नीति संकीर्ण रहेंगी। दूसरी ओर अगर पूंजी की आवश्यकता कम हो तो डिविडेंड पॉलिसी उदार रहती है।
4. **अंशधारकों की संख्या (Number of shareholder)** – अगर कंपनी का शेयरधारक अधिक है, तो लाभांश की दर कम होगी, दूसरी ओर यदि शेयरधारकों की संख्या कम है तो लाभांश उच्च दर पर दिया जाता है।

5. **सरकारी नीति** – लाभप्रदता की नीति भी सरकारी विभिन्न नीतिगत नीतियों से प्रभावित रहती है, इसलिए लाभांश नीति तय करते समय सरकारी नीतियों के बारे में सोचना जरूरी है।
6. **कानूनी प्रतिबंध (Legal Restriction)** – 1956 की कंपनी अधिनियम धारा 93, 205, 205 ए, 206 और 207 के अनुसार, कंपनी की लाभांश की रणनीति बेहद महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है, इस लेख को ध्यान में रखते हुए कंपनी लाभांश नीति का फैसला करती है। तदनुसार लाभांश केवल मौजूदा वर्ष के लाभ के माध्यम से नुकसान की व्यवस्था के बाद शेष लाभ से ही वितरित करने की आवश्यकता है। जर कंपनी 10% से अधिक लाभांश निर्धारित करती है तो लाभांश को कुछ दर पर सरकारी फंड में स्थानांतरित किया जाना आवश्यक है। लाभांश को पूंजीगम निधि से वितरित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि ऐसा करनेसे पूंजी की कटौती से अंशधारकों के सुरक्षितता एवं तरलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।
7. **अंशधारकों के प्रकार और अपेक्षाएं (Desire and type of shareholders)** – शेयरधारकों के लाभांध की अपेक्षा केवल उनके वित्तीय स्थिति निर्भर होती है। निवेशक यदि सेवानिवृत्त व्यक्ति, विधवा और मध्यमवर्गीय व्यक्ति हैं, तो लाभांश्ज्ञ उनके दैनंदिन जीवनी की आवश्यकताएँ की पूर्ति करने का महत्वपूर्ण आर्थिक स्रोत होता है। इस तरह के व्यक्ति को कंपनी द्वारा नियमित लाभान्वेषण की आवश्यकता होती है।
8. **कराधान नीति (Taxation Policy)** – कराधान नीति का भी लाभांश नीति के बारे में सोचते समय विचार किया जाता है। कर दरों का कंपनी के शुद्ध लाभ पर असर होता है। इसी तरह, लाभांश नीति पर कर की दर का भी प्रभाव पड़ता है।
9. **मुद्रास्फीति दर (Inflation)** – कंपनी की लाभांश नीति मुद्रास्फीति दर से भी प्रभावित होती है। जब बाजार की कीमत बढ़ जाती है, तो सम्पति का मूल्य बढ़ता है। सम्पति की इस बढ़ी हुई कीमत पर कम्पनी को प्रतिस्थापित करने के लिए कम्पी की संचित राशी सक्षम नहीं होती। जिससे चालू वर्ष के लाभ का एक बड़ा हिस्सा बढ़ी कीमतों पर संपत्ति खरीदने की लागत पर व्यय होता है। जिसके कारण, कम लाभांश अंशधारकों को दिया जाता है।
10. **नियंत्रण उद्देश्य (Control Objectives)** – कंपनी के अंशों की बाजार कम ना हो और उसपर नियंत्रण में रहने के लिए सावधानीपूर्वक लाभांश नीति की योजना बनानी आवश्यक है। अगर कंपनी उच्च दर से लाभांश का वितरण करती है, तो कंपनी को भविष्य की जरूरतों के लिए शेयर जारी करना होगा। इससे अंशधारको की संख्या में वृद्धि होगी और भागीदारी दर में कमी आएगी और शेयरों की कीमतों में कमी आएगी। इसे नियंत्रित करने के लिए लाभांश को सही दर पर वितरित करना आवश्यक है।
11. **संस्थागत निवेशकों की मांग (Requirment of Institutional investors)** – कंपनी की लाभांश नीति पर वित्तीय संस्था की आवश्यकताएं भी प्रभावित करती है। यह निवेशकों मुख्य रूप से लाभांश की आय का नियमित राशी प्राप्त करने की अपेक्षा में

निवेश करते है और समता अंशो पर लाभों के वितरण के संबंध में उनकी शर्तों को लागू किया जाता है। इसलिए, इस वित्तीय संस्थान की आवश्यकता यह एक लक्षित रणनीति के रूप में लाभांश नीति निर्धारित करते समय आवश्यक मानी जाती है।

स्थिर लाभांश नीति के लाभ

स्थिर लाभांश नीति अंशधारको के न्यूनतम हितो को संरक्षित करने वाली नीति है। स्थिर लाभांश नीति अंशधारको एवं कम्पनी दोनों के दृष्टिकोण से लाभदायी है। इस नीति के निम्नांकित लाभ है–

1. **न्यूनतम आय की निच्छितता (Certainty in the minimum Income)** – अंशधारकों को इस नीति के तहत नियमित आय प्राप्त होती रहती है और वे कम्पनी के नीति से संतृष्ट रहते है। कम्पनी में आय की मात्रा कम होने पर भी सुनिच्छित लाभांश अवश्य प्राप्त होने के कारण यह नीति विनियोजकों द्वारा अत्यंत पसंद की जाती है।
2. **कम्पनी पर विश्वास में वृद्धी (Increases Company's Credibility)** – इस नीति के तहत नियमित एवं स्थिर आय प्राप्त होने के कारण कम्पनी के अंशधारकों में कम्पनी के प्रति विश्वास/साख में यह नीति वृद्धी करती है। कम्पनी में आय की मात्रा कम होने पर भी अपूती संचित कोषों में से सुनिच्छित लाभांश अवश्य प्राप्त होने के कारण अंशधारकों को यह विश्वास होता है की कम्पनी का संचालन प्रबंधकों के द्वारा उनके हितों को ध्यान में रखकर कुशलता एवं सफलता से हो रहा है। इस नीति के कारण अंशो के मूल्य में वृद्धी होती रहती है जिससे अंशधारकों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।
3. **अंशो के बाजार मूल्य में स्थायित्व (Stable Market Price of Shares)** – इस नीति के तहत नियमित एवं सुनिच्छित दर से लाभांश का भुगतान करने वाले कम्पनीयों के अंशों का बाजार मूल्य सम्भवता स्थिर रहता है। ऐसे स्थिति में अंशों के बाजार मूल्य में कम उच्चावचन होने के कारण कम्पनी की साख में अभिवृधि होती है। इस स्तिर लाभांश नीति के कारण अंशधारियो को तथा समाज को भी लाभ होता है क्योंकि कम्पनी के अंशो पर सट्टेबाजी भी कम होती है।
4. **संस्थागत विनियोजकों की पसंद (Preferred by Investors)** – स्थिर लाभांश नीति के कारण विनियोजकों को आश्वाषण मिलता है की ऐसे कम्पनियों के अंश के मूल्य में अधिक उच्चावचन नहीं होगा। स्थिर आय प्राप्त करने की अपेक्षा में विनियोजक ऐसे कम्पनी में विनियोग करना पसंद करते है। स्थिर लाभांश देनेवाली कम्पनियों में संस्थागत निवेशक, जैसे की भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय यूनिट ट्रस्ट, बैंक्स, वित्तीय निगम, इत्यादी संस्था विनियोग करना पसंद करते है। इन संस्थओ कों आकर्षित करने हेतु स्थिर लाभांश नीति अपनाई जाती है।
5. **अतिरिक्त पूंजी प्राप्ती के सहायक (Help to Ac quire Extra Capital)** – अंशो के बाजार मूल्य में कम उच्चावचन होने के कारण कम्पनी की साख में अभिवृधि

होती है जिससे कम्पनी सफलतापूर्वक ऋण प्राप्त कर अतिरिक्त पूंजी प्राप्त कर सकती है।

6. **दीर्घकालीन नियोजन हेतु उपयुक्त** – इस नीति के तहत दिए जाने वाले नियमित एवं सुनिच्छित दर से लाभांश का अनुमान आसानिसे लगाया जा सकता है। व्यय अनुमान के आधार पर कम्पनी के विस्तार हेतु दीर्घकालीन योजना बनाकर आवश्यक वित की व्यवस्था आसानी पूर्वक की जा सकती है।

4.5 सुदृढ़ लाभांश नीति की पूर्व आवश्यकताएं

सुदृढ लाभांश नीति अपनाने से पहले कुछ पूर्व आवश्यकतायों पर गंभीरता से सोचना आवश्यक है। कम्पनी की स्थिर लाभांश नीति पर विभिन्न तत्वों का प्रभाव पड़ता है। कुछ प्रमुख तत्व या पूर्व आवश्यकताएं निम्नलिखित है।

1. **आय में स्थिरता एवं नियमितता** – कम्पनी की आय वर्ष प्रतिवर्ष कितनी स्थिर है इस पर भी लाभांश नीति निर्भर करती है। कम्पनी को अपनी आय में स्थिरता एवं नियमितता लेन का प्रयास करना चाहिये जिससे अंशधारकों को स्थिर एवं नियमित रूप से लाभांश का भुगतान किया जा सके।
2. **तरलता (Liquidity)** – तरलता, लाभांश के भुगतान हेतु सर्वप्रमुख तत्व है। लाभांश का भुगतान कम्पनी की तरलता पर निर्भर होता है। इसका आशय यह है की पर्याप्त रोकड़ कम्पनी के पास होना चाहिए। क्योंकि सामान्यता; रोकड़ से ही लाभांश का भुगतान किया जाता है। तरलता इस बात पर निर्भर करती है कि कितनी धनराशी ऋण या ऋण पर ब्याज के लिए देना है एवं कितनी रोकड़ राशी कार्यशील पूंजी के लिए आवश्यक है। अतः स्थिर लाभांश नीति हेतु कम्पनी में तरलता की स्थिति अनुकूल होनी चाहिए।
3. **विभाजनीय लाभ** – कम्पनी का शुद्ध लाभ पूर्ण रूप से लाभांश के तौर पर नहीं दिया जा सकता है। शुद्ध लाभ का वही हिस्सा जो कानून के अनुसार अंशधारियोंको लाभांश के रूप में वितरित किया जाता है उसे विभाजनिय लाभ कहते है। वित्तीय वर्ष के अंतर्गत घोषित विभाज्य लाभों से ही लाभांश का भुतान किया जाना चाहिए। ऐसा न करने पर लाभांश का वितरण पूंजी में से माना जायेगा। जबकि पूंजी में से लाभांश का वितरण नहीं किया जा सकता। इसलिए लाभांश का वितरण करने से पूर्व विभाजनीय लाभ की स्थिर पर कानूनी तौर पर विचार करना होगा।
4. **अंशधारियों की अपेक्षा** – स्थिर लाभांश नीति अपनाने से पहले अंशधारियों की अपेक्षा को भी ध्यान में रखना चाहिए स्थिर आय प्राप्त करने की अपेक्षा में विनियोजक ऐसे कम्पनी में विनियोग करना पसंद करते है।
5. अतिरिक्त लाभ वाले वर्ष में ही अतिरिक्त लाभांश का भुगतान करना चाहिए।
6. अतिपूंजिकरण की प्रवृति पर अंकुश लगाने हेतु आवश्यकता नुसार प्रतिधारित लाभ में से स्कंध लाभांश अथवा बोनस अंशो का निर्गमन किया जाना चाहिये।

7. लाभांश के भुगतान मे स्थायित्व एवं नियमितता लेन हेतु लाभांश समानीकरण कोष की स्थापना अवश्य ही करना चाहिए, जिससे कम लाभ वाले वर्ष में भी सामान रूप से लाभांश का भुगतान किया जा सके।
8. स्थिर लाभांश का भुगतान पूर्व वर्षों की कुल हानियों तथा ह्रास का प्रावधान करने के उपरांत ही किया जाना चाहिए।

4.6 वाल्टर, गॉर्डन तथा मोदीगिल्यानी एवं मिलर के लाभांश मॉडल

लाभांश नीति तथा फर्म के मूल्य के संबंध में निम्नलिखित दो प्रकार की विचारधारायें प्रकट की गयी हैं:

1. लाभांश की प्रासंगिक विचारधारा
2. लाभांश की अप्रासंगिक विचारधारा

लाभांश की प्रासंगिक विचारधारा मानने वालों में वाल्टर तथा गोर्डन हैं जो यह मानते हैं कि फर्म के मूल्य को लाभांश प्रभावित करती है। फर्म के मूल्य में वृद्धि करने में लाभांश अपनी महत्वपूर्ण तथा प्रासंगिक भूमिका निभाती है। दूसरी ओर फर्म के मूल्यांकन में लाभांश की कोई भूमिका नहीं होती है या लाभांश इस संदर्भ में अप्रासंगिक होता है, इस विचारधारा के समर्थक मोदीगिल्यानी तथा मिलर रहे हैं। इनका विचार है कि लाभांश संबंधी निर्णय फर्म के मूल्य के लिए अप्रासंगिक होता है। इस विचारधारा को एम.एम. उपागम के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार से लाभांश के तीन प्रमुख मॉडल हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. वाल्टर का लाभांश मॉडल
2. गोर्डन का लाभांश मॉडल
3. मोदीगिल्यानी एवं मिलर मॉडल

इन तीनों मॉडल का विस्तृत वर्णन अग्रलिखित है:

वाल्टर का लाभांश मॉडल

1963 में जेम्स इ. वाल्टर ने लाभांश के संदर्भ में एक बीजगणितीय सूत्र का प्रतिपादन किया था।इसी को वाल्टर के लाभांश मॉडल के नाम से जाना जाता है।

वाल्टर का विचार था कि लाभांश नीतियाँ सदैव ही फर्म के मूल्य को प्रभावित करती है। फर्म का मूल्य, अंशों के बाजार मूल्य से संबंधित है। यदि अंशों का बाजार मूल्य बढेगा तो फर्म का मूल्य भी बढेगा।

दूसरी ओर यदि अंशों के बाजार मूल्य में कमी आती है तो फर्म के मूल्य में भी कमी आएगी। इस प्रकार से, फर्म के मूल्य तथा लाभांश नीति दोनों में एक घनिष्ठ संबंध पाया जाता है।

इस दृष्टि से वाल्टर ने फर्मों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया है:

i. **विकासशील फर्म** – ऐसी फर्म अपने लाभ का पुनर्विनियोजन अधिक से अधिक करती है। फलस्वरूप लाभांश की दर कम हो जाती है किन्तु, विकास की दर में पर्याप्त वृद्धि होती है। जैसे-जैसे प्रतिधारित आय में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उसेक प्रयोग से संस्था विकास की ओर अग्रसर होती है, प्रत्याय दर भी अधिक होता जाता है। ऐसी फर्म का भुगतान अनुपात भी शून्य या कम होगा। ऐसी विकासशील फर्म का आंतरिक प्रत्याय दर, पूँजी की लागत से अधिक होता है। दुसरे शब्दों में $r > k$जहाँ r प्रत्याय दर है और k पूँजी की लागत है।

ii. **सामान्य फर्म** – यह एक काल्पनिक विचार है और ऐसी फर्म व्यवहार में नहीं पाई जाती है। ऐसी फर्म का प्रत्याय दर तथा पूँजी की लागत बराबर होती है या r = क। ऐसी फर्म की लाभांश नीति का अंशों के बाजार मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं होता है। फर्म अपने लाभ का प्रयोग चाहे प्रतिधारित आय के लिए करे या लाभांश बाँटने में करे, यह अंशों के मूल्य को प्रभावित नहीं करती।

iii. **अविकासशील फर्म** – ऐसी फर्म का आंतरिक प्रत्याय दर पूँजी की लागत से कम होती है। दुसरे शब्दों में, $r < k$। ऐसी स्थिति में, फर्म को अपने लाभ में से प्रतिधारित आय में हस्तांतरित नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह पानी पूँजी की लागत के बराबर भी आय अर्जित नहीं कर पति हैं। ऐसी फर्म अपनी आय को लाभांश में अधिक वितरित करती है। इस स्थिति में लाभांश भुगतान अनुपात भी अधिक ठीक रहता है।

वाल्टर मॉडल की मान्यतायें

वाल्टर मॉडल की प्रमुख मान्यतायें निम्नलिखित हैं :

1. कंपनी अपनी पूँजी की व्यवस्था अंशों या रिन्पत्रों के निर्गमन से नहीं करती है अपितु उसकी व्यवस्था प्रतिधारित आयों से करती है।
2. कंपनी की आंतरिक प्रत्याय दर तथा पूँजी की लागत स्थिर रहती है।
3. कंपनी अपने समस्त लाभों को या तो तत्काल पुनार्विनियोजित कर देती है या लाभांश के रूप में बाँट देती है।

4. प्रारंभिक आय तथा लाभांश में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता है।
5. कंपनी की आयु लम्बी तथा असामान्य होती है।
6. महत्वपूर्ण चरों जैसे EPS तथा DPS में कोई परिवर्तन नहीं होता।

वाल्टर मॉडल का सूत्र

वाल्टर ने प्रति अंश बाजार मूल्य को निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित सूत्र प्रतिपादित किया:

$$P = \frac{D + \frac{r}{k}(E - D)}{K}$$

यहाँ पर

P = प्रति अंश बाजार मूल्य

D = प्रति अंश लाभांश

E = प्रति अंश आय

r = आंतरिक प्रत्याय दर

k = पूँजी की लागत

भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में लाभांश नीति का प्रभाव भिन्न-भिन्न होगा। इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है।

उदाहरण

लाभांश नीति एवं अंशों के मूल्य (वाल्टर मॉडल)

(अंशों का सम-मूल्य 100 रु. प्रति अंश)

	Growth Firm r > k	Normal Firm r = k	Decline Firm r < k
r =	15%	10%	5%
k =	10%	10%	10%
E =	Rs. 10	Rs. 10	Rs. 10

	भुगतान अनुपात (Payout Ratio) = 0%	भुगतान अनुपात (Payout Ratio) = 40%	भुगतान अनुपात (Payout Ratio) = 80%	भुगतान अनुपात (Payout Ratio) = 100%
	D = 0	D = Rs. 4	D = Rs. 8	D = Rs. 10
1. Growth Firm (r > k)	P = $\frac{0+\frac{.15}{.10}(10-0)}{.10}$	P = $\frac{4+\frac{.15}{.10}(10-4)}{.10}$	P= $\frac{8+\frac{.15}{.10}(10-8)}{.10}$	P= $\frac{10+\frac{.15}{.10}(10-10)}{.10}$
2. Normal Firm (r = k)	P = $\frac{0+\frac{.10}{.10}(10-0)}{.10}$	P = $\frac{4+\frac{.10}{.10}(10-4)}{.10}$	P= $\frac{8+\frac{.10}{.10}(10-8)}{.10}$	P= $\frac{10+\frac{.10}{.10}(10-10)}{.10}$
3. Declinin g Firm (r < k)	P = $\frac{0+\frac{.05}{.10}(10-0)}{.10}$ = Rs. 50	P = $\frac{4+\frac{.05}{.10}(10-4)}{.10}$ = Rs. 70	P= $\frac{8+\frac{.05}{.10}(10-8)}{.10}$ = Rs. 90	P= $\frac{10+\frac{.05}{.10}(10-10)}{.10}$ = Rs. 100

भुगतान अनुपात 0%, 40%, 80% और 100% रखने के प्रभाव अग्रलिखित होंगे:

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि वाल्टर मॉडल के अनुसार लाभांश नीति फर्म की आंतरिक प्रत्याय दर तथा पूँजी की लागत संबंध पर निर्भर करती है।

उपर्युक्त उदाहरण का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

i. **विकासशील फर्म** – ऐसी फर्म का प्रत्याय दर पूँजी की लागत से अधिक होता है। ऐसी फर्म को अपने अंशों का मूल्य अधिक्रम 150 रु. करने के लिए सम्पूर्ण अर्जन को प्रतिधारित कर लेना चाहिए। यदि लाभांश का भुगतान अनुपात बढ़ता जाता है तो अंशों का मूल्य गिरता जायेगा । यदि लाभांश भुगतान अनुपात शत-प्रतिशत होता है तो अंश का मूल्य न्यूनतम या केवल 100 रु. ही रहेगा।

ii. **सामान्य फर्म** – ऐसी फर्म का प्रत्याय दर तथा पूँजी की लागत बराबर होती है। ऐसी फर्म के अंशों के बाजार मूल्य पर लाभांश नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रत्येक दशा में फर्म के अंशों का बाजार मूल्य 100 रु. ही रहेगा।

iii. **अविकासशील फर्म** – ऐसी फर्म की प्रत्याय दर पूँजी की लागत से कम होती है। ऐसी फर्म को अपने लाभ को प्रतिधारित नहीं करना चाहिए और सम्पूर्ण आय को शत-प्रतिशत लाभांश के रूप में वितरित कर देना चाहिए। क्योंकि शत-प्रतिशत दर से लाभांश वितरण करने पर भी अंश का मूल्य 100 रु. ही रहता है।

इस प्रकार, यदि फर्म का आंतरिक प्रत्याय दर पूँजी की लागत से अधिक हो तो आय का प्रतिधारण उपयुक्त होगा। इसके विपरीत यदि फिर्मा का आंतरिक प्रत्याय दर पूँजी की लागत से कम है तो उस स्थिति में आय को प्रतिधारित करने की अपेक्षाकृत आय का लाभांश के रूप में वितरण ही उपयुक्त होगा।

वाल्टर मॉडल की आलोचनाएँ

विद्वानों द्वारा की गई वाल्टर के मॉडल की निम्नलिखित आलोचनाएँ उल्लेखनीय है :

1. **बाह्य स्त्रोतों से वित्तीयन नहीं** – वाल्टर मॉडल की यह मान्यता सही नहीं है कि कंपनी केवल प्रतिधारित आय से ही अपने लिए वित्त की व्यवस्था करती है। व्यवहार में अनेक कंपनियाँ अपने वित्त की व्यवस्था नए अंशों या ऋण पत्रों के निर्गमन से करती है।
2. **स्थिर पूँजी लागत** – बाजार की परिस्थितियों के बदलने पर पूँजी लागत भी परिवर्तित होती है। अतः वाल्टर की यह मान्यता की पूँजी की लागत स्थिर तहती है, सही नहीं है।

3. **स्थिर आंतरिक प्रत्याय दर** – वाल्टर के इस मॉडल में यह भी मानकर चला जाता है कि कंपनी का आंतरिक प्रत्याय दर स्थिर रहता है। यह मान्यता सही नहीं है, क्योंकि व्यवहार में विनियोगों में वृद्धि होने के साथ-साथ प्रत्याय दर में कमी आती जाती है।

इस प्रकार से वाल्टर का लाभांश मॉडल बहुत व्यावहारिक नहीं है और यह कुछ ही परिस्थितियों में व्यावहारिक रूप में लागू होता है।

गोर्डन का लाभांश मॉडल

एम. गोर्डन ने अपना लाभांश मॉडल वाल्टर की तरह ही प्रतिपादित किया है इसे लाभांश विकास मूल्यांकन मॉडल के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इस मॉडल में आय के प्रतिधारण तथा लाभांश के विकास में संबंध स्थापित किया गया है। इनका विचार है कि अंश का मूल्य, अंश को भविष्य में प्राप्त लाभांश के मूल्य को प्रतिबिंबित करता है। अतः लाभांश का भुगतान तथा उसका विकास अंशों के मूल्य में प्रासंगिक है। यह मॉडल मानता है कि अंश का बाजार मूल्य, अंश के अपलेखित भावी लाभांश के भुगतान के योग के बराबर होता है। वास्तव में गोर्डन का मॉडल व्यावहारिक न होकर सैद्धांतिक अधिक है जिसके अनुसार समता अंशों का मूल्यांकन किया जाता है।

गोर्डन के विचार में विनियोक्ता विवेकपूर्ण ढंग से विचार करता है और वर्तमान लाभांश को भावी लाभांश की अपेक्षाकृत अधिक महत्व देता है। वह जोखिम से भी बचना चाहता है। उस फर्म के अंशों का मूल्य कम होगा जो आय के अधिक भाग को प्रतिधारित करती है। इस प्रकार, यदि कम दर से लाभांश वितरित किया जाता है तो अंशों का बाजार मूल्य कम होगा और फलस्वरूप फर्म का मूल्य भी कम होगा।

गोर्डन के मॉडल की मान्यतायें

गोर्डन के मॉडल की प्रमुख मान्यतायें निम्नलिखित हैं:

1. कंपनी केवल समता पूँजी का ही उपयोग करती है। वह ऋण नहीं लेती है।
2. कंपनी के वित्त की व्यवस्था के लिए बाह्य स्त्रोतों से धन नहीं लिया जाता है। केवल प्रतिधारित आय से ही विकास किया जाता है।
3. प्रत्याय की आंतरिक दर तथा समता अंश पूँजी की लागत बराबर होती है।
4. लाभांश का भावी वार्षिक विकास दर स्थिर होता है।
5. पूँजी की लागत सदैव विकास दर सेअधिक होती है।

6. कंपनी असीम काल तक व्यवसायरत रहेगी।
7. कंपनी की आय पर कोई कर नहीं लगाया जाता।
8. प्रतिधारण अनुपात स्थिर रहता है।

गोर्डन के मॉडल में निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

$$Po = \frac{D_0(1+g)}{k_e - g} = \frac{D_1}{k_e - g}$$

यहाँ पर

P_0	=	अंश का वर्तमान बाजार मूल्य
D_0	=	इस वर्ष का लाभांश
D_1	=	संभावित लाभ
Ke	=	अंश की लागत या समता पूँजी पर प्रत्याय का संभावित दर
g	=	लाभांश का संभावित भावी विकास दर

उदाहरण:

एबी कं. लि. की 50,00,000 रु. की प्रदत्त अंश पूँजी है। प्रत्येक अंश 10 रु. के हैं। इसके अंश सभी महत्वपूर्ण स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध हैं। कंपनी ने इस वर्ष 21 प्रतिशत वार्षिक दर से लाभांश का वितरण किया है। लाभांश के वार्षिक दर की सम्भावना 3 प्रतिशत है। समता पूँजी पर संभावित प्रत्याय दर 16 प्रतिशत है।

गोर्डन मॉडल के आधार पर कंपनी के अंश का मूल्य निर्धारित कीजिए।

हल:

वर्ष में वितरित लाभांश = रु. 50,00,000X21/100 = रु. 10,50,000

$$Po = \frac{D_o(1+g)}{k_e - g}$$

$$= \frac{Rs.10{,}50{,}000(1+0.03)}{0.16-0.03}$$

$$= Rs.83{,}19.231$$

प्रति अंश मूल्य = रु. 83,19,231/5,00,000

= रु. 16.64

गोर्डन मॉडल की आलोचनाएँ

गोर्डन के लाभांश मॉडल की निम्नलिखित आलोचनाएँ की गई हैं:

1. इस मॉडल में पूँजी लाभ पर ध्यान नहीं दिया गया है।
2. इस मॉडल की यह मान्यता सही नहीं है कि यदि इस वर्ष का लाभांश शून्य है तो अंश का मूल्य भी शून्य होगा।
3. व्यवहार में यह नहीं पाया जाता है कि लाभांश का विकास तथा अर्जन का विकास स्थिर होगा।
4. यह मान्यता भी सही नहीं है कि विनियोजक अंशों का क्रय करके अपने पास असीमित समय तक रखेंगे।
5. कंपनी तथा व्यक्तिगत कर के विषय में भी यह मॉडल ध्यान नहीं देता है।
6. विनियोग के ह्रासमान सीमित कुशलता पर भी यह मॉडल ध्यान नहीं देता है।

मोदिगिल्यानी एवं मिलर मॉडल

मोदिगिल्यानी एवं मिलर ने लाभांश का अप्रासंगिक मॉडल प्रस्तुत किया है। इनका मत है कि फर्म की लाभांश नीति का संपत्तियों के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार से उनका तर्क है कि अंशधारियों की संपदा के लिए लाभांश अप्रासंगिक है।

मान्यतायें

इस मॉडल की निम्नलिखित मान्यतायें हैं:

1. कोई भी व्यक्तिगत या कंपनी कर नहीं लगया जाता है।
2. कंपनी की लाभांश नीति का कंपनी की समता की लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. कंपनी की पूँजी विनियोग नीति का लाभांश नीति से कोई संबंध नहीं है।
4. सभी विनियामों को समान ब्याज दर पर उधार देते या लेते हैं।
5. प्रतिभूतियों के क्रेता अथवा विक्रेता मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते।
6. लाभांश संबंधी निर्णय का प्रयोग सूचना प्रदान करने के लिये नहीं किया जाता है।
7. पूँजी बाजार पूर्ण है और उसमें सूचनाओं का अबाध प्रवाह है।
8. कंपनी के भविष्य के संबंध में कोई अनिश्चितता या जोखिम नहीं है।
9. विनियोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करते है। कोई भी विनियोक्ता अपने कार्यकलापों से अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता है।

इस संबंध में मोदिगिल्यानी एवं मिलर का यह तर्क है कि अंशधारियों के लाभांश प्राप्त करने पर धन में जो वृद्धि होती है उतना ही कंपनी द्वारा वित्त के बाह्य स्त्रोतों से पूँजी प्राप्त करने से कमी आ जाती है। इस प्रकार से दोनों प्रकार के लेन-देन एक दूसरे की क्षतिपूर्ति कर देते हैं। इसके फलस्वरूप अंशधारियों की संपदा में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

उनके विचार से, वास्तव में लाभांश एक उदासीन अवशेष है। एम. एम. मॉडल के अंतर्गत अंश के बाजार मूल्य के निर्धारण के लिये निम्नलिखित सूत्र प्रयोग में लाया जाता है:

$$P_0 = \frac{P_1 + D_1}{1 + k_e}$$

यहाँ पर

P_0 = अंश का वर्तमान बाजार मूल्य

P_1 = अंश का बाजार मूल्य एक अवधि के अंत में

D_1 = उस अवधि के अंत में प्राप्य लाभांश

Ke = समता पूँजी की लागत

मोदिगिल्यानी एवं मिलर मॉडल की आलोचनाएँ

अनेक विद्वानों ने इस मॉडल की आलोचनाएँ की है जो निम्नलिखित है:

1. मॉडल की यह मान्यता है कि आय पर कोई कर नहीं लगाया जाता है। यह मान्यता वास्तविकता से परे है।
2. इस मॉडल में निर्गमन लागत को शून्य माना गया है जबकि अंशों के निर्गमन पर कमीशन, दलाली आदि का भुगतान करना पड़ता है।
3. इस मॉडल में यह माना जाता है कि बाजार पूर्ण है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि पूँजी बाजार व्यवहार में अपूर्ण पाया जाता है।
4. विनियोक्ता यह चाहते हैं कि आय को लाभांश के रूप में वितरित किया जाये जिससे वे लाभ का विनियोजन दूसरी प्रतिभूतियों में कर सके।
5. यह मानना कि कंपनी के भविष्य के संबंध में कोई अनिश्चितता या जोखिम नहीं है, सही नहीं है। व्यवहार में प्रायः अनिश्चितता की स्थिति विद्यमान रहती है क्योंकि भविष्य के बारे में सही-सही पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं होता है।

4.7 सारांश

वर्ष के अंत में कंपनी को जो शुद्ध लाभ होता है, उसका एक भाग अंशधारियों को लाभांश के रूप में तथा दूसरा भाग संस्था में ही संचय में हस्तांतरित करके पुनार्विनियोजित कर दिया जाता है जिसे प्रतिधारित लाभ कहते हैं। कंपनी के संचालक मंडल कंपनी की साधारण वार्षिक सभा में लाभांश के दर की घोषणा करते हैं। अंशधारी उस घोषित दर में कोई वृद्धि नहीं करा सकते हैं, वे उसमें कमी करा सकते हैं।

लाभांश तीन प्रकार के होते हैं – अंतरिम, अंतिम तथा पूर्वाधिकार लाभांश। दो साधारण वार्षिक सभाओं के बीच में जो लाभांश वितरित किया जाता है उसे अंतरिम लाभांश कहते हैं। पूर्वाधिकार अंशों पर दिया जाने वाला लाभांश पूर्वाधिकार लाभांश कहलाता है।

लाभांश नीति कई प्रकार की होती है, जैसे कठोर, उदार, स्थिर तथा अनुकूलतम लाभांश नीति। स्थिर लाभांश नीति अधिक लोकप्रिय है और अंशधारी भी इसे पसंद करते हैं क्योंकि इस नीति के अंतर्गत वर्ष प्रतिवर्ष लाभांश की दर यथासंभव स्थिर रहती है।

लाभांश नीति के तीन प्रमुख मॉडल हैं। लाभांश की प्रासंगिक विचारधारा के समर्थक वाल्टर तथा गोर्डन हैं जिन्होंने अपने मॉडल प्रस्तुत किये हैं। वहीं मोदिगिल्यानी तथा मिलर लाभांश की अप्रासंगिक विचारधारा के समर्थक हैं। इनके विचार से कंपनी की लाभांश नीति का उसकी संपत्तियों के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

4.8 बोध प्रश्न

1. लाभांश से आपका क्या आशय है? लाभांश कितने प्रकार के होते हैं?
2. लाभांश नीतियों का वर्णन कीजिए।
3. स्थिर लाभांश नीति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. स्थिर लाभांश नीति के क्या लाभ हैं?
5. क्या स्थिर लाभांश नीति से सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है?
6. सुदृढ़ लाभांश नीति की पूर्व आवश्यकतायें क्या हैं?
7. सरकार की कर नीति में परिवर्तन का लाभांश पर क्या प्रभाव पड़ता है?
8. लाभांश नीति के विभिन्न मॉडलों को समझाइए।

9. लाभांश नीति के मॉडलों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

4.9 संदर्भ ग्रंथ

- गोयल, डी. के. एवं गोयल, एस. (2017) वित्तीय प्रबंधन, पांचवां संस्करण, अविचल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली
- Prasanna Chandra (2011) Financial Management, Eighth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Parrino & Kidwell (2011) Fundamentals of corporate finance, First Edition, Wiley India Pvt. Ltd., New Delhi.
- Khan and Jain (2011) Financial Management (Text Problems and Cases), Fifth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.

इकाई – V: फर्म का मूल्यांकन तथा संविलयन एवं अधिग्रहण

इकाई की संरचना

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 फर्म के मूल्यांकन की अवधारणा

5.4 फर्म के मूल्यांकन की विधियाँ

5.5 संविलयन एवं अधिग्रहण का अर्थ एवं परिभाषा

5.6 संविलयन एवं अधिग्रहण के प्रकार

5.7 संविलयन एवं अधिग्रहण के उत्प्रेरक तत्व

5.8 संविलयन एवं अधिग्रहण की असफलता के प्रमुख कारण

5.9 सारांश

5.10 बोध प्रश्न

5.11 संदर्भ ग्रंथ

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद,आप निम्नलिखित में सक्षम हो जायेंगे :

- फर्म के मूल्यांकन, मूल्य के तात्पर्य के बारे में,
- फर्म के मूल्यांकन करने की विभिन्न विधियों के बारे में,
- संविलयन एवं अधिग्रहण के अर्थ एवं उद्देश्य के विषय में,
- संविलयन के स्वरूप के बारे में,

- संविलयन संबंधी भुगतान की विभिन्न विधियों के विषय में,
- संविलयन एवं अधिग्रहण की असफलता के प्रमुख कारणों के बारे में।

5.2 प्रस्तावना

फर्म का पुर्ननिर्माण करना या फर्म की ख्याति का मूल्य ज्ञात करना तथा फर्म संविलयन अथवा एकीकरण करना हो तो ऐसी परिस्थितियों में फर्म का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है। फर्म का मूल्य एवं उसकी अर्जन श्रमता आदि समस्त बातें उसकी वित्तीय स्थिति पर निर्भर करती है।

संविलयन एवं अधिग्रहण का इतिहास बहुत पुराना है। बहुत पहले से ही यह कंपनी के पुनर्निर्माण अथवा व्यावसायिक संयोजन का माध्यम रहा है। अधिकांश:, आपसी प्रतिस्पर्धा को दूर करने के लिये ही इसे अपनाया जाता रहा है। पहले यदि एक कंपनी दूसरे कंपनी में संविलयन करती थी तो यह दोनों में से एक असफल कंपनी का द्योतक माना जाता था। उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप अब संविलयन तथा अधिग्रहण अनेक कारणों से किया जाता है। टैक्लोलॉजिक सुधार, आधुनिकीकरण, आकार में वृद्धि का लाभ उठाना, अधिक सक्षम ढंग से प्रबंधन प्रतिस्पर्धा को कम करना आदि कारणों से संविलयन तथा अधिग्रहण का मार्ग अपनाया जाता है। विश्व भर में, अनेक कंपनियों ने इसका लाभ उठाया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में, 1880 से 1940 तक संविलयन एवं अधिग्रहण काफी संख्या में किया गया। इसका दूसरा दौर प्रथम विश्वयुद्ध से आरंभ होकर-1920 के दशक तक चलता रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत इसका तीसरा दौर आरंभ हुआ और आज तक यह जारी है। वास्तव में, पूँजीवाद (Capitalism) अथवा बाजारी अर्थव्यवस्था (Market Economy) का यह एक विशेष तथ्य है। भारतवर्ष में भी कंपनियों में संविलयन एवं अधिग्रहण होता रहा है परंतु इसमें, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के फलस्वरूप, अब विशेष तेजी आई है। देशी कंपनियां भी विदेशों में जा कर बड़ी-बड़ी कंपनियों को अधिग्रहण करने लगी हैं। उदाहरण के लिय टाटा ने इंग्लैण्ड की बड़ी स्टी कंपनी, कोरस को अधिग्रहण अक्टूबर , 2006 में किया। इस डील के विश्व को चकित कर दिया। इससे पूर्व मित्तल स्टील ने जून 2006 में आर्सेलर का अधिग्रहण करके इस क्षेत्र में तहलका मचा दिया था।

5.3 फर्म के मूल्यांकन की अवधारणा

कई स्थितियों में, फर्म के मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। फर्म का पुनर्निर्माण करना हो, उसकी ख्याति ज्ञात करनी हो, उसका मूल्य जानना हो, फर्मो का संविलयन, एकीकरण या अधिग्रहण करना हो, आदि परिस्थितियों में फर्म का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है।

फर्म का मूल्य, उसकी अर्जन क्षमता पर ही नहीं अपितु उसके संचालन तथा वित्तीय स्थितियों पर निर्भर करता है। साथ ही, फर्म के मूल्य पर गुणात्मक (Qualitative) तथा परिमाणात्मक (Qualitative) घटकों का भी प्रभाव पड़ता है। गुणात्मक पहलू, प्रबंधकीय कौशल, योग्यता, अनुभव आदि, विक्रय के स्टाफ के सुदृढ़ होने से तथा उत्पादन विभाग के उत्कृष्ट होने से संबंधित है। इसका मूल्यांकन आसानी से नहीं किया जाता जबकि सभी मात्रात्मक पहलुओं का मुल्यांकन आसानी से किया हा सकता है।

मूल्य का तात्पर्य

फर्म के मूल्यांकन के अंतर्गत उसके विभिन्न संपत्तियों का मूल्य ज्ञात करना होता है। मूल्य कई प्रकार के हो सकते हैं। अत: मूल्य के विभिन्न प्रकारों की जानकारी आवश्यक है।

(1) **पुस्तक मूल्य** – पुस्तक मूल्य का तात्पर्य, फर्म की पुस्तकों में दिखाई गई मूल्यों से है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक चिट्ठे में, संपत्तियाँ जिन मूल्यों पर दिखाई जाती हैं वही उनका पुस्तक मूल्य है। व्यवहार में तथा लेखांकन अवधारणा के तहत संपत्तियों का मूल्य उनके ऐतिहासिक लागत मूल्य पर निर्भर करता है तथा उन्हें उनके बाजार मूल्य पर नहीं दिखाया जाता है।

फर्म के पुस्त मूल्य के अनुसार, उसका मूल्य ज्ञात करने के लिए, चिट्ठे में दी गई अंशधारियों के अंशों के मूल्य को आधार बानया जाता है। इसके अनुसार, फर्म के शुद्ध मूल्य (Net Value) को समता अंशों की संख्या में भाग देकर उसका मूल्य ज्ञात किया जाता है। सूत्र के रूप में,

$$\text{फर्म का मूल्य} = \frac{\text{शुद्ध मूल्य}}{\text{समता अंशों की संख्या}}$$

पुस्त मूल्य विधि की कमी यह है कि यह मूल्य आर्थिक चिट्ठे में दिखाई गई संपत्तियों के ऐतिहासिक लागत (Historical Coat) पर आधारित होती है। ऐतिहासिक लागत का न तो फर्म की अर्जन क्षमता से (earning capacity) और न ही फर्म के मूल्य से संबंध होता है। इस सीमा के होते हुए भी, फर्म के मूल्यांकन की यह विधि निम्नलिखित कारणों से उपयुक्त मानी जाती है:

1. विश्लेषण की दृष्टि से, पुस्त मूल्य से ही गणना करना अधिक सुलभ व सुसंगत होता है।
2. ऐसी फर्म के लिये, जिसमें बड़ी मात्रा में स्थायी संपत्तियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं, पुस्त मूल्य अधिक उपयुक्त है। विशेष रूप, से उस स्थिति में जब कि ये स्थायी संपत्तियाँ नई हो।

3. फर्म की कार्यशील पूँजी की जानकारी प्राप्त करने के लिए, पुस्त मूल्य का प्रयोग करना अधिक उचित है।

(2) **बाजार मूल्य** – व्यवहार में, फर्म के मूल्यांकन के लिये बाजार मूल्य को प्राय: आधार बनाया जाता है। यहाँ पर बाजार मूल्य का तात्पर्य स्टॉक मार्केट में अंशों के निर्धारित मूल्य से है। इसे फर्म का अधिक उचित शुद्ध मूल्य माना जा सकता है क्योंकि यह मूल्य विनियोजकों द्वारा, फर्म के अर्जन तथा उसमें निहित जोखिम के आधार पर, निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार से, बाजार मूल्य विनियोग तथा सट्टे संबंधी घटकों से निर्धारित होता है। यह बाजार में फर्म के विषय में किये गये विश्लेषणों पर भी आधारित होता है। इस विधि में भी कमी है क्योंकि सट्टे पर आधारित होने के कारण इसमें उच्चवचन अधिक हो सकता है। फिर भी, यह फर्म के मूल्यांकन में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यवहार में, फर्म के क्रेता, फर्म के मालिकों को बेचने के लिये प्रेरित करने के लिये, बाजार मूल्य से कुछ अधिक मूल्य देने को तैयार हो सकते है।

(3) **निर्धारित मूल्य** – किसी स्वतंत्र एजेंसी द्वारा फर्म के मूल्य की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्वतंत्र एजेंसी विभिन्न घटकों को ध्यान में रखकर फर्म का मूल्य निर्धारित करती है। इस निर्धारित मूल्य को ही फर्म का मूल्य माना जाता है। यह मूल्य, सामान्यत: संपत्तियों के प्रतिस्थापन मूल्य (Replacement Value) पर आधारित है। प्रतिस्थापन मूल्य का तात्पर्य उस मूल्य से है जिस पर संपत्तियों को प्रतिस्थापित किया जा सके। इस मूल्य को भी, व्यवहार में, अधिक अपनाया जाता है क्योंकि इसके निम्नलिखित लाभ है-

1. स्वतंत्र एजेंसी, फर्म का मूल्य ज्ञात करने के लिए विभिन्न घटकों का विश्लेषण करती है।
2. स्वतंत्र एजेंसी, फर्म की शक्ति तथा दूर्बलताओं को भी मूल्य निर्धारण करते समय ध्यान में रखती है।
3. संपत्तियों के प्रतिस्थापन मूल्य को अपनाना, कुछ विशेष दशाओं में, जैसे – वित्तीय संस्थाओं के लिये, प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन करने वाली फर्मो के लिये, अधिक उपयुक्त है।

वैसे तो, इस विधि का अपनाना उपयोगी है किंतु इस विधि के साथ अन्य घटकों पर भी ध्यान देकर ही मूल्य निर्धारित किया जातना चाहिए।

(4) **प्रति अंश अर्जन** – फर्म के मूल्यांकन के लिये प्रति अंश अर्जन को भी आधार बनाया जा सकता है। वास्तव में, यदि फर्म का क्रय किया जाना हो या संविलयन होना हो तो यह देखना चाहिए कि क्रय अथवा संविलयन के पश्चात् उस फर्म की प्रति अंश अर्जन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह अर्जन बढ़ेगी। यदि उसके पश्चात्, फर्म का अर्जन बढ़ता है तो यह अधिक उचित होगा कि उसी को आधार

बनाकर फर्म का मूल्यांकन किया जाये। यदि विक्रेता फर्म की प्रति अंश अर्जन घटाती है तो वह अधिक उचित न होगा तथा ऐसे फर्म का क्रय करना लाभप्रद नहीं होगा।

5.4 फर्म के मूल्यांकन की विधियाँ

फर्म का मूल्यांकन करने की कई विधिया प्रचलित हैं। उनमें से, निम्नलिखित पाँच विधियाँ अधिक प्रचलित हैं:

(1) आर्थिक चिट्ठा विधि

(2) शुद्ध संपत्ति मूल्य विधि

(3) तुलनात्मक फर्मो की मूल्यांन विधि

(4) मूल्य अर्जन अनुपात विधि

(5) अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि

इन विधियों का वर्णन अग्रलिखित है :

(1) आर्थिक् चिट्ठा विधि (Balance Sheet Method) -

इस विधि के अनुसार, फर्म के आर्थिक चिट्ठे में दिखाई गई संपत्तियों के पुस्त मूल्य के आधार पर फर्म का मूयांकन किया जाना चाहिए। फर्म की संपत्तियों पर, वास्तव में, फर्म के अंशधारियों तथा ऋणपत्रधारियों का ही दावा रहता है। अत:, फर्म का मूल्य कम-से कम फर्म की संपत्तियों के पुस्त-मूल्य के बराबर होना चाहिए। इस प्रकार यह फर्म के न्यूनतम मूल्य के निर्धारण के लिये अधिक उपयोगी व सहायक है। इस विधि को अपनाते समय, यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिन मूल्यों पर संपत्तियों को आर्थिक चिट्ठे में दिखाया गया है, उनका मूल्य उतना ही होगा, यह आवश्यक नहीं। यह उससे कम या अधिक हो सकता है। अत:, यह अधिक उचित होगा कि इन संपत्तियों का वास्तविक मूल्य ज्ञात करके ही फर्म के मूल्य की गणना की जाये। इस दृष्टि से, पुस्त मूल्य में समायोजन करके पुस्त मूल्य (Adusted book Value) के आधार पर फर्म के मूल्य की गणना की जानी चाहिए। इसके लिये, अलग-अलग प्रकार की संपत्तियों का मूल्यांकन उनकी प्रकृति के अनुसार अलग-अलग ढंग से करनी चाहिए और फर्म का मूल्य ज्ञात करने के लिए संपत्तियों का पुनर्मूल्यांन किया जाना चाहिए। इसके लिए, उन संपत्तियों का चालू लागत या पुनर्स्थापन लागत ज्ञात करनी चाहिए भूमि एवं भवन की वर्तमान लागत प्रचलित दर के आधार पर किया जा सकता है। संयंत्र एवं मशीनरी की

वर्तमान लागत ज्ञात करना कठिन है तथा इसके लिये किसी स्वतंत्र मूल्यांकन करने वाले की सेवायें ली जानी चाहिए। देनदारों की सही लागत ज्ञात करने के लिये डूबत एवं संदिग्ध ऋण संचय की उचित मात्रा से उसे समायोजित करना चाहिए। स्टॉक का सही मूल्य ज्ञात करने के लिए उसके चालू, लागत को ज्ञात करना चाहिए तथा निष्क्रिय स्टॉक के मूल्य से उसे समायोजित किया जाना चाहिए।

उसी प्रकार से, आर्थिक चिट्ठे में कुछ अमूर्त संपत्तियाँ भी होती हैं जिनका सही मूल्यांकन किया जाना चाहिए। ये संपत्तियाँ हो सकती हैं – ख्याति, ब्रांड इक्विटी, ग्राहकों की निष्ठा (loyalty), प्रबंधकों का कौशल या गुणवत्ता आदि। इनके मूल्यांकन की प्रचलित विधियों के आधार पर किया जाना चाहिए अथवा उनका सही मूल्य ज्ञात करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

फर्म का मूल्यांकन करने के लिये, आर्थिक चिट्ठा विधि आसान है और प्रचलित भी है। किंतु उनमें दिखाई गई संपत्तियों के मूल्य में आवश्यक समायोजन करने के उपरांत ही फर्म के मूल्य का निर्धारण करना चाहिए।

(2) **शुद्ध संपत्ति मूल्य विधि (Net Asset Value Method) -**

आर्थिक चिट्ठा विधि के अनुसार, फर्म का मूल्य चिट्ठे में दी गई संपत्ति के पुस्त-मूल्य के योग के बराबर होता है। शुद्ध संपत्ति मूल्य विधि, के अनुसार, फर्म का मूल्य फर्म की शुद्ध संपत्ति के मूल्य के बराबर होगा। यहाँ पर शुद्ध संपत्ति का तात्पर्य, कुल संपत्ति तथा कुल बाह्य देयताओं के अंतर से है। दूसरे शब्दों में –

शुद्ध सत्पत्तियाँ = कुल संपत्तियाँ – कुल ब्राह्य देयतायें

या

Net Assets = Total – external liavilities

कुल ब्राह्य देयताओं का तात्पर्य लेनदार, देयतापत्र तथा अन्य देयताओं की राशि के योग से है। संपत्तियों का मूल्य, पुस्त-मूल्य, बाजार मूल्य अथवा समापन मूल्य (liquidation value), से हो सकता है। इस प्रकार से, संपत्तियों का शुद्ध मूल्य, इस बात पर निर्भर करेगा कि संपत्तियों के किस मूल्य को अपनाया गया है।

पुस्त-मूल्य की दशा में, आर्थिक चिट्ठे में दिखाये गये मूल्य को लिया जायेगा। बाजार मूल्य की दशा में, संपत्तियों का पुनर्मूल्यांकन करने पर जो मूल्य आयेगा, उस मूल्य को लिया जायेगा। समापन

मूल्य की दशा में यह, मान कर चला जायेगा कि यदि कंपनी का समापन हो जाये तो संपत्तियों से क्या वसूली होगी। वसूल की जाने वाली राशि ही संपत्तियों का समापन मूल्य होगा।

इस प्रकार से, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में, अलग-अलग मूल्य को अपनाया जा सकता है।

(3) **तुलनात्मक फर्मो की मूल्यांकन विधि** (Comparative Firm Valuation Method) -

फर्म के मूल्य गणना करने यह विधि भी उपयोगी है। इस विधि के अंतर्गत, फर्म के मूल्यांकन के लिये, उसी प्रकार की फर्मो के मूल्यों को आधार बनाया जाता है। जब दो या अधिक फर्मो के मूल्यों को आधार बनाते हैं तो यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी प्रकृति एक-समान हो तथा वे एक ही उद्योग में लगी अलग-अलग फर्मे हैं। यह इस मान्यता पर आधारित है कि एक प्रकार की फर्मों का मूल्य समान होगा। इस प्रकार से मूल्यांकन के लिये विभिन्न सुसंगत अनुपातों का सहारा लिया जाता है। जैसे, विक्रय के अनुपात में फर्म का मूल्य, स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह (Free Cash Flows), संपत्तियों के पुस्तक मूल्य का बाजार मूल्य पर अनुपात, ब्याज तथा कर से पूर्व अर्जन (Earning Befor Interest and Tax या FBIT) आदि।

मूल्यांक के लिये फर्मो का चुनाव करते समय, उसके आकार, आयु, विकास एवं लाभोत्पादकता उपनति (Trend) आदि को मानदंड माना जा सकता है।

इन सब अनुपातों की गणना करने के उपरांत फर्मो के अनुपात का औसत ज्ञात कर लेना चाहिए। इस औसतों के आधार पर फर्म की बिक्री स्वतंत्र नकद प्रवाह तथा ब्याज एवं कर से पूर्व अर्जन को समायोजित करना चाहिए।

इसे निम्नलिखित तालिका की सहायता से समझा जा सकता है :

क ख फर्म का मूल्य

	रूपया करोड़ में	फार्मो का औसत अनुपात	अनुमानित मूल्य करोड़ रू. में
विक्रय	1,000	1.45	1,450
ब्याज कर से पूर्व अर्जन	86	19.38	1,666
स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह	70	23.25	1,628
संपत्तियों का पुस्त मूल्य	1,124	1.36	1,528
औसत			1,568

इस विधि को अधिकांश विश्लेषण तथा प्रबंधक अपनाते हैं क्योंकि यह विधि सरल है तथ इसमें अधिक जटिल गणनायें नहीं करनी पड़ती है। फिर भी, इस विधि को अधिक वैज्ञानिक नहीं माना जाता है।

(4) मूल्य अर्जन अनुपात विधि (Price Earning (P/E)Ratio) -

यह एक प्रचलित विधि है जिसके अंतर्गत मूल्य अर्जन अनुपात ज्ञात कर उसके आधार पर फर्म के मूल्य की गणना की जाती है। अंशों के मूल्य ज्ञात करने की यह विधि अंशधारियों वित्तीय विश्लेषकों तथा वित्तीय प्रबंधकों को प्राय: स्वीकार्य होती है। इसके अंतर्गत, प्रति अंश अर्जन (Earning Per share of EPS) को पहले ज्ञात किया जाता है। प्रति अंश अर्जन या EPS को निम्नलिखित ढंग से ज्ञात किया जा सकता है :

$$\text{प्रति अंश अर्जन} = \frac{\text{समता अशंधारियों को उपलब्ध अर्जन}}{\text{समता अंशों की संख्या}}$$

Rarning Available to Equity shareholders

EPS = --

Nubers of Equity Shares

शुद्ध अर्जन अथवा लाभ का तात्पर्य, कर तथा पूर्वाधिकारी लाभांश का भुगतान करने के उपरांत लाभ से है। आवश्यकतानुसार, असाधारण मदों के विषय में, इसमें समायोजन भी कर लेना चाहिए।

समता अंशों का बाजार मूल्य ज्ञात करने के लिये प्रति अंश अर्जन या EPS को मूल्य/अर्जन अनुपात से गुणा करना चाहिए।

सूत्र के अनुसार,

प्रति अंश बाजार मूल्य = प्रति अंश अर्जन x मूल्य/अर्जन अनुपात

या MPS = EPS x P/E Ratio

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मूल्य अर्जन अनुपात या P/E Ratio का प्रयोग फर्म का मूल्यांकन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कंपनी विशेष द्वारा प्रकाशित वित्तीय विवरण सही है या नहीं। प्राय:, कंपनियाँ इसमें हेर-फेर करके अपनी वित्तीय स्थिति को वास्तविकता से अधिक अच्छा दिखाने का प्रयास करती हैं जिससे उन्हें अपनी कंपनी का अधिक मूल्य प्राप्त हो सके। अत:, संबंध में, सावधानी बरतने की अधिक आवश्यकता है। इसके लिये, कंपनी की गहन जाँच करने की आवश्यकता हैं।

उदाहरण (Illustration)

अ ब कंपनी लि. के 100 रू. प्रत्येक वाले 5,00,000 समता अंश हैं तथा 100 रू. प्रत्येक वाले 10:, 1,00,000 पूर्वाधिकार अंश हैं। कंपनी का कर के उपरांत शुद्ध लाभ (समायोजनों के उपरांत) 85,00,000 है। कंपनी का मूल्य/अर्जन अनुपात 9 है। प्रति अंश बाजार मूल्य ज्ञात कीजिये।

हल (Solution)

प्रति अंश बाजार मूल्य का निर्धारण

	रू.
कर के उपरांत शुद्ध लाभ	85,00,000
घटाया पूर्वाश लाभांश (1,00,000 x Re 10)	10,00,000
अंशधारियों का उपलब्ध लाभ	75,00,000
विभाजित किया – समता अंशों की संख्या से	
75,00,000 15,00,000	
प्रति अंश लाभ/अर्जन	15
प्रति अंश बाजार मूल्य (रू. 15 x 9)	135

प्रति अंश बाजार मूल्य ज्ञात करके, इसके आधार पर ही कंपनी का मूल्यांकन किया जायेगा।

इस विधि में कुछ कमियों के होते हुए भी, इसे व्यवहार में, फर्म के मूल्यांकन के लिये अपनाया जाता है। इसके प्रमुख कारण है :

1. इसकी गणना कठिन नहीं है।
2. यह अधिक उपयुक्त लगता है क्योंकि अर्जन के आधार पर मूल्य ज्ञात किया जाता है।
3. इससे संबंधी सभी आवश्यक जानकारियाँ तथा आँकड़े प्रकाशित लेखों व विवरण के माध्यम से आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

(5) **अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि (Discounted Cash Flow Method) -**

इस विधि के अंतर्गत, भावी रोकड़ प्रवाहों के अनुसार फर्म का मूल्यांकन किया जाता है। इस विधि को, व्यवहार में, पूँजीगत व्यय संबंधी प्रायोजनाओं के मूल्यांकन के संबंध में अपनाया जाता है किंतु इसका उपयोग फर्म के मूल्यांकन के लिये भी अपनाया जाता है। वास्तव में, मूल्य अर्जन अनुपात (P/E Ratio) विधि के अंतर्गत, केवल वर्तमान वर्ष तथा एक-दो अगले वर्षों के अर्जन के आधार पर ही फर्म का मूल्यांकन किया जाता है परंतु अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि में कई वर्षों के भावी अर्जनों को मूल्यांकन का आधार बनाया जाता है।

इस विधि के अनुसार, फर्म का मूल्य संभावित भावी रोकड़ प्रवाह के वर्तमान मूल्य के बराबर होगा जो उस दर से अपलेखित होगा जो कि रोकड़ प्रवाह के जोखिम को प्रतिबिंबित करता हो। इस प्रकार से, सूत्र के अनुसार –

$$\text{Value of firm}_o = \sum_{t=1}^{8} \frac{CF\ to\ Firm}{(tko)t}$$

इसकेलिये,निम्नलिखित गणना करनी होगी –

(1) रोकड़ प्रवाह की गणना

(2) परिचालन स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह की गणना

(3) स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह की गणना

इनका वर्णन अग्रलिखित है :

(1) **रोकड प्रवाह की गणना (Determination of cash Flows) – इसकी गणना लिम्नलिखित प्रकार से की जायेगी:**

कर के उपरांत परिचालन लाभ

\+ ह्रास

\+ अन्य गैर – रोकड़ मद

अन्य गैर – रोकड़ मद का तात्पर्य उन मदों से है जो लाभ-हानि खाते में दिखाये जाते हैं परंतु, उनसे रोकड़ का कोई प्रवाह नहीं होता, जैसे, अमूर्त संपत्तियों का अपलेखन या दीर्घकालीन संपत्तियों की बिक्री से हुई हानि।

(2) **परिचालन स्वतंत्र रोकड़ की गणना** (Determination of Operating Free Cash Flows या OF CFT)

इसकी गणना निम्नलिखित प्रकार से की जायेगी :

कर के उपरांत परिचालन लाभ

+ ह्रास तथा गैर-रोकड़ मद

- दीर्घकालीन संपत्तियों में विनियोग

- परिचालन शुद्ध कार्यशील पूँजी में विनियोग

परिचालन स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह (OFCFT)

(3) **स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह की गणना** (Determination of Free Cash Flows या FCFT)

- स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह की गणना निम्नलिखित प्रकारसे की जायेगी :

परिचालन शुद्ध कार्यशील पूँजी

+ कर के उपरांत गैर – परिचालन आय/रोकड़ प्रवाह

+ गैर-परिचालन संपत्तियों में कमी

फर्म के लिये, स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह

सूत्र के रूप में –

$$\sum_{t=1}^{8} \frac{FCFF\ to\ all\ investors}{(tko)t}$$

Value of $firm_o$ =

इस प्रकार से, फर्म का मूल्य, फर्म के स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य है।

उदाहरण (Illustration)

एक कंपनी का, 5 वर्षका फर्म का स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह (FCFF) निम्नलिखित है :

	लाख रू. में
वर्ष	स्वतंत्र रोकड़ प्रवाह
1	300
2	200
3	500
4	150
5	600

यदि वर्तमान मूल्य घटक (PV Factor) 0.10 है तो कंपनी का मूल्य ज्ञात कीजिये।

हल (Solution)

वर्ष	FCFF	PV	Factor	Total
Present				
	रू. (लाख में)	(0.10)		Value
1	300	0.909		272.70
2	200	0.876		165.20
3	500	0.751		375.50
4	150	0.683		102.45
5	600	0.621		372.69
Total Present Value या Valuation of Firm				
Less Value of Debt				500.00
Value of Equity				788-45

इस प्रकार से, उपर्युक्त कंपनी का मूल्य 1288.45 लाख रू. होगा।

5.5 संविलयन एवं अधिग्रहण का अर्थ एवं परिभाषा

संविलयन (Merger)

जब दो या दो से अिधक कंपनियां आपस में संयोजन करती है तो उसे संविलयन कहते हैं। दोनों कंपनियों में से एक ही कंपनी चालू रहती है। उदाहरण के लिये, ‘अ’ कंपनी ‘ब’ कंपनी का संयोजन होता है तो उसमें से एक कंपनी चालू रहेगी तथा दूसरी समाप्त हो जायेगी या तो ‘अ’ कंपनी चालू रहेगी या ‘ब’ कंपनी। यदि अ कंपनी चालू रहेगी तो ब कंपनी का समापन हो जायेगा। यदि ब कंपनी चालू रहेगी तो अ कंपनी का समापन हो जायेगा। संविलयन में कंपनी की संपत्तियों, दायित्वों तथा अंशधारियों के हितों का संयोजन हो जाता है। यदि संविलयन इस प्रकार से होता है कि एक नई कंपनी की स्थापना करके दोनों चालू कंपनियों को संयोजित कर लिया जाता है तो उसे एकीकरण (Amalgamation) कहते हैं। यदि अ कंपनी

तथा ब कंपनी का संविलयन होता है और उसके लिये एक नई कंपनी स कंपनी स्थापित की जाती है तो उसे एकीकरण कहते हैं। भारत में कानून इसे ही मान्यता देती है। संविलयन तथा एकीकरण को समानार्थी भी माना जा सकता है।

संविलयन या एकीकरण के निम्नलिखित दो स्वरूप हो सकते हैं :

(अ) समावेशन के माध्यम से संविलयन।

(ब) समेकन के माध्यम से संविलयन।

(अ) समावेशन (Absorption) - समावेश में दो या अधिक कंपनियों का संयोजन एक विद्यमान कंपनी से होता है। इसमें एक को छोड़ कर शेष कंपनियों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिये, अ कंपनी द्वारा ब कंपनी का समावेश किया गया। संविलयन के पश्चात अ कंपनी चालू रहेगी और ब कंपनी का समापन हो जायेगा।

(ब) समेकन (Consolidation)- समेकन के अंतर्गत दो या अधिक कंपनियों का संयोजन करके एक नई कंपनी स्थापित की जाती है। उदाहरण के लिये, ब कंपनी ब कंपनी का समेकन होता है तथा स कंपनी इसके लिये स्थापित की जाती है। इसके फलस्वरूप अ कंपनी तथा ब कंपनी का समापन हो जायेगा अंशों या रोकड़ के बदले अ कंपनी तथा ब कंपनी अपने संपत्तियों एवं दायित्वों को स कंपनी को हस्तांतरित कर देगी। समेकन तथा एकीकरण दोनों ही प्रकार के संयोजन मिलते जुलते हैं।

अधिग्रहण (Acquisition)-

संविलयन की तरह इसमें दो या अधिक कंपनियाँ आपस में संयोजन नहीं करती है। अधिग्रहण के अंतर्गत, एक कंपनी दूसरी कंपनी के अंशें का क्रय करती हे। जिससे दूसरी कंपनी के संपत्तियों या प्रबंध पर पहली कंपनी का प्रभावी नियंत्रण स्थापित हो सके। इसमें कंपनियों तथा व्यवसाय का संयोजन नहीं होता है। इसमें संबंधित कंपनियाँ, अधिग्रहण के पश्चात्, स्वतंत्र रूप से अपना कार्य संचालन करती रहती हैं। अधिग्रहर में यह आवश्यक नहीं है कि संपूर्ण या कानूनी तौर पर नियंत्रण स्थापित कर लिया जाये।

अधिग्रहण तथा टेकओवर (takeover) को प्राय: समानार्थी माना जाता है। वास्तव में, टेकओवर अधिग्रहण का एक स्वरूप है। एकाधिकार एवं प्रतिबंधित व्यापारिक व्यवहार अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act) के अंतर्गत, यदि एक कंपनी दूसरी कंपनी के कुल मताधिकार (Voting Rights) के 25 प्रतिशत का अधिग्रहण कर लेती है तो उसे टेकओवर माना जाता है। कंपनी

अधिनियम 1956 के अंतर्गत, यदि एक कंपनी अभिदत्त पूँजी (Subscribed Capital) के 10 प्रतिशत अंशों से अधिक अंशों का अधिग्रहण कर लेती है तो उसे टेकओवर माना जाता है।

अधिग्रहण तथा टेकओवर को वैसे तो समानार्थी माना जाता है किंतु व्यवहार में टेकओवर तब माना जाता हे जबकि अंशों का अधिग्रहण दूसरी कंपनी की इच्छा के विरूद्ध किया जाता है यह वास्तव में शत्रुता (hostility) को इंगित करता है इसी लिये इसे शत्रुतापूर्ण टेकओवर (hostile takeover) भी कहते हैं।

संविलयन एवं अधिग्रहण के उद्देश्य

संविलयन एवं अधिग्रहण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

(1) सारभागीय शक्ति (core strenght), परिचालन संबंधी सहक्रिया (Operational Synergy), तथा प्रबंधकीय योग्यताओं के कुशल प्रयोग पर अधिक ध्यान केंद्रित करने के लिये।

(2) पूँजी के पुर्निर्माण के लिये अंश तथा ऋण का सम्मिश्रण करने के लिये।

(3) बड़े पैमाने पर कार्य की मितव्ययिता प्राप्त करने के लिये।

(4) कच्चे माल के नियमित आपूर्ति के लिये।

(5) वैज्ञनिक शोध तथा टैक्नालॉजिकल सुधार लाने के लिये।

(6) शोध एवं विकास (Research & Development) का लाभ पाने के लिये।

5.6 संविलयन एवं अधिग्रहण के प्रकार

संविलयन के निम्नलिखित तीन प्रकार हो सकते हैं : -

1. क्षैतिज संविलयन
2. लंबवत संविलयन
3. संपिडित संविलयन

इनका विवरण निम्नलिखित है :

(1) **क्षैतिज संविलयन (HorAontal Merger)-** जब एक ही क्षेत्र या व्यवसाय या उद्योग में कार्यरत दो या अधिक कंपनियाँ आपस में संयोजन करती हैं तो उसे क्षैतिज संविलयन कहते हैं। यह भी हो

सकता है कि ये कंपनियाँ एक ही बाजार में अपनी वस्तुये बेचती हों क्षैतिज संविलयन का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा को कम करना, मूल्य संबंधी कटौतियों को रोकना, बड़े पैमाने पर मितव्ययिता का लाभ उठाना, शोध एवं विकास के लिये, विपणन तथा प्रबंधन संबंधी उन्नयन का लाभ उठाना आदि हो सकता है। यदि 'अ' ब कंपनी' तथा 'स द कंपनी' जो वस्त्र का उत्पादन करती है तो उसे क्षैतिज संविलयन कहते हैं। इससे दोनों कंपनियों में प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जायेगी। उदाहरण के लिये, टाटा आयल मिल कंपनी का हिन्दुस्तान लीवर लि. में संविलयन, टाटा स्टील का कोरस स्टील से संविलयन भी इसका उदाहरण है।

(2) **लंबवत संविलयन** (Vertical Merger) – जब दो या अधिक कंपनियाँ, जो वस्तु के उत्पादन या वितरण के कई अवस्थाओं में व्यवसाय कर रही हों, आपस में संयोजन करती हैं तो उसे लंबवत संविलयन कहते हैं। उदाहरण के लिये, एक कताई मिल, बुनाई मिल से संयोजन करती है तो लंबवत संयोजन कहेंगे। यह दो प्रकार का हो सकता है:

(अ) अग्रगामी संविलयन (Forward Merger) तथा प्रतिगामी संविलय (Backward Merger) : अग्रगामी संविलयन (Forward Merger) तब होगा जब उत्पादन करने वाली कंपनी उस वस्तु की बिक्री करने वाली कंपनी से संयोजन करती है। उदाहरण के लिये, तेल के भण्डारण या उसकी बिक्री करने वाली कंपनी का संयोजन इसका उद्देश्य मध्यस्थों को समाप्त करके उनके लाभ को स्वयं प्राप्त करना या उपभोक्ता को सस्ते दर पर माल देना हो सकता है।

(ब) प्रतिगामी संविलय (Backward Merger) – जब कच्चा माल बनाने वाली कंपनी का इस कच्चे माल से निर्मित माल बनाने वाली कंपनी से संयोजन करती है तो उसे प्रतिगामी संयोजन कहते है। उदाहरण के लिये जब लुग्दी बनाने वाली कंपनी कागज बनाने वाली कंपनी से संयोजन करती है तो वह प्रतिगामी संयोजन कहलायेगा।

इसे निम्नलिखित चित्र की सहायता से आसानी से समझा जा सकता है।

बाजार

उपर्युक्त चित्र से यह स्पष्ट है कि सभी मिलें कपड़े के उत्पादन से संबंध हैं और उसकी विभिन्न अवस्थाओं में उत्पादन कर रही हैं। इनमें संयोजन ही लंबवत संयोजन कहलायेगा।

वास्तव में ये चारों कंपनियाँ उत्पादन के विभिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग लगी हुई हैं, अलग-अलग उत्पादन करती हैं परंतु संयोजन के पश्चात् एक हो जायेगीं।

- लंबवत संविलयन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

(1) समस्त उत्पादन प्रक्रियाओं का एकीकरण करना।

(2) कच्चे माल की आपूर्ति के संबंध में समस्याओं को समाप्त करना।

(3) निर्मित काल की बिक्री की अनिश्चितता दूर करना।

(4) मध्यस्थों को समाप्त कर, उनके लाभों को समाप्त करना।

(5) निर्मित वस्तुओं की किस्म व पूर्ति पर नियंत्रण रखना।

(6) उत्पादन व वितरण की लागत को न्यूनतम करना।

(3) **संपिडित संविलयन** (Conglomerrate Merger) - संपिडित संविलयन के अंतर्गत, संयोजन करने वाली कंपनियाँ अलग-अलग क्षेत्र, असंबंधित उद्योग या व्यापार में व्यवसाय करने वाली होती है। जैसे एक सीमेंट का उत्पादन करने वाली कंपनी, उर्वरक का उत्पादन करने वाली कंपनी से संयोजन करती है तो उसे संपिडित संविलयन कहते हैं। ये कंपनियाँ न तो आपस में प्रतिस्पर्धा करती है और न ही एक – दूसरे के पूरक हैं। इसका उद्देश्य लाभोत्पादकता बढ़ना, आर्थिक शक्ति बढ़ाना या विविधता (Diversification) लाना हो सकता है। वोल्टाज लि. इसी प्रकार के संविलयन का उदाहरण है। उच्चावचन के कारण, विक्रय तथा लाभ पर यदि एक कंपनी पर असर पड़ता है तो उसकी क्षतिपूर्ति दूसरी कंपनी की बिक्री या लाभ हो सकती है।

5.7 संविलयन एवं अधिग्रहण के उत्प्रेरक तत्व

संविलयन एवं अधिग्रहण के कई उत्प्रेरक या उनको प्रभावित करने वाले घटक है। उनके प्रमुख प्रेरकों को निम्नलिखित चार वर्गों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है :

(1) वित्तीय उत्प्रेरक
(2) रणनीतिक उत्प्रेरक
(3) सहक्रियात्मक उत्प्रेरक
(4) संगठनात्मक उत्प्रेरक

इनका वर्णन अग्रलिखित है –

(1) **वित्तीय उत्प्रेरक** (Financial Motives) – विलयन तथा अधिग्रहण करने वाली कंपनियों को वित्तीय संबंधी उत्प्रेरणा अधिक प्रभावित करती है। ये वित्तीय उत्प्रेरक, संक्षिप्त में, निम्नलिखित हो सकते है:

(क) कोष को अधिक प्राप्त करने की क्षमता विकसित करना।

(ख) अतिरिक्त कोष को अधिक लाभप्रद क्षेत्र में लगाना।

(ग) संविलयन के पश्चात् आय बढ़ाकर प्रति अंश अर्जन में तथा बाजार के हिस्से (market share) में वृद्धि करना।

(घ) परिचालन संबंधित मितव्ययिता का लाभ उठाना।

(ड़.) कर संबंधी नियोजन करना।

(च) अंशधारियों के मूल्यों का सृजन करना।

(2) **रणनीतिक उत्प्रेरक** (Strategic Motives) – प्राय: कंपनियाँ रणनीतिक योजना के तहत अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संविलयन एवं अधिग्रहण करती हैं। इस संबंध में कुछ प्रमुख उत्प्रेरक निम्नलिखित हो सकते है :

(क) बड़े पैमाने की मितव्ययिता का लाभ उठाने के लिये, रणनीतिक योजना के तहत कंपनियाँ अधिग्रहण व संविलयन कर सकती हैं।

(ख) कंपनी के विस्तार करके विकास की ओर अग्रसर करने के लिये भी इस प्रकार से रणनीतिक योजना तैयार करके संविलयन किया जा सकता हैं।

(ग) बाजार में भागीदारी बढ़ाने की दृष्टि से भी इसे अपनाया जा सकता है।

(घ) प्राय: कंपनियाँ बाजार में अपना नेतृत्व स्थापित करने के लिये भी अधिग्रहण करती है।

(डं.) नये उत्पाद को बाजार में स्थापित करने के लिए भी इसे अपनाया जा सकता है।

(च) अपने वित्तीय तथा अन्य संसाधनों को बढ़ाने के लिये रणनीतिक दृष्टि से संविलयन किया जा सकता है।

(छ) बाजार के जोखिमों को तथा अच्चावचन के प्रभावों को न्यूनतम करने के लिये भी यह रणनीति अपनाई जा सकती है।

(ज) विभिन्नीकरण तथा स्थिरता लाने की दृष्टि से इस तरह की रणनीतिक योजना अपनाई जा सकती है।

(3) **सहक्रियात्मक उत्प्रेरक** (Synergy Motive) - प्राय: कंपनियाँ सहक्रियात्मक लाभ (Synergy Profit) प्राप्त करने के लिये भी संविलयन तथा अधिग्रहरण की नीति अपनाती हैं। सहक्रियात्मक का तात्पर्य उस संयोजित प्रभाव से है जो दो या अधिक क्रियाओं को जोड़नें पर, उनके व्यक्तिगत प्रभाव के योग से अधिक हो। यदि 'अ' कंपनी 'ब' कंपनी का संविलयन होता है तो दोनों के संविलयन का मूल्य इन अलग-अलग कंपनी के मूल्य के योग से अधिक होगा सूत्र के रूप में।

$$\{V(A) + V(B)\} < V(AB)$$

यहां पर

V(A) है 'अ' कंपनी का स्वतंत्र मूल्य

V(B) है 'ब' कंपनी का स्वतंत्र मूल्य

V(AB) है दोनों के संविलयन के पश्चात् मूल्य

इस तरह से जो यह अधिक मूल्य प्राप्त होगा तो संविलित इकाईयों प्रति अंश अर्जन से (Earning per share) में वृद्धि होगी।

संविलयन तथा अधिग्रहण की दशा में निम्नलिखित सिनर्जी प्राप्त हो सकती है :

(अ) पूँजी के एकत्र करने में अधिक सुविधा होगी तथा संविलयन कंपनी के वित्तीय तथा अन्य संसाधनों में वृद्धि संभव हो सकेगी।

(ब) ऋण लेने की क्षमता में भी वृद्धि हो सकती है।

(स) पूँजी की लागत में अपेक्षाकृत कमी हो सकेगी।

(द) बैंकों, वित्तीय संस्थाओं तथा अन्य व्यापारियों से अधिक सुविधा के साथ-साथ में वृद्धि हो सकेगी।

(य) प्रति अंश अर्जन तथा मूल्य में वृद्धि की संभावना बढ़ सकेगी।

(4) **संगठनात्मक उत्प्रेरक** (Organiztional Motive) - कुछ महत्वपूर्ण संगठनात्मक उत्प्रेरक निम्नलिखित हैं :

(अ) संविलित कंपनियों का प्रबंध और कुशल करने के लिये भी संविलयन एवं अधिग्रहण किया जा सकता है।

(ब) अकुशल प्रबंधकों हटाने की दृष्टि से भी इससे संबंधित योजना को अपनाया जा सकता है।

(स) अकुशल प्रबंधकों को हटाने की दृष्टि से भी इससे संबंधित योजना को अपनाया जा सकता है।

(द) प्राय: उच्चस्तर के प्रबंधक अपनी मौद्रिक शक्ति (Monry power) को बढ़ाने के लिये भी इस योजना को अपनाते है।

(य) योग्य प्रबंधकों (Talent) को संस्था में ही रोके रखने के लिये भी संविलयन को अपनाया जा सकता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में एक शोध अध्ययन में उपरांत यह पाया गया कि संविलयन एवं अधिग्रहण के निम्नलिखित बाह्य उत्प्रेरक है :

संविलयन एवं अधिग्रहण के उत्प्रेरक

1	इस जानकारी का लाभ उठाइये कि कंपनी का मूल्यांकन कम (Under – Valued) है।	1
2	अंतरिक प्रयासों द्वारा विकास अधिक तेज गति से प्राप्त करना।	2
3	अतिरिक्त उत्पादों या सेवाओं से बाजार की माँग को संतुष्ट करना।	3
4	विस्तार के लिये आंतरिक प्रयासों के जोखिम से बचना।	4
5	प्रति अंश अर्जन में वृद्धि करना।	5
6	एकल उत्पाद या सेवा पर से निर्भरता कम करना।	6
7	बजार में अंश या स्थिति को प्राप्त करना।	7
8	वर्तमान व्यवसाय में मौसमी या चक्रीय उच्चावचनों को कम करना।	8
9	मलिकों, मुख्य अधिकारी तथा प्रबंधकों की शक्ति में वृद्धि करना।	9
10	वर्तमान संसाधनों के उपयोग में वृद्धि करना।	10
11	विशिष्ट योग्यता वाले प्रबंधकों या तकनीकी कार्मिकों की सेवायें प्राप्त करना।	11
12	वर्तमान उत्पाद या सेवा के लिये नये बाजार खोलना	12

इस प्रकार से इस अध्ययन के द्वारा विभिन्न उत्प्रेरकों को बारह श्रेणियों को क्रम से बद्ध किया है।

संविलनयन संबंधी भुगतान की विधियाँ

कंपनियों में संविलयन संबंधी भुगतान के लिये मुख्यतया निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती है :

1. नकद भुगतान द्वारा
2. ऋण पत्रों द्वारा
3. समता अंशों द्वारा
4. परिवर्तनीय ऋण पत्रों द्वारा

इनका वर्णन अग्रलिखित है –

1. **नकद भुगतान द्वारा (Cash Payment)** – प्राय: कंपनियाँ संविलयन के लिये नकद भुगतान करती हैं। परंतु इस प्रकार का भुगतान अंशधारियों के हित में नहीं होता क्योंकि उनके अंशों की संख्या पूर्ववत ही रहती है।

   ऐसे अंशधारी, जिनकी कंपनी को बेचा जा रहा है, की इस प्रकार के भुगतान से यह लाभ होता है कि वे पूँजी लाभ पर कर देने से बच जाता है।

   क्रेता कंपनी की दृष्टि से देखा जाये तो नकद भुगतान करने से राशि घट जाती है या उसका प्रबंध करना पड़ता है। इसके कार्यशील पूँजी पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

2. **ऋणपत्रों द्व (Payment by Deventures)** - इस प्रकार से ऋणपत्रों द्वारा भुगतान करने पर, विक्रेता कंपनी के अंशधारियों के अंशों के स्थान पर ऋणपत्र दिये जाते हैं जिन पर ब्याज स्थिर दर से ही दिया जाता है। यह अंशधारियों के लिये हितकर तभी होता है जब ब्याज की दर मिलने वाले लाभांश के दर से अधिक हो यह उनके लिये लाभप्रद हो भी सकता है और नहीं भी।

   क्रता कंपनी के अंशधारियों की दृष्टि से यह अपेक्षाकृत अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। क्योंकि दंतिकरण (gearing) के फलस्वरूप उनको प्राप्त लाभांश की दर में वृद्धि हो सकती है।

3. **समता अंशों द्वारा भुगतान** (Paynebt by Equity Shares) – इस प्रकार से भुगतान की पद्धति अधिक प्रचलित है। इसके अंतर्गत क्रेता कंपनी विक्रेता कंपनी के अंशों के बदले अपने अंशों के द्वारा भुगतान करती है।

   इस प्रकार अंशों द्वारा भुगतान से विक्रेता कंपनी अंशधारियों के लिये अधिक लाभप्रद होने की संभावना रहती है। यह इस बात पर निर्भर करती है कि भुगतान की शर्तें क्या है। दुसरी और, क्रेता कंपनी के लिये, यह इसलिये लाभप्रद है कि इससे कंपनी की तरलता (liqidity) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

4. **परिवर्तनीय ऋणपत्रों द्वारा भुगतान** (Payment by Converible Debentures) – यह विधि भी काफी प्रचलित है। इस विधि के अंतर्गत विक्रेता कंपनी क्रेता कंपनी के अंशधारियों को परिवर्तनीय ऋणपत्र देकर भुगतान करती है से इन ऋणपत्रों को बाद में अंशें में परिवर्तित करना होता है।

विक्रेता कंपनी के अंशधारियों की दृष्टि से यह लाभप्रद हो भी सकता है और नहीं भी। यह इस बात पर निर्भर होता है कि भविष्य में अंशों के मूल्य में कितनी वृद्धियां या कमी होती है। यदि उनके मूल्य में वृद्धि होती है तो बाद में अंश लेना ही उचित होगा, अन्यथा उनके हित में नहीं रहेगा कि वे ऋणपत्रों को ही अपने पास रखें।

5.8 संविलयन एवं अधिग्रहण की असफलता के प्रमुख कारण

व्यवहार में सभी संविलयन एवं अधिग्रहण सफल नहीं होते हैं उनमें से कुछ तो सफल होते है और अन्य असफल हो जाते हैं। उनकी असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं –

1. **उचित मूल्यांकन न किया जाना** – यदि संविलयन से पूर्व विक्रेता कंपनी के संपत्तियों एवं दायित्व का उचित व सही मूल्यांकन नहीं किया जाता तो वह असफलता का कारण बन सकती है।

2. **भिन्न व्यावसायिक क्रियायें** – सामान्यत: क्रेता एवं विक्रेता कंपनी की व्यावसायिक क्रियायें भिन्न-भिन्न होती है। इससे उसके प्रबंधन में कठिनाईयाँ आ सकती है जिससे पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाता।

3. **सही वित्तीय जानकारी का न होना** – प्राय: व्यवहार में विक्रेता कंपनी अपनी वित्तीय स्थिति को बढ़ा-चढ़ा कर बताती है। यदि सही-सही वित्तीय जानकारी नहीं मिल पाती तो संविलयन के पश्चात् इससे कठिनाईयाँ उत्पन्न हो सकती है।

4. **अधिक भुगतान करना** – विक्रेता कंपनी के शुद्ध मूल्य से अधिक धनराशि का भुगतान करने पर भी संविलयन असफल हो सकता है।

5. **अधिक नियंत्रण मिलने में देरी** – प्राय: व्यवहार में क्रेता कंपनी विक्रेता कंपनी पर शीघ्र ही नियंत्रण प्रबंधकीय स्थापित ननहीं कर पाती। इसके फलस्वरूप स्थिति बिगड़ जाती है और संविलयन असफल हो जाता है।

6. **उचित संयोजन का न होना** – एक कंपनी का दूसरी कंपनी से संयोजन तभी सफल हो सकता है जबकि उसके लिये कुशल प्रबंधक उपलब्ध हों। यदि उच्च स्तर के प्रबंधक नहीं होंगे तो संविलयन के समान होने की संभावना कम हो जाती है।

7. **कंपनियों की स्थिति का अनुकूलन न होना** – यदि एक सुदृढ़ कंपनी एक कमजोर कंपनी का अधिग्रहण करती है तो की सफलता की संभावना अधिक रहती है। किंतु यदि दो सुदृढ़ कंपनियों का दो कमजोर कंपनियों का संविलयन होता है तो उनकी सफलता की संभावना कम होती है।

8. **सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारण** – यदि संविलियन कंपनियों का सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिदृश्य भिन्न-भिन्न होता है तो उस स्थिति में भी संविलियन की सफलता की संभावना कम होती है।

9. **पहचान का मिट जाना** - यदि दो संविलियन कंपनियों की अपनी पहचान समाप्त हो जाती है तो उसके परिणामस्वरूप उनके ख्याति में कमी आती है जो बाद में असफलता का कारण बन सकती है।

10. **व्यावसायिक कार्यकलापों में परिवर्तन** – संविलियन करने वाली कंपनियाँ, संविलियन से पूर्व निर्धारित विधियों को प्रयोग में लाती है। संविलियन के पश्चात् उनकी कार्यविधियों में जो भी परिवर्तन होता है उसके परिणाम अच्छे हो भी सकते है और नहीं भी। यदि परिणाम अच्छे नहीं होते तो वह धीरे-धीरे असफलता का कारण बन सकता है।

5.9 सारांश

कई परिस्थितियों में, फर्म के मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। विशेषतया,जब कंपनी का संविलयन या अधिग्रहण होना हो, एक कंपनी दूसरी कंपनी का क्रय करना चाहती है आदि स्थिति में फर्म का मूल्यांकन किया जाता है। फर्म के मूल्यांकन की पाँच प्रमुख विधियाँ हैं। ये विधियाँ हैं – आर्थिक चिठ्ठा विधि, शुद्ध संपत्ति मूल्य विधि, तुलनात्मक फर्मो की मूल्यांकन विधि, मूल्य अर्जन अनपात विधि तथा अपलेखित रोकड़ प्रवाह विधि। परिस्थिति के अनुसार, इनमें से किसी एक विधि का चुनाव करके फर्म का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

जब दो या अधिक कंपनियाँ, आपस में संयोजन करती है तो उसे संविलयन कहते है। जब एक कंपनी दूसरी कंपनी के अंशों का क्रय करती हैं तो उसे अधिग्रहण कहते हैं। जब दूसरी कंपनी का प्रभुत्व स्थापित करने की दृष्टि से अंशों का क्रय किया जाता है, तो उसे टेक ओवर कहते है। संविलयन क्षैतिज, लंबवत तथा संपिडित हो सकते है। सविलयन एवं अधिग्रहण के वित्तीय, रणनीतिक, सहक्रियात्मक तथा संगठनात्मक उत्प्रेरक हो सकते हैं। सविलयन करने के लिये भुगतान कई प्रकार से किया जा सकता है। नकद भुगतान करके, ऋणपत्रों का निर्गमन कर के, समता अंशों को देकर तथा परिवर्तनीय ऋणपत्रों द्वारा इस के लिये भुगतान किया जा सकता है ।

5.10 बोध प्रश्न

1. फर्म के मूल्यांकन को समझाइए। फर्म का मूल्यांकन कैसे किया जाता है?
2. पुस्तक मूल्य और बाजार मूल्य में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. फर्म के मूल्यांकन की विधियों को समझाइए।
4. मूल्य अर्जन अनुपात विधि से आप क्या समझते हैं?
5. संविलयन एवं अधिग्रहण क्या है? संविलयन एवं अधिग्रहण के उद्देश्यों को समझाइए।
6. संविलयन के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
7. संविलयन एवं अधिग्रहण के उत्प्रेरक तत्वों का वर्णन कीजिए।
8. संविलयन संबंधी भुगतान की विधियों पर प्रकाश डालिए।
9. संविलयन एवं अधिग्रहण के असफलता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

5.11 संदर्भ ग्रंथ

- गोयल, डी. के. एवं गोयल, एस. (2017) वित्तीय प्रबंधन, पांचवां संस्करण, अविचल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली
- Prasanna Chandra (2011) Financial Management, Eighth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- Parrino & Kidwell (2011) Fundamentals of corporate finance, First Edition, Wiley India Pvt. Ltd., New Delhi.
- Khan and Jain (2011) Financial Management (Text Problems and Cases), Fifth Edition, Tata McGraw Hill, New Delhi.